दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड तेरह



एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं ? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं ? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है ? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।



दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड तेरह

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा


प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
ekatmrdvf@yahoo.co.in

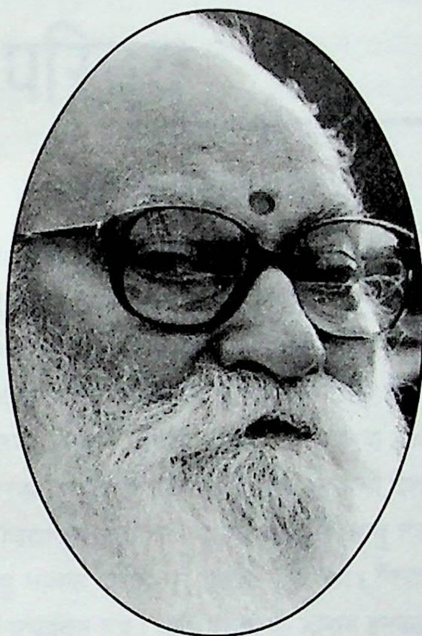
प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002
संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. XIII)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2

Vol. XIII ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-28-4
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण



नानाजी देशमुख

(11 अक्तूबर, 1916–27 फरवरी, 2010)

दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक

को समर्पित

परिचय

नानाजी देशमुख

मराठवाड़ा के परभणी ज़िलांतर्गत कडोली गाँव है। हिंगोली तालुका के इस छोटे गाँव में अमृतराव देशमुख अपनी धर्मपत्नी राजाबाई, तीन पुत्रियों और एक पुत्र के साथ रहते थे। इस परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा मज़बूत थी, परंतु आर्थिक हैसियत कमज़ोर। अक्षर ज्ञान से वंचित और लोकज्ञान में दक्ष इस दंपती के घर 11 अक्तूबर, 1916 को एक पुत्र ने जन्म लिया। पाँचवीं संतान। नामकरण हुआ चंडिकादास। शैशवास्था में ही यह बालक अनाथ हो गया। बड़े भाई आबाजी देशमुख ने लालन-पालन किया। आसपास विद्यालय नहीं था। ग्यारह वर्ष की आयु तक अक्षर-ज्ञान से दूर इस बालक ने रिसोड़ नामक जगह पर पढ़ाई शुरू की। विद्यालय के शिक्षक चंडिकादास की मेधा से प्रभावित हुए। यहीं पढ़ाई के दौरान इनका परिचय संघ से हुआ। आठवीं कक्षा के पश्चात् रिसोड़ छोड़कर वाशिम आना पड़ा। आश्रय मिला पारिवारिक परिचित पाठक परिवार में। इस परिवार के बच्चों की तरह चंडिकादास भी घर के काम-काज में हाथ बँटाते। धीरे-धीरे इस परिवार के विशिष्ट अंग बन गए। पाठक परिवार संघ से संबद्ध था। वाशिम में डॉ. हेडगेवार बहुधा आते थे। संपर्क बढ़ा। चंडिकादास और प्रभावित हुए तथा संघ-कार्य में रम गए। 1937 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए बाहर जाना था, पर इसके लिए साधनाभाव था। पाठक परिवार के आबा पाठक और चंडिकादास ने तय किया कि शहर से फल-सब्ज़ी आदि ख़रीदकर थोड़ा मुनाफ़ा लेकर संपन्न परिवार में पहुँचाएँगे। इस तरीक़े से धन इकट्ठा होगा और आगे की पढ़ाई करेंगे। दोनों मित्र संघ कार्य के संग-संग इसे करने लगे। दो वर्षों में इनके पास कुछ पैसे जमा हो गए।

आगे की पढ़ाई के लिए वे राजस्थान के पिलानी ज़िला कॉलेज के लिए चले। साथ में और दो किशोर थे—बाबा सोनटक्के एवं बाजीराव देशमुख।

इन चारों मित्रों के लिए यह नई जगह थी। यहाँ इन्हें पढ़ाई करनी थी और साथ में संघ-कार्य भी। चंडिकादास फुटबॉल अच्छा खेलते थे। किसी को दुःखी देखकर सहायता के लिए तत्पर भी रहते थे। परिणामस्वरूप लोकप्रियता बढ़ी। दूसरों का कष्ट वे अपना बना लेते। उसे दूर करने की हर संभव कोशिश में प्राणपण से जुट जाते। परोपकार की यह वृत्ति पल्लवित-पुष्पित होने लगी। परिणामतः चंडिकादास को नया संबोधन मिला—नानाजी। जैसे नाना अपने बच्चों के लिए चिंतित रहता है। जो व्यक्ति दूसरों के संकट अपना बना लेता है और उससे जूझता है, बग़ैर किसी हित-कामना के, समाज भी उसे अपना लेता है। अपना परिजन बना लेता है। साथ ही सम्मानसूचक संज्ञा देता है। दादा, नाना आदर प्रगट करने और आत्मीयता जतानेवाला संबोधन है। यह संबोधन विशेषण का दर्ज़ा प्राप्त कर लेता है और मूल नाम की जगह स्थापित हो जाता है। नानाजी ऐसा ही विशेषण है, जो संज्ञा चंडिकादास को विस्थापित कर लोगों की जुबान पर बस गया। आलम यह कि हमें स्मृति पर ज़ोर देना पड़ता है, नानाजी देशमुख का वास्तविक नाम क्या है। माता-पिता के दिए नाम को समाज-प्रदत्त नाम ने विस्मृत बना दिया। यह सामाजिक स्वीकृति एवं कर्म-कीर्ति का सुंदर परिणाम है और प्रमाण भी।

पिलानी की एक घटना उल्लेखनीय है, जिसके माध्यम से ज्ञात होता है कि भविष्य में चंडिकादास सामाजिक कर्म में संलिप्त होंगे। कॉलेज के संस्थापक सेठ घनश्याम दास बिड़ला ने चंडिकादास की योग्यता, कर्मठता, आत्मविश्वास और विश्वसनीयता से प्रभावित होकर प्राचार्य सुखदेव पांडेय को बताया कि मैं इस युवक को अपना निजी सहायक बनाना चाहता हूँ। इस एवज में उसे प्रतिमाह अस्सी रुपए वेतन एवं भोजन, आवास की सुविधा देने की इच्छा जताई। चंडिकादास की आर्थिक स्थिति एवं उस देश-काल के लिहाज़ से यह प्रस्ताव आकर्षक था। पर उन्होंने बिड़ला का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। दरअसल उनके मन में भावी जीवन की रूपरेखा तय होने लगी थी। देश, समाज की सेवा के मार्ग पर चलना इन्होंने निश्चय कर लिया था, जिसे निकट भविष्य में पूर्णतया निभाना था।

सन् 1940 में चंडिकादास संघ की प्रथम वर्ष शिक्षा के लिए नागपुर गए। वहाँ डॉ. हेडगेवार का अंतिम भाषण सुना। परिणामस्वरूप तय कर लिया कि आगे

पढ़ाई नहीं करनी है और पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना है। डॉ. हेडगेवार के अलावा बालासाहब आपटे से भी वे बेहद प्रभावित थे। इसलिए इन्होंने आपटे साहब से अपने लिए कार्य पूछा। आपटे साहब ने इन्हें भाऊ जुगादे के साथ आगरा शहर में संघ-कार्य के लिए भेज दिया। तब इनकी उम्र चौबीस साल थी। इसी दौरान पं. दीनदयाल उपाध्याय कानपुर से बी.ए. पास कर एम.ए. की पढ़ाई के लिए आगरा आए थे। दीनदयालजी भी संघ के एक अच्छे कार्यकर्ता बन चुके थे। अत: आगरा में तीनों कार्यकर्ता एक कमरे में रहने लगे। साथ रहने से इनकी दोस्ती प्रगाढ़ हुई, जो जीवन भर क़ायम रही। आगरा में कुछेक महीना रहने के बाद चंडिकादास को गोरखपुर भेजा गया। वे अपने कार्य में जुटे रहे। देश आज़ाद हुआ, पर साथ ही इसके दो टुकड़े भी हुए। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में गहरा तनाव व्याप्त था। 30 जनवरी, 1948 को हत्यारे नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। नानाजी देशमुख पर आरोप लगा कि इन्होंने महंत दिग्विजयनाथ से नाथूराम गोडसे की मुलाक़ात कराई और पिस्तौल दिलवाई। परिणामत: नानाजी गिरफ़्तार कर लिए गए। ज़ेल से छूटने के पश्चात् वे लखनऊ आ गए। यहाँ रहते हुए उनका जीवंत संपर्क गोरखपुर के कार्यकर्ताओं से बना रहा। वे कार्यकर्ताओं के दु:ख-सुख में भी भागीदार रहते थे। ऐसे ही एक कार्यकर्ता थे कृष्णकांत, जो प्रचारक जीवन से गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहते थे। जीविकोपार्जन के लिए इन्हें कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था। नानाजी ने इनका विवाह आयोजित कराया और पति-पत्नी दोनों की शिक्षा एवं संस्कारक्षमता का उपयोग करने के लिए शिशु पाठशाला की कल्पना की। नामकरण किया सरस्वती शिशु मंदिर। इस समय पहला 'सरस्वती शिशु मंदिर' 1949 में नानाजी के मार्गदर्शन में प्रारंभ हुआ, जिसकी शृंखला सी बन गई।

1952 में पहला आम चुनाव होना था। श्यामाप्रसाद मुखर्जी के 'भारतीय जनसंघ' में संघ ने पं. दीनदयाल उपाध्याय और नानाजी देशमुख को भेजा। नानाजी अपनी पार्टी के कार्य में जुट गए। जनसंघ का काम करते हुए लालबहादुर शास्त्री, डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. संपूर्णानंद, चौधरी चरण सिंह सरीखे नेताओं से इनके संबंध विकसित हुए। भारतीय जनसंघ के सांगठनिक विस्तार और विकास के लिए दीनदयालजी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया। अपने गहरे साथी दीनदयालजी की हत्या के पश्चात् भी वे अपने मिशन में पूरी दृढता से जुटे रहे।

अपने साथी की स्मृति में नानाजी ने 1972 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' की स्थापना की और कालांतर में 'मंथन' नामक त्रैमासिक शोध-पत्रिका हिंदी और अंग्रेज़ी में शुरू की।

अपनी विचारधारा और संगठन की सीमाओं का अतिक्रमण कर नानाजी देशमुख अपने दौर के हर बड़े आंदोलन से जुड़ते थे। शर्त यह रहती थी कि उस आंदोलन का मक़सद जनकल्याण और राष्ट्र को सुदृढ करना हो। महात्मा गांधी के अनन्य अनुयायी आचार्य विनोबाभावे के 'भूदान' में भी शामिल हुए। नानाजी एक तरफ़ राजनीतिक हस्तक्षेप के जरिए परिवर्तन की ज़मीन तैयार कर रहे थे तो साथ ही रचनात्मक कार्य के लिए भी सोचते-विचारते रहते थे। कारण था सत्ता दल की निरंकुशता और इससे टकराने की कामना वाले विपक्षी दलों का व्यक्तिवाद और अवसरवाद। इसलिए दोनों में इन्हें भारत का भविष्य नहीं दिखता था। इंडियन एक्सप्रेस के स्वामी रामनाथ गोयनका के माध्यम से नानाजी जयप्रकाश नारायण से जुड़े। जेपी के अतीत और वर्तमान ने नानाजी को बेहद प्रभावित किया। आपातकाल के दौरान जे.पी. के व्यक्तिगत सत्ता पाने की कामना से रहित होकर संघर्ष और चिंता ने नानाजी के मन में उनके प्रति श्रद्धा पैदा की। तिहाड़ ज़ेल में रहते हुए नानाजी का संपर्क चरण सिंह, प्रकाश सिंह बादल आदि विपक्षी नेताओं से हुआ। क़रीब सत्रह महीनों के कारावास में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचने लगे कि देश का पुनर्निर्माण राजशक्ति से नहीं अपितु लोक शक्ति से होगा। राजनीतिक संस्कृति विकृत होती जा रही थी। इसे जे.पी. के साथ नानाजी भी महसूस कर रहे थे।

17 फरवरी को इंदिरा गांधी ने लोकसभा चुनाव की घोषणा कर सबको चौंका दिया। तीन दिनों के भीतर 20 फरवरी को जनसंघ, कांग्रेस संगठन, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी सहित सभी प्रमुख विपक्षी दलों ने 'जनता पार्टी' का गठन करके उसमें अपना विलय कर एक चुनाव-चिह्न पर चुनाव में उतरने का फ़ैसला किया। नवगठित जनता पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखर और चार महामंत्रियों में एक नानाजी बनाए गए। नानाजी ने चुनाव नहीं लड़ने का निर्णय किया था, परंतु जे.पी. के आदेश पर उत्तर प्रदेश के बलरामपुर क्षेत्र से प्रत्याशी बने। बलरामपुर की रानी राजलक्ष्मी को इन्होंने चुनाव में हराया। इस आम चुनाव में जनता पार्टी की जीत हुई, पर साथ ही आंतरिक सत्ता संघर्ष भी आरंभ हो गया। ऐसे में नानाजी एक साथ तीन मोरचों पर सक्रिय हुए। एक, दीनदयाल शोध संस्थान को एक प्रभावकारी

बौद्धिक केंद्र बनाना। दो, जनता पार्टी के अंदरूनी सत्ता कलह को समाप्त कर सरकार को जे.पी. के सपनों की पूर्ति का माध्यम बनाना। तीन स्वयं के लिए ग़ैर-राजनीतिक रचनात्मक कार्य की भूमिका निश्चित करना। राजनीति की चरित्रगत गिरावट ने उनके मन में वितृष्णा पैदा की। सत्ता प्राप्त करने के लिए छीना-झपटी और षड्यंत्रों को देख उन्होंने तय किया कि परिवर्तन के लिए समाज के कमज़ोर लोगों को सशक्त बनाने हेतु रचनात्मक कार्य को माध्यम बनाना है।

उनका विश्वास दृढ होता गया कि वर्तमान राजनीतिक प्रणाली के भीतर लोकशक्ति का जागरण और सर्वांगीण विकास असंभव है। इस दिशा में क़दम बढ़ाने के लिए उन्होंने 20 अप्रैल, 1978 को साठ साल से अधिक आयु के अनुभवी राजनीतिज्ञों से आग्रह किया कि वे सत्ता से अलग होकर रचनात्मक कार्य में आएँ। कोई नहीं आया। पर नानाजी निराश नहीं हुए। 8 अक्तूबर, 1978 को पटना में जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में एक ऐतिहासिक वक्तव्य देकर सत्ता राजनीति से संन्यास की घोषणा की। उन्होंने कहा कि अब वे चुनाव नहीं लड़ेंगे और आगे का जीवन रचनात्मक कार्य में लगाएँगे। बासठ साल की आयु में नानाजी ने 54 एकड़ क्षेत्रफल का एक विशाल परिसर बनाया। जयप्रकाश नारायण और उनकी पत्नी प्रभावती देवी के नाम पर इसका नामकरण किया—'जयप्रभा ग्राम'; 'हर खेत को पानी, हर हाथ को काम' का नारा देकर उन्होंने ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए चार सूत्र निर्धारित किए—स्वावलंबन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समरसता। रचनात्मक कार्य की दिशा में अग्रसर होते हुए नानाजी ने चित्रकूट में 'ग्रामोदय' योजना विकसित की, ताकि आरंभिक शिक्षा से एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त युवजन शहरों की ओर भागने की बजाय ग्राम्य जीवन अपनाने की दिशा में प्रवृत्त हों। इन्होंने चित्रकूट में आरोग्यधाम, उद्यमिता विद्यापीठ, गोपालन, वनवासी छात्रावास, गुरुकुल आदि प्रकल्पों की एक श्रृंखला ही खड़ी कर दी।

नानाजी देशमुख के रचनात्मक अवदानों को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति ने इन्हें 1999 में राज्यसभा के लिए नामित किया, ताकि पूरे देश को इनके अनुभव और तप का लाभ मिले। राष्ट्र ने इनके प्रति सम्मान देते हुए 'पद्मभूषण' से सम्मानित भी किया। 27 फरवरी, 2010 को नानाजी महाप्रयाण कर गए और छोड़ गए विराट् दाय।

—देवेंद्र स्वरूप

संपादकीय

1966—एक ही वर्ष का है यह तेरहवाँ खंड। 1965 में पाकिस्तान के आक्रमण का प्रतिरोध हुआ एवं भारत की विजय हुई, भारत के इतिहास का यह स्वर्णिम अध्याय था। 1966 ने इस अध्याय का स्वर्ण छीन लिया, ताशकंद समझौते में अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्रों ने उस विजय से हमको वंचित कर दिया, युद्ध-जेता प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का भी बलिदान हो गया। भारत की यशस्विता पर पानी फिर गया। दीनदयालजी आहत हुए, भारतीय जनसंघ मुखरित हुआ। दीनदयालजी ने एक पुस्तक लिखी '**वचन भंग**'।

सन् 1964 में विश्व हिंदू परिषद् की स्थापना हुई थी, यह एक युगांतकारी घटना थी, भारतीय संप्रदायों की स्वायत्तता असंपृक्तता की नियामिका बन गई थी। संप्रदायों का वैशिष्ट्य तथा उसमें भारतीयता किंवा हिंदुत्व की सुगंध विलोपित सी हो रही थी, अस्पृश्यता आदि विकृतियों को हिंदुत्व माना जाने लगा था। परिवर्तन की अपेक्षित आकांक्षा ने रा.स्व. संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्रीगुरुजी (मा.स. गोलवलकर) के सान्निध्य में विश्व हिंदू परिषद् का बीज वपन हुआ। दीनदयालजी ने लिखा, 'विश्व हिंदू परिषद् : एक सामयिक योजना' संयोग से इस वर्ष के उनके प्रथम आलेख का शीर्षक भी है 'सेक्यूलरिज्म इज ए गिफ्ट ऑफ हिंदुइज्म'। इसी वर्ष 'हिंदुत्व' के आलेखक क्रांतिधर्मी वीर विनायक दामोदर सावरकर का भी निधन हुआ, दीनदयालजी ने उनकी श्रद्धांजलि में एक लेख लिखा। गोहत्या विरोधी आंदोलन की पृष्ठभूमि का है यह वर्ष, अतः वर्ष का अंतिम समाचार इसी संदर्भ में है।

आर्थिक विषयों पर उनकी लेखनी प्रतिवर्ष प्रखरतम नवीनता के साथ प्रकट

होती है। पंचवर्षीय योजनाओं के वे निरंतर अध्येता हैं, चौथी पंचवर्षीय योजना की उन्होंने सार्थक मीमांसा की है। भारत की सुरक्षा एवं भारत का आर्थिक विकास, लोग इनको परस्पर विरोधी तत्त्व मानते रहे हैं, दीनदयालजी ने इस भ्रम के निवारण का प्रयत्न किया। अर्थनीति प्रारंभ से ही विपथगामिनी हो गई थी, दीनदयालजी निरंतर चेतावनी दे रहे थे। इसका परिणाम भी आया, इस वर्ष भारतीय रुपए का भयानक अवमूल्यन हुआ। दीनदयालजी की दूसरी पुस्तक आई 'डीवेल्युएशन : ए ग्रेट फॉल' (अवमूल्यन : एक महान् गिरावट)। 'आर्थिक दासता की राह पर भटकता भारत' उन्हें बहुत चुनौतिपूर्ण लगता था।

1967 में भारत का चतुर्थ महानिर्वाचन होना था, यह पृष्ठभूमि का वर्ष था। दीनदयालजी भारतीय जनसंघ को इस समर की तैयारी के लिए सन्नद्ध कर रहे थे, लेकिन भारत की चुनाव प्रक्रिया व उसके क़ानून उन्हें सार्थक लोकतंत्र के लिए अनुकूल नहीं लगते थे, वे तो लोकतंत्र के भारतीयकरण के हिमायती थे। उन्होंने निर्वाचन पूर्व के इस वर्ष में 'चुनाव विधान पर कुछ विचार' आलेख लिखा तथा जनतंत्रद्रोहियों से देश को बचाने की अपील की। ग़ैर-कांग्रेसवाद के नाम पर उभरती राजनीति उनके नैतिक एवं सिद्धांतवादी मन को बहुत रास नहीं आती थी। वे भारतीय जनसंघ को ही वैकल्पिक राजनीति का नियामक बनाना चाहते थे, वे जनसंघ को न तो निपट चुनावी दल बनाना चाहते थे, न ही किसी दल का विकल्प।

संघ शिक्षा वर्गों के इस वर्ष दो ही बौद्धिक वर्ग प्राप्त हो सके, वे भी अविकल नहीं वरन् सारांश मात्र। इस खंड की वस्तुतः यह एक गंभीर कमज़ोरी है, लेकिन कोई उपाय नहीं है।

उन्होंने 1967 के चुनावों का भविष्यकालिक आकलन भी अपने इस वर्ष में किया है। वैचारिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से बहुत समृद्ध रहा यह वर्ष।

हर खंड के समान ही इस खंड की भी भूमिका के लिए उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री राम नाईक को आग्रह किया गया। श्री राम नाईक उन लोगों में है जो दीनदयालजी के ऐतिहासिक चार मुंबई भाषणों में उपस्थित थे। 'वह काल' का लेखन श्री राहुल देव ने बहुत ही सर्वांगपूर्णता के साथ किया है।

शुभम्।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

इतिहास निर्मम होता है। इसकी अपनी गति है। इसके हृदय और बुद्धि में अकरणीय, करणीय और अनुकरणीय घटनाओं का लेखा जोखा होता है। सजग इतिहास-बोध वाले समाज व राष्ट्र अनुकरणीय से प्रतिबद्ध रहते हैं। भारत अति प्राचीन राष्ट्र है। सो यहाँ का इतिहास दर्शन विराट् है। यहाँ उत्पादन के साधनों व पद्धतियों का इतिहास भी मजेदार है और सत्ता संघर्षों का भी। लेकिन इस इतिहास में सत्य, शिव और सुंदर के आग्रह को लेकर किए गए सांस्कृतिक कार्यों की विवरणी अनूठी है।

सामान्यतया इतिहास की धारा अपनी गति से ही चलती है। इतिहास रथ के घोड़ों को लगाम डालना आसान नहीं होता। लेकिन कई महापुरुषों ने भारतीय इतिहास की गति और दिशा में हस्तक्षेप भी किया है। उन्होंने इतिहास रथ के अश्वों को परिवर्तन की दिशा में चलने के लिए विवश किया है। किसी भी समाज का वर्तमान पूर्वजों के ही सचेत, अचेत कर्मों का परिणाम होता है। वर्तमान काल निरपेक्ष सत्ता नहीं है। इसमें अतीत के संचित कर्म हैं। ग़लितयाँ हैं, चूके हैं। सामाजिक पुनर्गठन के कर्मफल हैं। अतीत के गर्भ का ही विस्तार है हमारा वर्तमान काल।

भारत विश्व की अनूठी राष्ट्रीयता है। यहाँ तत्त्ववेत्ताओं की अनूठी परंपरा है, इनमें विचार विविधता है, लेकिन ऋग्वेद के 'एक सत्य-एकं सद्' पर सबकी अनुभूति एक है। ऋग्वेद के मंत्र ज्ञानवर्द्धक व आह्लादकारी हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त विश्व की सर्वश्रेष्ठ मनोरम काव्य रचना है। उपनिषद् के ऋषि अनूठे हैं: वाल्मीकि और व्यास अद्वितीय हैं। तुलसी और सुब्रह्मण्यम भारती, रवींद्रनाथ टैगोर और बंकिमचंद्र इसी परंपरा के दीप्तिमान सूर्य-चंद्र हैं। योगी अरविंद, दयानंद, विवेकानंद

जैसे शिखर पुरुष राष्ट्र आराधक हुए। इसी शृंखला में हैं पं. दीनदयाल उपाध्याय। वे राजनीति में रहते हुए दर्शन और राष्ट्र आराधन का निष्काम तप करनेवाले विरल व्यक्ति हैं। असाधारण होना आसान है, लेकिन असाधारण होकर भी साधारण बने रहना अतिरिक्त तप माँगता है। उपाध्यायजी ऐसे ही असाधारण व्यक्ति थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय से जुड़ा एक मार्मिक प्रसंग याद आता है। मुंबई महानगर कामगारों से भरापूरा रहता है। यहाँ की आवासीय समस्या बहुत पुरानी है। मज़दूरों को जहाँ जगह मिली, वहीं रैन बसेरा। टाट की छत, लकड़ी या दफ्ती का घर। झोंपड़पट्टी से आबाद यहाँ नए तरीके का शहर था। इसे 'धारावी' भी कहा गया। झोंपड़पट्टियाँ ग़ैर क़ानूनी होती हैं, लेकिन इनमें रहनेवाले मज़दूर कामगार देश विकास के जीवंत देवता। सरकारें अभियान चलाकर झोंपड़पट्टियाँ उजाड़ देती थीं। कामगारों के रहने की समस्या विकराल थी। मुझे इस मानवीय समस्या ने झकझोर दिया। हम कार्यकर्ता उनके पक्ष में खड़े हो गए। हम लोगों ने 'झोंपड़पट्टी जनता परिषद्, मुंबई' नाम का संगठन खड़ा किया। ग़ैर क़ानूनी बस्तियों के पक्ष में होने के कारण कुछ लोग आलोचक भी थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय उन्हीं दिनों मुंबई आए। हमने अपना विषय रखा। उन्होंने अपने परिवार की दादी की मार्मिक कहानी सुनाई। युवा पुत्र घर में चिड़िया द्वारा लगाए गए घोंसले को उजाड़ने जा रहा था। दादी ने पूछा, 'यह घोंसला बनाने में चिड़िया को कितना समय लगा होगा?' युवक ने कहा, 'कम से कम दो-तीन माह।' दादी ने कहा कि 'इसने तिनका-तिनका जोड़कर अपना घर बनाया है। तुमने शुरू में ही इसे क्यों नहीं रोका। अब घर उजाड़ना और बेघर करना कहाँ का न्याय है?'

पंडितजी ने कथा सुनाते हुए कहा, 'सबको घर चाहिए। बेघर करना उचित नहीं। मैं मनुष्य हूँ, सभी मनुष्यों को घर चाहिए। ये पक्षी हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतिंगे को भी आश्रय और आवास चाहिए।' उन्होंने हमसे कहा कि तुम 'झोंपड़पट्टी जनता परिषद्' के माध्यम से सही काम कर रहे हो। परिषद् का घोष वाक्य था, 'मैं भी मनुष्य हूँ, मुझे घर चाहिए।'

पं. दीनदयाल उपाध्याय के दार्शनिक ज्ञान की ओर विद्वान् लेखकों का ध्यान प्रायः नहीं गया। उन्होंने शंकराचार्य पर एक किताब लिखी थी। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा है। उपाध्यायजी ने अद्वैत दर्शन की प्रतिष्ठा का श्रेय बादरायण को दिया है। लिखा है, 'शंकर के नाम के साथ अद्वैत तथा वेदांत का इतना अटूट

संबंध जुड़ गया है कि लोग शंकर को ही वेदांत तत्त्वज्ञान का जन्मदाता समझने लग गए हैं। वैसे तो सब तत्त्वज्ञानों के समान वेदांत तत्त्व आदि का स्रोत वेदमंत्र ही है, किंतु इसको संसार के समक्ष प्रकट करनेवाले महर्षि बादरायण थे।' (शंकराचार्य, लोकहित प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ 21)

उपाध्यायजी ने लिखा है—'महर्षि बादरायण के काल में वैदिक धर्मावलंबियों में तीन तत्त्वज्ञान मुख्यतया प्रचलित थे, कणाद का वैशेषिक दर्शन, गौतम का न्याय दर्शन तथा कपिल का सांख्य दर्शन। इसके अतिरिक्त चार्वाक का लोकायत दर्शन, जैनों का अर्हत् दर्शन तथा बौद्धों का तथागत दर्शन बहुत प्रसिद्ध है।' उक्त दर्शनों में से अंतिम तीन न तो ईश्वर को मानते थे और न वेदों को ही। (वही, पृष्ठ 21) उपाध्यायजी ने तत्कालीन समाज का दार्शनिक विवरण दिया है। दीनदयालजी लिखते हैं कि 'लेकिन वेदांत इन सबमें प्रमुख है।' (वही, 22) वेदांत ही प्रमुख क्यों है? लिखा है, 'युगों-युगों से हिंदुस्थान के महापुरुषों ने इसी में शांति पाई है। इसी का आश्रय लेकर जीवन भर लोकसंग्रहार्थ कार्य हुए हैं।' अद्वैत दर्शन भारत की सनातन परंपरा है। वेदांत को सूत्रों में बाँधने का काम बादरायण ने किया था, लेकिन दर्शन को भारत के जन-जन तक पहुँचाने का काम शंकराचार्य ने किया। वेदांत दर्शन भारतीय दर्शन का प्रतिनिधि है। उपाध्यायजी भारत की सांस्कृतिक एकता में ही राष्ट्रभाव की स्थिरता देखते थे। राजा और राज्य व्यवस्थाएँ आती-जाती रहती हैं, लेकिन सांस्कृतिक प्रवाह अविच्छिन्न रहते हैं। शंकराचार्य ने भारत की सांस्कृतिक एकता को नई ऊर्जा दी थी।

राष्ट्र भू-सांस्कृतिक बोध है। मनुष्य मनुष्य के साहचर्य से संगठित मानव समूह/समाज बनते हैं। इस मानव समूह की साझी जीवनशैली विकसित होती है। कृषि, आवास आदि कारणों से यह समूह अपने भूनिवास से प्रेम करने लगता है। भूमि, जन और संस्कृति का मिलन राष्ट्र बनाता है।

पंडित दीनदयालजी ने राष्ट्र, राज्य और देश को अलग बताया, 'जिस प्रकार 'राष्ट्र' की 'राज्य' से भिन्न सत्ता है, उसी प्रकार 'राष्ट्र' और 'देश' भी एक नहीं है। एक निश्चित भूमिखंड और उसमें निवास करनेवाला मानव समुदाय मिलकर देश कहा जाता है। भूमिखंड और जनसमुदाय दोनों को हम भली प्रकार देख, सुन और समझ सकते हैं। इसलिए जब हम राष्ट्र का वर्णन करने लगते हैं तो हमें इसी दृश्यमान देश का वर्णन करना पड़ता है। यही कारण है कि देश और राष्ट्र समानार्थी

बनकर उपस्थित होते हैं। जिस प्रकार 'राज्य' राष्ट्र का प्रतिनिधि बनकर हमें दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार देश भी राष्ट्र की अभिव्यक्ति का ठोस आधार बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है। यहाँ तक कि बिना देश के हम किसी राष्ट्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह सूक्ष्म रहस्य हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिस प्रकार देश एक दृश्यमान सत्ता है, उसी प्रकार 'राष्ट्र' एक दृश्यमान सत्ता है। देश दिखाई पड़ता है, राष्ट्र दिखाई नहीं पड़ता। ठीक वैसे ही जैसे शरीर दिखाई पड़ता है, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती।' (राष्ट्रजीवन की दिशा, पृष्ठ 44-45)

उपाध्यायजी कहते हैं, 'राष्ट्र एक स्थायी सत्य है। राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए राज्य पैदा होता है। राज्य की उत्पत्ति के दो कारण बताए जाते हैं। पहली आवश्यकता तब होती है, जब राष्ट्र के लोगों में कोई विकृति आ जाए। उसके कारण उत्पन्न समस्याओं का नियमन करने के लिए राज्य उपस्थित किया जाता है। दूसरी आवश्यकता है, जब समाज में कोई जटिलता आ उपस्थित हुई हो। सार्वजनिक जीवन में व्यवस्था निर्माण करना ज़रूरी हो, निर्बलता, असहायता, दरिद्रता का लाभ शक्तिशाली, संपन्न और साधन युक्त वर्ग न उठा सके, सब न्याय की सीमाओं में बँधे चल सकें, इसके लिए राज्य का निर्माण किया जाता है। वास्तव में इन दो कारणों से ही 'राज्य' उत्पन्न होता है। तीसरा कार्य विश्व के अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करना है। बाह्य आक्रमण से रक्षा करने का कार्य भी राज्य करता है।'' (राष्ट्र जीवन की दिशा : पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 38)

भारत को भौतिकवाद से दूर अंधआस्थावादी कहा जाता है। उपाध्यायजी ने इस आरोप का खंडन किया है—'यह भ्रम दूषित प्रचार एवं आध्यात्मिकता का गलत अर्थ करने का परिणाम है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे धर्म की व्याख्या भौतिकता का पूर्ण विचार करके चलती है। 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः', अर्थात् जिससे ऐहिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त हो, वह धर्म है।

राष्ट्र जीवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय की विशेष महत्ता है। वे मौलिक चिंतक के साथ अर्थशास्त्री भी थे। वे मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करानेवाले अर्थचिंतन के पक्षधर थे। 'बाज़ार व्यवस्था भी मानवीय अंतर्संबंधों की दृढता के कारण गतिशील होती है। बाज़ार सिद्धांत से ग्राहकवाद बढ़ता है। ग्राहकवाद आवश्यकता की जगह रुचिकर वस्तुओं का जाल खड़ा करता है। ग्राहकवाद में आवश्यक वस्तुओं का ही उत्पादन नहीं होता। ग़ैर-ज़रूरी वस्तुओं को प्रचार के

जरिए ज़रूरी बताया जाता है। अनियंत्रित उपभोग लिप्सा का विस्तार ही बाजारू अर्थव्यवस्था का मूल तत्त्व है। भारत की प्राचीन परंपराएँ ऐसी व्यवस्था से सर्वथा पृथक् रही हैं।''

पंडितजी का कहना है कि 'भारतीय संस्कृति और उसका प्राचीन विवेक ही एक ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं, जो वास्तविक आवश्यकताओं से संबद्ध हो।' (पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, पृष्ठ 47, खंड-4) पश्चिमी अर्थ-चिंतन में, 'मानवीय गरिमा और महिमा' के तत्त्व की उपेक्षा हुई है। पं. दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं—'मनुष्य के जीवन का लक्ष्य और उसमें अर्थ का स्थान निश्चित न होने के कारण हम उस मार्ग का भी ठीक निर्धारण नहीं कर पा रहे हैं, जिस पर चलकर श्री और समृद्धि का उपभोग कर सकें। साध्य का पता लगे बिना साधन का निश्चय कैसे हो सकता है? मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं का पिंड नहीं अपितु वह एक आध्यात्मिक तत्त्व है, जिसने भौतिक शरीर धारण कर रखा है। किंतु जिस पश्चिम का अनुकरण कर हम अपने अर्थनैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर रहे हैं, वहाँ जीवन के इस सर्वसंग्राही भाव के लिए कोई स्थान नहीं।'

समकालीन भारतीय अर्थदृष्टिकोण से चिंतित पंडितजी आगे कहते हैं, 'आज हमारे मन, वचन, और क्रर्म में अंतर्विरोध उत्पन्न हो गया है। यह संघर्ष हमें अपनी संपूर्ण शक्ति से आर्थिक समृद्धि, आज की योजनाओं को पूर्ण करने में भी जुटने नहीं देता। जो कुछ हम करते हैं, वह अन्यमनस्क भाव से और जब हमें अपने प्रयास सफल होते हुए नहीं दिखते तो मन में एक विफलता, आत्मज्ञान-आत्मविश्वास हीनता का भाव उत्पन्न होता है।' (भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 10 व 11)

धन साधन है। धन का अपना प्रभाव भी होता है। धन के अभाव की ही तरह 'धन के प्रभाव' की भी अपनी कठिनाइयाँ होती हैं। व्यक्ति स्वयं अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए और फिर राष्ट्र और संपूर्ण मानवता के लिए किए जानेवाले अपने सत्कर्मों की आचार सारिणी धर्म से प्राप्त करता है। मगर गरीबी और भुखमरी के दौर में ऐसी आचार संहिता के परिपालन में कठिनाइयाँ होती हैं। पंडितजी कहते हैं—'अर्थ का अभाव ही नहीं, अर्थ का अत्यधिक प्रभाव भी धर्म का नाश करता है। यह भारत का अपना विशेष दृष्टिकोण है। पश्चिम के लोगों ने अर्थ के प्रभाव का

विचार नहीं किया।' (वही, पृष्ठ 18-19) समाज के व्यवहार व व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मानदंड धन होना खतरनाक है। पंडितजी ने इसे अर्थ का प्रभाव कहा है। वे कहते हैं, 'तब ऐसे समाज में 'सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति' की उक्ति चरितार्थ होती है। मान, सम्मान, राजनीतिक अधिकार तथा समाज में स्थान जब केवल धनवान व्यक्ति को ही प्राप्त हो, वहाँ लोगों में धनपरायणता आ जाती है। धन का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देता है।' (भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, पृष्ठ 19, पं. दीनदयाल उपाध्याय)

उपाध्यायजी का लिखा, बोला राष्ट्रजीवन का पाथेय है। संप्रति भारतीय जीवन मूल्यों व चकाचौंध वाली परदेशी सभ्यता का टकराव है। ऐसे में उपाध्यायजी के एक-एक शब्द की महत्ता है। संपूर्ण वाङ्मय के रूप में उनके विचार संसार व शब्दसार को संकलित करने का प्रयास अनूठा है। प्रसन्नता है कि यह 15 खंडों में प्रकाशित हो रहा है। तेरहवाँ, खंड भारतीय राजनीति और समाज जीवन की विशेष कालावधि से जुड़ा हुआ है। इस खंड में संकलित सामग्री की थोड़ी चर्चा ज़रूरी है।

'सेकुलर' शब्द राजनीति का खोटा सिक्का है। यह विचार यूरोपीय चर्च व राजाओं के टकराव से अस्तित्व में आया था। सेकुलर का मूल अर्थ है—प्रत्यक्ष भौतिक। ग़ैर पंथिक। संविधान के अधिकृत हिंदी पाठ में सेकुलर का अर्थ 'पंथनिरपेक्ष' है। हिंदू या भारतीय जीवनशैली मूलरूप में पंथनिरपेक्ष ही है, लेकिन 1966 में मो. करीम छागला ने वाराणसी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदू शब्द हटाने की माँग की थी। दीनदयालजी ने ऑर्गनाइज़र में लिखा 'हिंदू सांप्रदायिक शब्द नहीं है। भारत का सेकुलरिज्म हिंदुत्व का उपहार है।' (वही 2 जनवरी, 1966) भारत का राष्ट्रभाव हिंदुत्व के कारण पंथनिरपेक्ष है।

लाल बहादुर शास्त्री महान् नेता थे। ताशकंद वार्त्ता के बाद उनकी मृत्यु हो गई। 1966 के 16 जनवरी 'ऑर्गनाइज़र' में प्रकाशित पंडितजी की टिप्पणी का शीर्षक है 'होम दे ब्राट देयर वारियर डेड।' तब प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का शव ताशकंद से भारत लाया गया था। पंडितजी ने स्पष्ट किया कि शास्त्रीजी ताशकंद समझौते से अप्रसन्न थे। शास्त्रीजी ने अपनी इच्छा के विपरीत समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। 'प्रधानमंत्री गुलजारी लाल नंदा ने कहा था कि भारत ताशकंद समझौते के एक-एक शब्द का पालन करेगा।' पंडितजी ने चेतावनी देते हुए लिखा था, 'नहीं! हम ताशकंद समझौते की व्यापक जाँच चाहते हैं।'

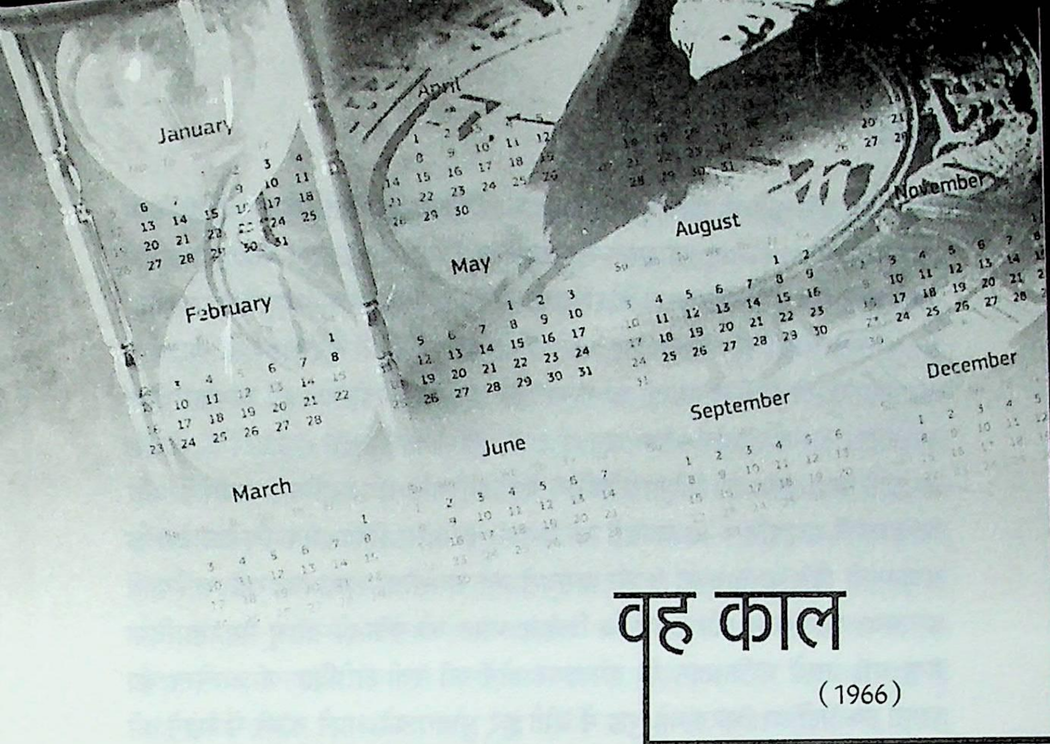
पुस्तक में 'वचनभंग, ताशकंद घोषणा की शव परीक्षा' शीर्षक से दीनदयालजी की लिखी सामग्री है। यह भारतीय इतिहास पर संग्रहणीय दस्तावेज है। आलेख में ताशकंद घोषणा का मूल मसौदा भी है। ताशकंद अंतरराष्ट्रीय करार था। प्रधानमंत्री द्वारा हस्ताक्षरित था, लेकिन पंडित दीनदयालजी ने साहसिक पहल की थी। इसी खंड में विषय को ठीक से समझानेवाली सामग्री है। यह ध्यान से पठनीय है कि हमारे शासक विदेशी प्रभाव में बड़ी-बड़ी ग़लितयाँ कर रहे थे। 'सुरक्षा और विकास परस्पर विरोधी नहीं पूरक हैं' शीर्षक आलेख में कई मूलभूत विचार हैं। लिखते हैं—'चीन और पाकिस्तान प्राकृत शत्रु हैं। उनके साथ संबंधों में थोड़ा-बहुत उतार-चढ़ाव भले ही चलता रहे, किंतु हमें यह ध्रुव समझना होगा कि वे दोनों हमारे प्राकृत शत्रु हैं।' लिखा है, 'पाकिस्तान के साथ हमारी सीमा अप्राकृतिक है।' पंडितजी यह आधारभूत बातें 1966 में लिख रहे थे। तब से अनेक वर्ष बीत गए। पाकिस्तान युद्धरत भारत विरोधी देश के रूप में सक्रिय है। तब भारत ने सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित करने की माँग की थी, लेकिन ताशकंद में बात पलट गई। दीनदयालजी का यह आलेख बार-बार पठनीय है। उन्होंने उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में इसी विषय पर वक्तव्य जारी किया था। अच्छी बात है कि यह वक्तव्य भी इसी पुस्तक में संकलित है।

विनायक दामोदर सावरकर भारतीय इतिहास के विरल पुरुष थे। उनके निधन पर पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'ऑर्गनाइज़र' (6 मार्च, 1966) में भाव-प्रवण इतिहास बोधक लेख लिखा था। पुस्तक का यह आलेख मार्मिक व ज्ञानवर्द्धक है। चौथी पंचवर्षीय योजना पर लिखा गया आलेख तत्कालीन अर्थव्यवस्था व सरकारी नीतियों की वास्तविक शल्य परीक्षा है। इस खंड में संकलित भारतीय जनसंघ विषयक सामग्री में तत्कालीन राजनीति में राष्ट्रवादी हस्तक्षेप की सम्यक् जानकारी है।

यह खंड पं. दीनदयाल उपाध्याय की अभिव्यक्ति का मूल्यवान हिस्सा है। अभिव्यक्ति का भावार्थ स्वत: स्पष्ट है। उनका लेखन-कथन तथ्य, तर्क और राष्ट्र सर्वोपरिता की मनोभूमिका का विस्तार है। यह मार्गदर्शी है। इसमें राष्ट्रवादी के लिए नीति-निर्देशक तत्त्व हैं। इस पर भूमिका लिखने का शब्द-सामर्थ्य मेरे पास नहीं है।

मैं इस सारसंग्रही खंड के लोकप्रिय होने की शुभकामना करता हूँ।

—राम नाईक



वह काल

(1966)

दूरगामी परिवर्तन लाने वाला वर्ष

युगांतरकारी तो कई वर्ष हुए हैं अपने इतिहास में, पर शुरू होते ही इतिहास बदलने वाले, गहरे और दूरगामी परिवर्तन लानेवाले कुछ ही होंगे। वर्ष 1966 उनमें एक है।

देश पिछले साल अगस्त-सितंबर में पाकिस्तान के साथ युद्ध में जीतने की खुशी, सकारात्मकता और गर्व से अब भी आविष्ट था। सन् 1962 में चीन से अपमानजनक पराजय के बाद 1965 में पाकिस्तान को जमकर मज़ा चखाने के अनुभव ने देश का आत्मविश्वास और मनोबल खूब बढ़ा रखा था। छोटे कद के सरल, शुद्ध देसी आम आदमी लगनेवाले पौने दो साल पुराने प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने जवाहरलाल नेहरू की विराट् छाया से अपने को मुक्त करके, अपने बारे में सारी आशंकाओं को दूर करके देश को पाकिस्तान से युद्ध में निर्णायक जीत दिलाई थी। उनके तेजी से बढ़ते राजनीतिक कद ने देश और विदेश दोनों जगह एक स्पष्ट, सकारात्मक छाप छोड़ी थी। उनकी अहिंसक, गांधीवादी छवि इतने कम समय में ही एक निर्णायक, मज़बूत और नवाचारी नेतृत्वशाली नेता में बदल चुकी थी। सबको इस अति साधारण दिखनेवाले, शांत, सौम्य प्रधानमंत्री से बड़ी आशाएँ जाग चुकी थीं।

इस पृष्ठभूमि में साल शुरू होते ही कल्पनातीत तुषारापात हुआ। ताशकंद में शास्त्रीजी की अकस्मात् हृदयाघात से मृत्यु हो गई। उससे कुछ घंटे पहले ही उन्होंने भारी रूसी दबाव में पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान के साथ 'ताशकंद समझौते' पर हस्ताक्षर किए थे। रूसी प्रधानमंत्री कोसिजिन ने दोनों युद्धरत देशों के बीच समझौता कराने के लिए अपनी मध्यस्थता का प्रस्ताव किया था। इसे मानकर दोनों राष्ट्राध्यक्ष ताशकंद पहुँचे। एक सप्ताह तनावपूर्ण वार्त्ताएँ चलीं। अंत में दोनों एक समझौते पर सहमत हुए और कोसिजिन की उपस्थिति में भारतीय प्रधानमंत्री और पाकिस्तानी राष्ट्रपति ने 10 जनवरी को उस पर हस्ताक्षर किए। एक विजेता देश के प्रधानमंत्री होने के बावजूद उनपर बराबरी का समझौता लादा जा रहा था, यानी हमलावर पाकिस्तान और हमले के शिकार भारत को एक ही तराजू पर रख दिया गया था। उसमें पाकिस्तान के हमलावर होने की स्वीकारोक्ति या उल्लेख का इशारा तक नहीं था। भारत को युद्ध में जीते हुए भूभाग को अपने कब्जे में रखने की और पाकिस्तान को इस मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने की माँगें छोड़नी पड़ी थीं। रूस सरकार का इसे मानने के लिए बहुत दबाव था। रूस इस समझौते का श्रेय लेकर अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी राजनयिक हैसियत और दक्षिण एशिया में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। देश यह कभी नहीं जान पाया कि किन परिस्थितियों में, किन दबावों में शास्त्रीजी को हस्ताक्षर करने पड़े। उनकी मृत्यु के कारणों पर भी आज तक एक रहस्य लोगों के मन में बना हुआ है। विभिन्न संभावनाओं, संभावित षड्यंत्रों की चर्चाएँ हुईं, विवाद हुए, उनके परिवार के सदस्यों को दिल के दौरे की बात पर कभी पूरा भरोसा नहीं हुआ, कुल मिलाकर आधिकारिक मत यही बना कि उनका एक दिल का दौरा झेल चुका दिल और राष्ट्रीय स्वाभिमान उस अंतिम सप्ताह के दौरान उन पर पड़े ज्ञात-अज्ञात दबावों और हस्ताक्षर करने की विवशता को सहन न कर सके और नींद में ही उनका निधन हो गया।

सारा देश स्तब्ध था। एक विजेता के रूप में ताशकंद गए शास्त्रीजी का शव ही लौटा था, रूसी विमान में रूसी प्रधानमंत्री कोसिजिन के साथ। दीनदयालजी ने लिखा—Home they brought their warrior dead. सचमुच दो से कम सालों में ही पाकिस्तान से 1965 दो युद्धों में अपने निर्णायक, सक्षम नेतृत्व से गांधी के इस परम शिष्य, शांतिवादी नेहरू के विश्वस्त सहयोगी और उत्तराधिकारी ने दिखा दिया था कि वह अहिंसावादी होने के बावजूद ज़रूरत पड़ने पर कड़े, स्पष्ट और

साहसी सैनिक फैसले ले सकता था; युद्ध से मुँह चुरानेवाला नहीं, युद्ध की तैयारी भी कर सकता था, लड़ सकता था और जीत सकता था।

इसकी तुलना के लिए 1962 के चीनी आक्रमण का वह समय याद करना होगा, जब प्रधानमंत्री नेहरू ने अपनी पिटती थलसेना की गुहारों के बावजूद उसे वायुसेना का कवच देने से इनकार कर दिया था। इसके विपरीत शास्त्री ने अपने सैन्य अधिकारियों को पूरा समर्थन दिया और अपने सेना कमांडरों को पाकिस्तानी पंजाब सीमा के भीतर घुसकर हमले की भी अनुमति दी। हालाँकि यह भी हमारे इतिहास का एक विवादित और अनुत्तरित प्रश्न है कि जब भारतीय सेनाएँ 1965 में कश्मीर और पंजाब के मोरचों पर लड़ती हुई लाहौर से सिर्फ तीन किमी. रह गई थीं तो उन्हें वहीं क्यों रोक दिया गया? भारतीय आधिकारिक पक्ष का कहना था कि सेना घने बसे लाहौर में गली-गली, घर-घर के खतरनाक और जनघाती युद्ध में जाए और लाहौर पर कब्ज़ा करे, यह एजेंडे पर था ही नहीं। जो भी हो, इससे पाकिस्तान को यह दावा करने का मौका मिल गया कि उसके रणबाँकुरों ने भारतीय सेना के लिए आगे बढ़ना असंभव कर दिया और भारतीय सेनाध्यक्ष की वह घोषणा निष्फल कर दी कि वह अपनी शाम की 'ड्रिंक' लाहौर जिमख़ाना में लेंगे।

और यों भारत के दूसरे प्रधानमंत्री 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्धों के सबसे प्रमुख शिकार बन गए।

इस युद्ध की पृष्ठभूमि का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है। सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध में भारत की सैन्य तैयारी और संकल्प के अभाव से हुई पराजय और उसके बाद 1965 में कच्छ के रन में उसकी सेनाओं को मिली आंशिक, आरंभिक सैनिक सफलता से पाकिस्तानी सैनिक राष्ट्रपति जनरल अयूब और उनके सलाहकारों की समझ यह बनी की भारत में युद्ध की इच्छाशक्ति और मनोबल ही नहीं है। उनके हमलों के पीछे एक लगभग खुली सांप्रदायिक सोच काम कर रही थी। इसलिए उन्होंने शास्त्री की भारत की सामरिक इच्छाशक्ति को बहुत कम करके आँका। एक पाकिस्तानी जनरल ने विश्वासपूर्वक घोषणा की कि 'एक सामान्य नियम है कि हिंदू मनोबल सही समय और स्थान पर की गई एक या दो कड़ी चोटों को सहन नहीं कर पाएगा।'

इस मानसिकता के साथ पाकिस्तानी मुसलमानों ने अपने कश्मीरी सहधर्मियों की ओर से उनके लिए यह सैनिक अभियान शुरू किया था। दस सदियों पहले

जीते गए युद्धों की स्मृतियों को उभारा गया। पाकिस्तानी लड़ाकों और अधिकारियों को विश्वास था कि इसलामी जोश और अमरीकी हथियारों का मिश्रण काफिरों को हराने के लिए काफी होगा। उम्मीद यह थी कि कश्मीरियों के विद्रोह कर देने के बाद वे दुश्मन के संचार तंत्र को काट देंगे और फिर धर्मयोद्धाओं की यह संयुक्त सेना टैंकों का काफिला लेकर ग्रांड ट्रंक रोड पर विजय यात्रा निकालते हुए दिल्ली पर कब्ज़ा कर लेगी और तब भारत को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर देगी। इन लड़ाकों के होंठों पर यह गाना था—हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिंदुस्तान।

असर ठीक उल्टा हुआ। समूचा भारत अपने सब मतभेद भुलाकर एक हो गया। बहुत से कश्मीरी भी भारतीय सेना के साथ हमलावरों से लड़े। केरल के एक मुसलिम सैनिक को भारत का उच्चतम वीरता पुरस्कार परमवीर चक्र मिला। राजस्थान के एक मुसलमान सैनिक अयूब खान ने कई पैटन टैंकों को अकेले ध्वस्त कर दिया। सारे देश में मुसलिम बुद्धिजीवियों और धर्मगुरुओं ने पाकिस्तान की निंदा और मातृभूमि के लिए अपनी जान देने के बयान दिए।

एक बड़ा अंतर यह था कि 1965 का भारत 1962 का भारत नहीं था, न रक्षामंत्री यशवंत राव चह्वाण 1962 के कृष्ण मेनन थे, और न शास्त्री नेहरू थे। इस शांतिप्रिय प्रधानमंत्री को पाकिस्तानी पैटन टैंक के ऊपर विजय की मुद्रा में फोटो खिंचाने में कोई हिचक न थी। नेहरू शायद यह नहीं करते। 'जय जवान जय किसान' का नारा इसी प्रधानमंत्री ने दिया था। इसी ने आजादी के अठारह सालों बाद सेना और कृषि दोनों को एक साथ इतना महत्त्व दिया था। इसी प्रधानमंत्री ने कृषि का बजट बढ़ाया, सी. सुब्रमण्यम जैसे तेज-तर्रार, गतिवान मंत्री को इस्पात और खान मंत्रालय से हटाकर कृषि व खाद्य मंत्री बनाया और इन दोनों ने आज भी सक्रिय देश के अन्यतम कृषि वैज्ञानिक तथा आविष्कारक डॉ. एम.एस. स्वामिनाथन तथा तत्कालीन कृषि सचिव शिवरामण के साथ मिलकर उस हरित क्रांति की नींव रखी, जिसने अगले कुछ वर्षों में ही सूखे, अकाल और भुखमरी के शिकार भारत को खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर बना दिया। युद्ध-विरोधी, अहिंसक प्रतिरोध के पुरोधा महात्मा के नेतृत्व में स्वतंत्रता पाए और बड़े उद्योगों, बड़े बाँधों, आधुनिक विकास की नेहरू घुट्टी पिलाए हुए देश के लिए यह एक बड़ा परिवर्तन था।

ऐसे लाल बहादुर शास्त्री का 18 महीनों में ही चला जाना इसलिए युगांतरकारी

घटना थी, क्योंकि इतने कम समय में ही इस प्रधानमंत्री ने दिखा दिया था कि यदि उसे पूरा समय मिलता तो देश उस रास्ते से बिल्कुल अलग ही दिशा में चलता, जिस पर नेहरू और उनके बाद उनकी बेटी के वामपंथी रुझान और नीतियों ने देश को चलाया तथा भारत ने अपनी तरुणाई के अमूल्य आरंभिक दशक खोए।

उस समय विश्व की प्रमुखतम अंग्रेजी पत्रिका, अमरीका की 'लाइफ' ने शास्त्री की मृत्यु को आवरण कथा बनाया, जैसा नेहरू के निधन को बनाया था। शास्त्री पर लाइफ का आकलन यों था : 'उनके साथ बहुत से भारतीय नेहरू की अपेक्षा ज्यादा गहरा लगाव महसूस करते थे। जो शास्त्री ने भारत को दिया, वह मुख्यत: एक मूड था—एक नया इस्पातीपन, राष्ट्रीय एकता का एक नया अहसास। चीन से युद्ध ने देश को लगभग ध्वस्त स्थिति में ला दिया था। लेकिन इस बार जब युद्ध आया तो हर चीज काम करती रही, रेलगाडियाँ दौड़ती रहीं, सेना डटी रही, कहीं सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए। पुराने नैतिक आडंबर, मोहभंग और ठहराव, भय और चिंता जा चुके थे।'

और तब शुरू हुआ इंदिरा युग। 12 जनवरी को शास्त्रीजी के अंतिम संस्कार के बाद 19 जनवरी को ही नेहरू परिवारभक्त कांग्रेस अध्यक्ष कामराज ने पार्टी के प्रांतीय मुख्यमंत्रियों, क्षत्रपों, वरिष्ठ नेताओं से धुँआ धार मंत्रणाएँ करके उन्हें अपनी ओर मिलाकर मोरारजी देसाई की घोषित दावेदारी को नाकाम करते हुए अनुभवहीन, अपरीक्षित नेहरू-पुत्री इंदिरा को भारत का तीसरा प्रधानमंत्री बनवा दिया।

उप-प्रधानमंत्री रह चुके मोरारजी की कार्यकुशलता, प्रशासनिक क्षमता और अनुभव, चरम नैतिकता, सादगी, न्यायप्रियता और कड़े निर्णय लेने की योग्यता, ये सब असंदिग्ध थे। पर उनकी सख्त प्रकृति और ग़ैर-लचीलापन उसके अधिकांश साथियों को डराता भी था।

इंदिरा गांधी 48 वर्ष की युवा, आकर्षक, पिता के साथ विश्व नेताओं से मिलजुल चुकीं और देश के चहेते जवाहर लाल नेहरू की बेटी थीं। कामराज और उनके सिंडिकेट कांग्रेसी साथियों के लिए ये गुण उन्हें ज्यादा स्वीकार्य बनाते थे। कामराज मंडली को यह भी विश्वास था कि अनुभवहीन इंदिरा सिंडिकेट संचालित सामूहिक नेतृत्व के लिए ज्यादा उपयोगी और लचीली होंगी मोरारजी की तुलना में। तभी निकले ये शब्द—गूँगी गुड़िया।

यह आशा कितनी सफल हुई, यह देश जानता है।

मोरारजी को मनाने की कोशिशें हुईं, पर प्रधानमंत्री बनने का अपना दूसरा और आयु को देखते हुए अंतिम अवसर देख रहे मोरारजी नहीं माने, घोषणा कर दी कि वे इंदिरा को सीधी चुनौती देंगे। कांग्रेस संसदीय दल में प्रधानमंत्री चुनने के लिए मतदान हुआ। इंदिरा गांधी को 355 वोट मिले, मोरारजी देसाई को 169।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने तुरंत घोषणा की कि उनकी सरकार नेहरू की नीतियों पर चलेगी और ताशकंद समझौते की सभी शर्तों का पालन किया जाएगा। शास्त्री की मृत्यु से स्तब्ध देश को तब तक समझौते का सटीक, गंभीर विश्लेषण करने का मौका नहीं मिला था, न देशमन उस मन:स्थिति में था। उसकी सबसे गहरी मीमांसा करनेवालों में थे दीनदयाल उपाध्याय। उन्होंने समझौते की बिंदुवार शव परीक्षा करते हुए उसे उन भारतीय शर्तों और संकल्प के विरुद्ध बताया, जो संसद् के सामने रखकर शास्त्रीजी ताशकंद गए थे। उन्होंने समझौते को देशहित विरोधी सिद्ध किया। लेकिन नई सरकार अपनी दिशा और मंतव्य स्पष्ट कर चुकी थी। प्रधानमंत्री ने कहा था—हमें ताशकंद की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए। हमें घर और बाहर शांति रखनी चाहिए, यदि संभव हो।

ताशकंद समझौते से जनसंघ ही असंतुष्ट नहीं था। केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य महावीर त्यागी ने भी समझौते के विरोध में त्याग-पत्र दे दिया। भारतीय जनसंघ और कई विरोधी दलों ने देश भर में उसके खिलाफ सभाएँ, आंदोलन किया। सबसे प्रखर आलोचना और आंदोलन दीनदयालजी के नेतृत्व में हुआ।

शांति बनाए रखनेवाली ताशकंद की भावना को जल्दी ही चुनौती मिल गई। मार्च में देश के उत्तर-पूर्व में मिजो सशस्त्र विद्रोह ने गंभीर रुख धारण कर लिया। भारतीय सेना को भारी गोलीबारी करनी पड़ी। नगालैंड के हिंसक प्रतिरोध के बाद यह दूसरा बड़ा सशस्त्र विद्रोह था। अलग नगालैंड के लिए वर्षों के खूनी संघर्ष ने बहुलतावादी भारतीय राष्ट्र-राज्य में प्रांतीय अलगाववाद की चिनगारियों को भड़का दिया था। अब यह बड़ी लपट स्वतंत्र मिजो राष्ट्र की हिंसक माँग की थी। वर्षों की गुपचुप तैयारी, मिज़ो युवकों को जोड़ने और पूर्व पाकिस्तान सरकार से संपर्क करके हथियार, धन और हमले के आधार के लिए भूमि का आश्वासन प्राप्त कर चुके लालडेंगा ने फरवरी के आखिरी दिन सशस्त्र विद्रोह की शुरुआत कर दी। एम.एन.एफ. सैनिकों ने सरकारी कार्यालयों पर हमले किए, बैंक लूट लिये, संचार व्यवस्था बिगाड़ दी। भारतीय सेना को रोकने के लिए सड़कें जाम कर दी गईं।

हत्याएँ की गईं। मार्च में मिजो नेशनल फ्रंट ने घोषणा कर दी कि यह भूभाग भारत से अलग हो चुका है और अब एक 'स्वतंत्र गणराज्य' बन चुका है।

फ्रंट ने एक शहर पर कब्जा कर लिया और ज़िला राजधानी एजोल की ओर बढ़ने लगे। भारत ने सेना बुला ली और वायुसेना भी। विद्रोहियों को उनके ठिकानों से निकालने के लिए वायु से गोलीबारी की गई। यह पहला अवसर था जब भारतीय राज्य ने अपने ही नागरिकों पर वायुसेना का प्रयोग किया था। मिजो नागरिक सेना और विद्रोहियों के बीच फँसकर पिस रहे थे। विद्रोही भागकर जंगलों में छिप गए। उन्होंने समर्पण नहीं किया, बल्कि पूर्व पाकिस्तान के अपने ठिकानों और जंगलों से वे पूरे साल और अगले साल तक लड़ते रहे।

उधर नगालैंड की आग सुलग ही रही थी। सन् 1964 में जय प्रकाश नारायण, असम मुख्यमंत्री बिमला प्रसाद चालिहा और रेवेरेंड माइकेल स्कॉट को शामिल करके नगालैंड शांति मिशन बनाया गया, जिसने सरकार और फिजो के नेतृत्व वाली नागा नेशनल काउंसिल के बीच सितंबर में सशस्त्र कार्रवाइयाँ निलंबित करने का समझौता कराया था। लेकिन नागा विद्रोही हिंसा करते रहे। समझौता लगभग ध्वस्त हो चुका था। फरवरी 1966 में जय प्रकाश नारायण ने मिशन से यह कहते हुए इस्तीफा दे दिया कि वह नगाओं का विश्वास खो चुके हैं। उन्होंने भूमिगत नगा नेताओं से कहा था कि भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद उन्हें आजादी की अपनी माँग छोड़ देनी चाहिए और भारतीय संघ के भीतर ही स्वायत्तता स्वीकार कर लेनी चाहिए। उन्हें विदेशी मामले और रक्षा को छोड़कर सबकुछ अपने हाथ में रखने का अधिकार संघीय ढाँचे में मिल जाएगा। वे हथियार डाल दें, चुनाव लड़ें और शांतिपूर्ण तरीके से प्रशासन अपने हाथ में लें।

फिजो और उनके साथी तैयार नहीं हुए। इधर जेपी का उनसे मोहभंग हुआ, उधर भारत सरकार का, मिशन के तीसरे सदस्य ब्रिटेन के पादरी माइकेल स्कॉट से। सरकार ने आरोप लगाया कि वे मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाकर उसका अंतरराष्ट्रीयकरण करना चाहते थे। मई 1966 में सरकार ने स्कॉट को देश छोड़ने का आदेश दिया। नागाओं के प्रति अपनी गहरी प्रतिबद्धता में स्कॉट यह नहीं देख पाए कि भारत राज्य के लिए नागाओं को राजनीतिक स्वतंत्रता देना असंभव था। वह फिजो को क्षमा देने, सुरक्षित भारत में आने देने, यहाँ तक कि मुख्यमंत्री पद देने के लिए भी तैयार था। फिजो नहीं माने। हिंसक हमले, हत्याएँ, बम

विस्फोट जारी रहे। अब उनके तार चीन से भी जुड़ गए थे। यह बड़ा सहारा पाकर एक लंबा खूनी संघर्ष जारी रखने की उनकी ताकत बढ़ गई।

एक ओर सीमाओं पर ये जनजातियाँ संघर्षरत थीं, दूसरी ओर देश के बीचोबीच हालात भी बिगड़ रहे थे। मध्य भारत में, बस्तर के आदिवासी ज़िले में भुखमरी की स्थितियों ने वहाँ के पारंपरिक जनजातीय अपदस्थ महाराजा प्रवीर चंद्र भंजदेव के नेतृत्व में एक मज़बूत आंदोलन खड़ा कर दिया था। घोर सनकी महाराजा को सरकार ने अपदस्थ कर उनके छोटे भाई को गद्दी पर बिठा दिया था, लेकिन बस्तर की जनता प्रवीर चंद्र भंजदेव को देवता की तरह पूजती थी। उनकी मान्यताओं में राजा अर्ध-ईश्वर ही होता था। उनमें यह धारणा बैठ गई थी कि असली महाराजा को गद्दी पर बिठाने पर ही अकाल जाएगा, समृद्धि लौटेगी।

मार्च 23 को प्रवीर चंद्र को गद्दी सौंपने के लिए आंदोलनरत आदिवासियों ने पुरानी राजधानी जगदलपुर पर धावा बोल दिया। तीर-कमान से लैस हजारों आदिवासियों और बंदूक-आँसू गैसधारी पुलिस के बीच संघर्ष में लगभग 40 की मौत हुई। इनमें बस एक पुलिसकर्मी था। मारे जानेवालों में प्रवीर चंद्र भंजदेव भी थे। इससे पूरे देश में असंतोष की लहर फैली।

इन विद्रोहों से निपटती प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को कुछ राहत मिली ही थी कि एक और पुरानी आग धधक उठी। यह आग थी पंजाबी सूबे की आजादी से भी पहले की माँग की, यानी सिखों के लिए एक अलग राज्य की।

पाकिस्तान से 1965 की लड़ाइयों में सिख सेनाधिकारियों और सैनिकों ने बड़ी संख्या में अपनी वीरता के जौहर दिखाए थे। आम पंजाबियों ने भी दिल खोलकर युद्ध में अपनी भूमिका निभाई थी। किसानों ने सड़कों पर आते-जाते सेना की टुकड़ियों के लिए भोजन के स्टॉल लगाए। दूसरों ने उनके लिए अपने घर खोल दिए। कुछ अन्य ने सैनिकों की परिचर्या की जिम्मेदारी सँभाली। पूरा पंजाब ही युद्ध में अपनी शक्ति भर सहायता की भावना से ओतप्रोत हो गया था।

इन बातों से प्रभावित भारत सरकार ने उनकी पुरानी माँग को मान लेने का फैसला किया। मार्च 1966 में सांसदों की एक समिति ने मौजूदा प्रांत को तीन भागों में बाँटने की सिफारिश की—पहाड़ी ज़िले हिमाचल प्रदेश को, पूर्वी हिंदू बहुल ज़िले एक नए राज्य हरियाणा को और सिख वर्चस्व वाले, पंजाबी-भाषी ज़िले पंजाब को।

इकतीस

इस फैसले में राष्ट्रीय सहमति कतई नहीं थी। भारतीय जनसंघ और कई दूसरे दल तथा लोग देश को भाषाई और सांप्रदायिक आधार पर राज्यों में बाँटने के सिद्धांत का प्रखर विरोध कर रहे थे। विभाजन के कारण पहले ही छोटे हो चुके पंजाब के दोबारा विभाजन के प्रदेश के कांग्रेस नेता और कार्यकर्ता भी विरोधी थे। अटल बिहारी वाजपेयी ने प्रखर विरोध किया। जनसंघ के प्रमुख पंजाबी नेता यज्ञदत्त शर्मा अनशन पर बैठे। उधर प्रमुख अकाली नेता सरदार फतेह सिंह पंजाबी सूबे के लिए आमरण अनशन की घोषणा कर चुके थे। 9 मार्च को कांग्रेस कार्यसमिति ने भाषाई आधार पर पंजाब के पुनर्गठन की सरकारी समिति द्वारा की गई सिफारिश को स्वीकार कर लिया।

पूरे पंजाब में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। धरने, प्रदर्शन, लाठीचार्ज और पुलिस की गोलीबारी हुई। कई लोग मारे गए। तीन हज़ार गिरफ्तार हुए। बातचीत के बाद सरकार ने केवल भाषाई आधार पर पुनर्गठन और उसे पूरी तरह ग़ैर-सांप्रदायिक बनाए रखने का वायदा किया तो यज्ञदत्त शर्मा ने अनशन वापस लिया।

इस बीच फरवरी में देश की एक और बड़ी हानि हुई। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन हो गया। 'हिंदुत्व' की मूल अवधारणा के जनक, अप्रतिम स्वतंत्रता सेनानी, लेखक, कवि, नाटककार, विचारक और इतिहासकार विनायक दामोदर सावरकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक अतिविशिष्ट, अद्वितीय, मौलिक, जाज्वल्यमान विभूति थे। अपने को नास्तिक कहनेवाले सावरकर ने हिंदुत्व की एक सर्वथा मौलिक राजनीतिक-सांस्कृतिक अवधारणा प्रस्तुत की, हिंदु राष्ट्र और अखंड भारत की कल्पना को आकार दिया, जाति प्रथा को नष्ट करने का आह्वान किया, और रूढ़िवादी हिंदू विश्वासों, रीतियों को कड़ी चुनौती दी। वे भारतीय स्वतंत्रता को क्रांतिकारी साधनों से हासिल करने के पक्षधर थे। सावरकर का समूचा जीवन कर्तृत्व, रचनाधर्मी लेखन देशप्रेम, बलिदान, रोमांच, प्रखर बौद्धिकता, विस्मयकारी साहस और अप्रतिहत, आजीवन संघर्ष की महागाथा है। पानी के जहाज से उनका कूदना, गिरफ्तारी और फिर अंदमान ज़ेल में काला पानी की सज़ा में यंत्रणाएँ, उसी दौरान काँटों और कोयले से अपनी कविताओं को दीवारों पर लिखना और कारावास के लंबे 13 वर्षों तक उन हजारों पन्नों को स्मृति में संजोए रखना—ये घटनाएँ किंवदंती बन चुकी हैं। महात्मा गांधी की हत्या के मामले में उनकी गिरफ्तारी, फिर आरोपों से बरी होकर एक बार फिर से वैचारिक और हिंदु

महासभा अध्यक्ष के रूप में राजनीतिक गतिविधियों में लीन हो जाना, अंत तक अद्भुत पुरुषार्थ, उतार-चढ़ावों, विवादों से भरी एक रोमांचक कहानी है।

ऐसे सावरकर 26 फरवरी को 83 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गए।

देश में अनाज की कमी गंभीर रूप धारण कर चुकी थी। लगातार दो साल से वर्षा कम होने से फसलें बैठ गई थीं। किसान त्राहि-त्राहि कर रहे थे। उधर औद्योगिक निवेश और उत्पादन घट गए थे, क्योंकि पाकिस्तान से दो युद्धों में हथियार आदि खरीदने में विदेशी मुद्रा भंडार में चिंताजनक कमी आ गई थी। देश को अनाज, कर्ज और उत्पादन बढ़ाने, तीनों के लिए विदेशी सहायता अनिवार्य हो गई थी। पिछले साल नए कृषि मंत्री सुब्रमण्यम द्वारा शुरू किए गए दूरगामी, महत्त्वपूर्ण कदम एक साल में नतीजे नहीं दिखा सकते थे। उनकी टीम द्वारा जिस हरित क्रांति की नींव रखी गई थी, उसके परिणाम आने में समय था। सुब्रमण्यम ने अपने सरकारी बँगले के लॉन को नए, उन्नत, ज्यादा पैदावार वाले गेहूँ की बुवाई के लिए जुतवा दिया था, जिसपर उनकी वैज्ञानिक टीम प्रयोग कर रही थी।

तब तक अमरीकी किसानों के उगाए पीएल 480 गेहूँ से ही देश का पेट भर रहा था, जो कुछ साल पहले एक समझौते में अमरीका ने भारत को कर्ज में देना शुरू किया था, औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक कर्ज के साथ। देश-विदेशों से कर्ज लेकर चल रहा था, दूसरों के दान के अन्न पर जी रहा था।

ऐसे समय में मार्च में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी अपनी पहली विदेश यात्रा में अमरीका गईं। एक अमरीकी अख़बार ने सुर्खी बनाई—'नई भारतीय नेता भीख माँगने आई' (New Indian Leader Comes A begging)। अमेरिकन राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन से भेंट उनकी अच्छी हुई, उनका अच्छा प्रभाव पड़ा और गेहूँ तथा नकद सहायता के और आश्वासन लेकर इंदिरा गांधी लौट आईं। लेकिन जहाँ भारतीय अधिकारियों ने कहा था कि उन्हें खाद्य सहायता पूरे साल की एकमुश्त दे दी जाए, जॉनसन ने उसे एक-एक महीने पर जारी करने के आदेश दिए। वह अपने याचकों को दबाव में बनाए रखना चाहते थे।

अपने राष्ट्रपति के इस रवैये पर खुद भारत में अमरीकी राजदूत ने एक मित्र से टिप्पणी की कि जॉनसन का रुख क्रूर था। वह भारत की नाक धूल में रगड़ना चाहता था, उसके गर्व को ध्वस्त करना चाहता था। एक समय तो झुझलाकर जॉनसन ने यह तक सुझाव दिया कि हिंदुस्तानियों को खेती करना सिखाने के लिए वह 1000 अमरीकी किसानों को वहाँ भेज दें।

दो वर्षों 1965-66 में पीएल-480 के तहत डेढ़ करोड़ टन अमरीकन गेहूँ आयात किया था। इससे 4 करोड़ देशवासियों का पेट भर रहा था। अमरीकी सरकार के एक आंतरिक दस्तावेज के शब्द थे—भारत कंगाल था।

अमरीकी तल्खी का कारण था। उसके कई वर्ग इससे नाराज थे कि एक ओर भारत उससे अनाज और मदद माँग रहा था, दूसरी ओर अमरीकी विदेश नीति, विशेषत: वियतनाम युद्ध में उसकी भूमिका की तीखी आलोचना भी कर रहा था। इस बारे में भारतीय राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन के उन्हें भेजे एक पत्र से अमरीकी राष्ट्रपति खासे चिढ़े हुए थे।

विदेशों से अनाज, हथियार, मशीनरी खरीदने और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने को लिये गए कर्ज के कारण भारत का विदेशी मुद्रा भंडार खतरनाक हद तक घट गया था। सन् 1966 के मार्च में वह केवल 62.5 करोड़ डालर रह गया था। यह थी वह स्थिति, जिसके कारण प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने जून में रुपए का अवमूल्यन करने का फैसला किया। इससे रुपए का मूल्य डालर की तुलना में पहले के रु. 4.76 से घट कर रु. 7.50 रह गया। विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, दोनों ने भारत से अवमूल्यन की संस्तुति की थी। लेकिन सरकार रुपए के दाम इतने ज्यादा घटा देगी, यह अनुमान उन्हें भी नहीं था। एक झटके में रुपए का मूल्य 57.5 प्रतिशत गिरा दिया गया था।

अवमूल्यन से देश भर में हंगामा मच गया। विपक्षी दल तो प्रखर विरोध कर ही रहे थे, कांग्रेस पार्टी के बड़े हिस्से में भी इसे लेकर विरोध था। कांग्रेस अध्यक्ष कामराज का मत था कि इससे देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता की नींव कमजोर होगी। निर्यातमुखी नीतियाँ देश के अपने उद्यमों को उभरने में बाधा पैदा करेंगी। दीनदयालजी ने लंबा लेख लिखकर अब तक की देश की समूची अर्थ नीति और कदमों के विस्तृत विश्लेषण से सिद्ध किया कि यह अवमूल्यन पश्चिमी दबाव में लिया गया था और यह देश के हित में नहीं, अमरीका और विश्व बैंक के हित में काम करेगा। उन्होंने आरोप लगाया कि इतने अहम फैसले में कैबिनेट और संसद् को विश्वास में न लेकर प्रधानमंत्री ने अपने ही स्तर पर निर्णय लेकर अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को सूचित कर दिया था। उन्होंने यह भी कहा कि प्रधानमंत्री अपने मार्च के अमरीका दौरे में अमरीकी सरकार से इसका वायदा करके आई थीं और इसी के आधार पर भारत को अमरीकी कर्ज मिला था।

चौंतीस

'न्यूयॉर्क टाइम्स' की एक रिपोर्ट ने दो टूक शब्दों में सच का उद्घाटन कर दिया था, 'भारत की आर्थिक नीतियों में परिवर्तन अधिकांशत: अमरीकी और विश्व बैंक के दबाव में किए गए थे। अमरीकी दबाव ज्यादा प्रभावशाली रहा है, क्योंकि भारत के आर्थिक विकास और औद्योगीकरण के लिए अधिकांश धन अमरीका ने दिया है। इस दबाव को मानने के सिवा भारत के पास कोई चारा नहीं है।'

दीनदयालजी ने इसे देश का महान् पतन कहा तो साम्यवादी मज़दूर संगठनों और नेताओं ने इसे राष्ट्रीय विश्वासघात का शर्मनाक कदम बताया। एक मित्र को लिखे पत्र में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने लिखा कि अवमूल्यन एक बेहद कठिन और पीड़ाजनक निर्णय था। जब पिछले दो वर्ष में बाक़ी सारे उपाय नाकाम हो गए तो इसे लेना पड़ा।

अवमूल्यन से उदारवादी अर्थव्यवस्था के कई समर्थकों, अर्थशास्त्रियों को आशा बँधी थी कि देश अब तक दो दशकों की समाजवादी आर्थिक नीतियों पर चलने के बजाय मुक्त, उदारवादी, बाज़ारोन्मुख उद्यमिता को बढ़ावा देने, निर्यातमुखी उत्पादन और व्यापार मज़बूत करने की नई आर्थिक राह पर चलेगा। लेकिन आशा निष्फल रही। देशी और अंतरराष्ट्रीय व्यापार पुराने नियंत्रणवादी नियमों से बँधा रहा, लाइसेंस परमिट राज बदस्तूर जारी रहा, विदेशी पूँजी के आने-जाने में बाधाएँ बनी रहीं, निर्यात बढ़ाने के प्रयास नहीं हुए। अवमूल्यन के व्यापक विरोध और पार्टी की अंदरूनी आलोचना ने इंदिरा गांधी को उसका पूरा लाभ नहीं उठाने दिया। देश नेहरूवादी नीतियों पर ही चलता रहा। आज यह विचार किया जा सकता है कि अगर ऐसा न हुआ होता, आर्थिक नीतियों की दिशा और चरित्र बदल गया होता तो शायद देश को अगले तीन दशक मंद आर्थिक विकास और आर्थिक पिछड़ापन न झेलना पड़ता।

इसी वर्ष 19 जून को मुंबई में राजनीतिक व्यंग्य-चित्रकार बाल ठाकरे ने शिवसेना का गठन किया।

इसी वर्ष जनवरी में प्रयाग में प्रथम विश्व हिंदू सम्मेलन आयोजित हुआ था, जिसमें गोरक्षा पर प्रस्ताव पारित किया गया कि संपूर्ण भारत में गोहत्या बंदी का केंद्रीय क़ानून बनाया जाए। सर्वदलीय गो रक्षा महाभियान समिति की स्थापना हुई, संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी उसके अध्यक्ष थे। दिल्ली में 7 नवंबर से गोरक्षा सम्मेलन तथा 20 नवंबर से गोवर्धन पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेव

तीर्थजी और पूज्य श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी द्वारा आमरण अनशन की घोषणाएँ की गईं। गोरक्षा का प्रश्न स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही देश के वरिष्ठतम नेताओं द्वारा उठाया जाता रहा था। गांधीजी से लेकर विनोबा तक के लिए यह केंद्रीय महत्त्व का विषय रहा था।

किंतु 7 नवंबर को एक अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण घटना घट गई। उस दिन सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के संचालक करपात्रीजी महाराज के नेतृत्व में अखिल भारतीय सत्याग्रह का आयोजन था। चाँदनी चौक आर्य समाज मंदिर से लाखों साधुओं, संतों, धर्माचार्यों, गोभक्तों का विराट् जुलूस संसद् भवन के सामने पहुँचकर जनसभा में बदल गया। मंच पर जगन्नाथपुरी, ज्योतिषपीठ, द्वारका पीठ के शंकराचार्य, वल्लभ संप्रदाय के सातों पीठाधिपति, रामानुज, मध्व, रामानंदाचार्य, आर्य समाज, नाथ संप्रदायों, जैन, बौद्ध तथा सिख धर्माचार्य, नागा साधु, निहंग उपस्थित थे।

आर्य समाज के स्वामी रामेश्वरानंद, जो सांसद भी थे, ने संबोधनों के क्रम में बोलते हुए सरकार को झकझोरने के लिए वहाँ उपस्थित समुदाय का आह्वान कर दिया कि वे संसद् के भीतर घुस जाएँ और सांसदों को खींचकर बाहर ले आएँ।

नौजवान, नागा साधु आदि संसद् की दीवारें, जंगले फाँदकर अंदर घुसने का प्रयत्न करने लगे। भीड़ ने संसद् भवन पर धरने की कोशिश की। पुलिस ने लाठी, आँसूगैस और गोलियाँ चलाईं। उस दिन वहाँ कितने आंदोलनकारी मरे, कितने घायल हुए, यह ठीक-ठीक कभी पता न चल सका। वहाँ से भागती भीड़ ने रास्ते में तोड़फोड़ और आगजनी की। दिल्ली में बेहद तनावपूर्ण और सनसनी, अटकलों, आक्रोश का वातावरण था। शाम तक राजधानी में सेना बुलाकर उसकी गश्त शुरू कर दी गई। बड़ी संख्या में लोग, साधु-संत लापता हो गए। करपात्रीजी सहित हजारों आंदोलनकारियों को ज़ेल में डाल दिया गया।

इस अप्रत्याशित घटनाक्रम और हिंसा की देश में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। अपनी पुलिस व्यवस्था की नाकामी के लिए गृहमंत्री गुलजारीलाल नंदा को केंद्रीय मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना पड़ा।

यह वर्ष अगले वर्ष देश के चौथे आम चुनाव की तैयारी का भी था। सभी दल अपने-अपने हिसाब से तैयारियाँ कर रहे थे। यह पहला चुनाव होना था, जो जवाहरलाल नेहरू की अनुपस्थिति में होता। इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व का यह प्रारंभिक काल था। यह देखना रोचक होगा कि पश्चिमी की दुनिया भारत को इस समय कैसे देख रही थी।

छत्तीस

नेहरूजी के निधन के बाद से ही कई प्रश्न भारत की चिंता करनेवाले लोगों और देशों को विचलित कर रहे थे, नेहरू के बाद कौन? नेहरू के बाद क्या? पश्चिमी देशों के लाड़ले नेहरू के लगभग चमत्कारी नेतृत्व से वंचित भारत का बाल लोकतंत्र क्या चल पाएगा? कैसे चलेगा? केवल 19 वर्ष पहले ही एक अखंड राजनीतिक राष्ट्र-राज्य बना भारत क्या एक रह पाएगा?

पश्चिम में एक धारणा बनी हुई थी कि यह जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि भारत की एकता और लोकतंत्र बचे हुए थे। उनकी मृत्यु के बाद दो बार नेतृत्व परिवर्तन, एक के बाद एक सूखे, छोटे-छोटे क्षेत्रीय विद्रोहों और पाकिस्तान से बड़े युद्ध जैसी घटनाओं ने इन पश्चिमी आशंकाओं को पुष्ट ही किया था। अमरीका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया के अख़बारों, पत्रिकाओं की उन दिनों की भारत-कवरेज भारत में लोकतंत्र के प्रति इन्हीं भावों और भयों से भरी हुई थी।

एक साल पहले, 1965 में प्रसिद्ध लेखक रोनल्ड सेगल ने भारत का भ्रमण करके एक प्रमुख अध्ययन प्रकाशित किया—'भारत का संकट'। उन्होंने पाया, 'भारत एक आर्थिक कगार पर खड़ा है उसके नीचे की ज़मीन बिखर रही है उसकी अंतरराष्ट्रीय छवि निम्न थी और गिर रही थी।' सेगल को भारत में लोकतंत्र के बचने की आशा नहीं थी उन्हें दो ही विकल्प दिख रहे थे—'वाम दिशा में कम्युनिस्ट शासन या दक्षिण में उग्र सांप्रदायिकता, और इनमें से कोई एक कुछ ही वर्षों में सच होनेवाला था।'

जब 1966 में भी मानसून नाकाम हो गया, लगातार दूसरे साल सूखा पड़ा तो भविष्यवाणियाँ लोकतंत्र के लोप से हटकर व्यापक भुखमरी की हो गई। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित जंतुशास्त्री पॉल एर्हलिच ने लिखा कि सिद्धांत रूप में पढ़े हुए जनसंख्या विस्फोट के परिणामों को उन्होंने अपनी भारत-यात्रा में दिल्ली को एक गरम, दुर्गंधपूर्ण रात में प्रत्यक्ष देखा—'रेंगती टैक्सी से दिखते खाते हुए लोग, नहाते हुए लोग, सोते हुए लोग, आते-जाते, बतियाते-बहसते-चिल्लाते लोग, भीख माँगते हाथों को टैक्सी के अंदर डालते लोग, मल-मूत्र त्यागते लोग, बसों पर लदे लोग, पशुओं को हाँकते लोग। लोग, लोग, लोग।'

इसी वर्ष दो अन्य अमरीकी विद्वान लिख रहे थे—'आज अकाल और आपदा की कगार पर खड़े देशों में पहला भारत है। कल अकाल आएगा और उसके साथ आएँगे दंगे, अन्य नागरिक संघर्ष जिन्हें एक दुर्बल केंद्र सरकार सँभाल नहीं पाएगी।'

उन्होंने भविष्यवाणी की, 'सन् 1975 तक नागरिक अव्यवस्था, अराजकता, सैनिक तानाशाहियाँ, छलाँगती महँगाई, ठप यातायात सेवाएँ और अनियंत्रित अशांति रोजाना की घटनाएँ होंगी।'

नवंबर 1966 में पारंपरिक रूप से कांग्रेस-समर्थक अख़बार हिंदुस्तान टाइम्स ने एक मुख्य लेख छापा, '19 वर्ष की गंभीरतम स्थिति'। तमाम समस्याएँ और संकट गिनाते हुए अख़बार ने लिखा—'देश का भविष्य बहुत से कारणों से अंधकारमय है, जो सब के सब 19 वर्षों के कांग्रेस राज की सीधी देन हैं।'

प्रमुख अमरीकी पत्रिका द यूएस न्यूज़ एंड वर्ल्ड रिपोर्ट ने अपने संवाददाता सैंडर्स को 1966 के अंतिम सप्ताहों में भारत भेजा। उन्होंने रिपोर्ट लिखी, भारत विनाश की कगार पर खड़ा एक विशाल देश। धार्मिक कट्टरता, भाषा की बाधाओं, क्षेत्रीय संघर्षों, अनाज की कमी, महँगाई, सतत् जारी जनसंख्या विस्फोट, हिंसा के इन विभिन्न रूपों से ग्रस्त भारत की अजीबो-गरीब समस्याओं को गिनाते हुए उन्होंने लिखा कि 1967 में आम चुनाव के होने में शंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं। उनको यह संभावना दूर नहीं लगी कि क़ानून व्यवस्था इतनी ध्वस्त हो जाएगी कि सेना सत्ता हथिया लेगी, जैसा पड़ोसी पाकिस्तान और बर्मा में हुआ।

लंदन टाइम्स के भारत में वर्षों रह चुके संवाददाता नेविल मैक्सविल ने 1967 के आरंभ में रिपोर्ट शृंखला लिखी—'भारत का बिखरता लोकतंत्र।' 'अकाल का ख़तरा है, प्रशासन लड़खड़ा रहा है और सर्वत्र भ्रष्ट माना जाता है, सरकार और सत्तारूढ़ दल जनता का विश्वास और अपने आप में विश्वास भी खो चुके हैं इन सब बातों ने मिलकर संसदीय लोकतंत्र के अस्वीकार की भावनात्मक ज़मीन तैयार कर दी है।' उनकी भविष्यवाणी दो टूक थी, 'भारत अपने चौथे और निश्चय ही अंतिम, चुनाव में मतदान तो करेगा लेकिन भारत को एक लोकतांत्रिक ढाँचे में विकसित करने का प्रयोग विफल हो चुका है। सेना ही अधिकार और व्यवस्था का एकमात्र वैकल्पिक स्रोत बचेगी। उसका एक नागरिक भूमिका में आना अपरिहार्य है, प्रश्न केवल यह है कि कैसे?'

इन भावों और भविष्यवाणियों से निकलकर देश आज वैश्विक महाशक्ति बनने की कगार पर खड़ा हुआ है।

—राहुल देव

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्‌मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात

इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइज़र के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'द टू प्लान्स : प्रॉमिसेज़, परफॉर्मेंस, प्रॉस्पेक्ट्स' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले

रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पॉलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के ख़िलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

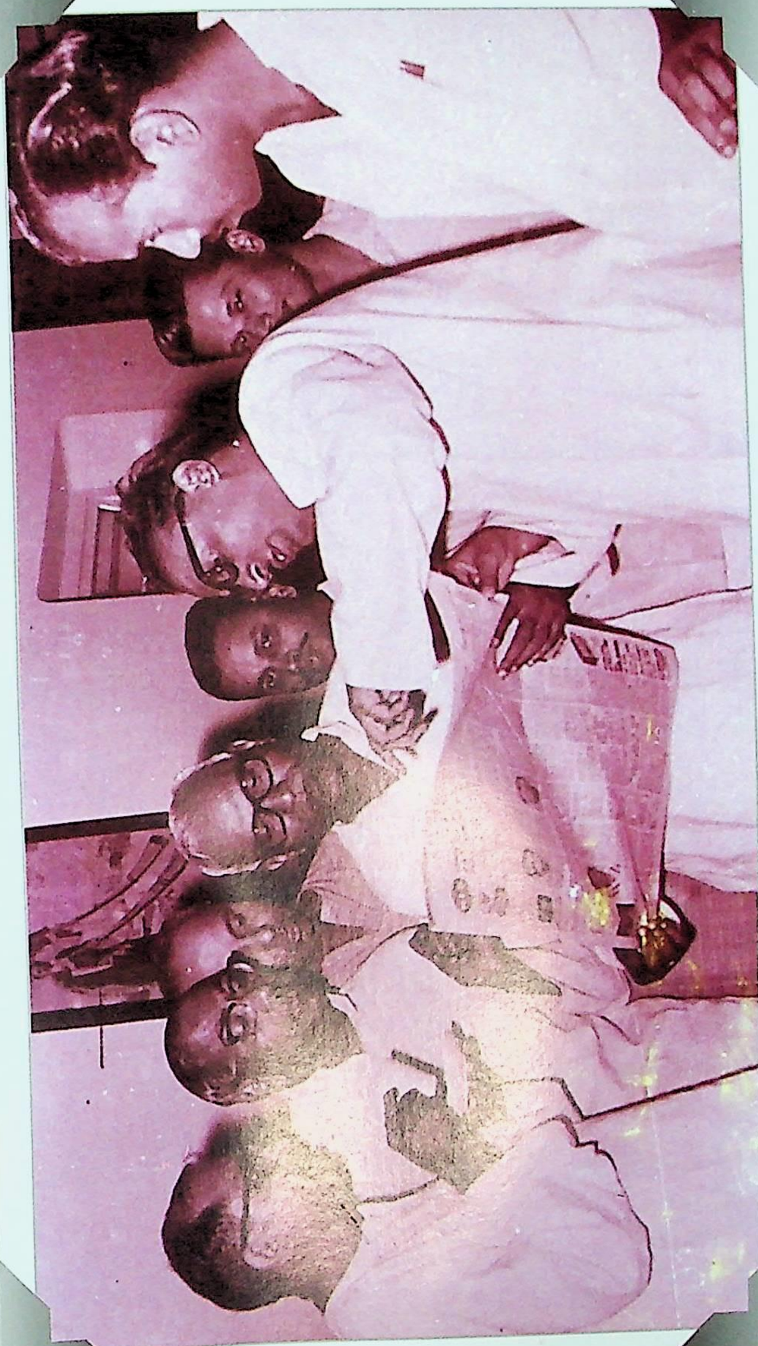
खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इ़स खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

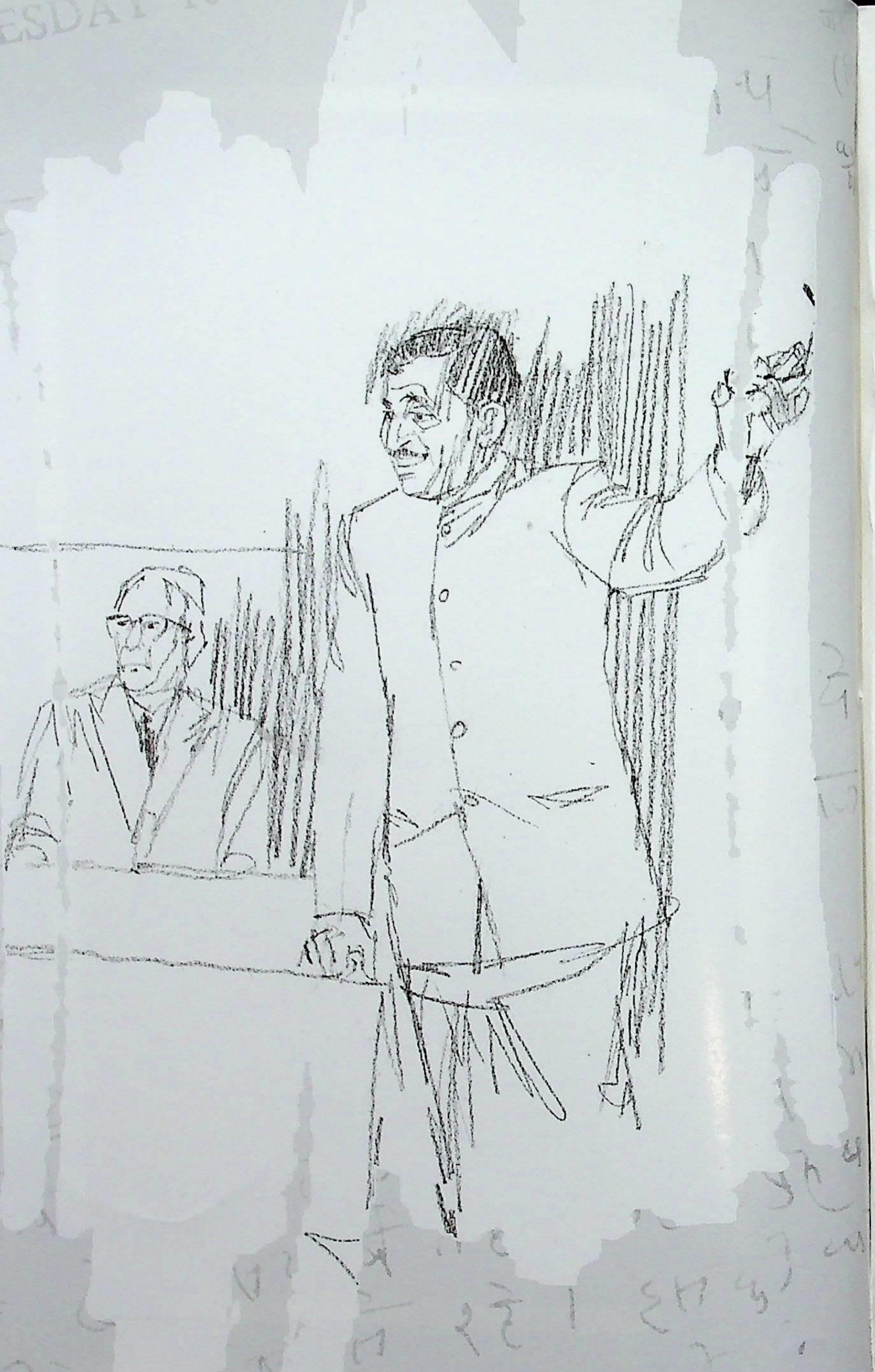
खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा









अनुक्रमणिका

1

धर्मनिरपेक्षता हिंदुत्व का उपहार है

बिहार प्रदेश जनसंघ द्वारा आयोजित बी.जे.एस. बिहार सुरक्षा सम्मेलन के दूसरे दिन एक खुले सत्र को दीनदयालजी ने संबोधित किया।

युद्ध में जो सेना ने जीता है, उसे प्रधानमंत्री शास्त्री को ताशकंद के समझौते में खोना नहीं चाहिए। अगर पाकिस्तान जैसलमेर पर हमला करे तो हमें कराची पर हमला बोल देना चाहिए। हमें रक्षात्मक नहीं बल्कि हर मोरचे पर हमलावर रुख़ अपनाना चाहिए। अगर पाकिस्तान महमूद गजनी और गोरी के छल को पुनर्जीवित करना चाहता है तो हमें भी राणा प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह की परंपराओं को जिंदा करके उनका मुँहतोड़ जवाब देना होगा। भारत सरकार को पख्तूनिस्तान[1] के आंदोलन को सक्रिय समर्थन देना चाहिए।

श्री छागला[2] को समझना होगा कि बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के नाम में से हिंदू शब्द को हटाए जाने का प्रस्ताव धूर्ततापूर्ण था। यह 'हिंदू' शब्द किसी सांप्रदायिकता का नहीं, बल्कि राष्ट्रवाद का द्योतक है। धर्मनिरपेक्षता हिंदुओं का

---

1. स्वतंत्रता पश्चात् ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान 'सीमांत गांधी' (1890-1988) ने पाकिस्तान और अफगानिस्तान के सीमांत ज़िलों को मिलाकर एक स्वतंत्र पख्तून देश (पख्तूनिस्तान) की अवधारणा की वकालत की। इसकी बुनियाद 1930 के दशक में हुए लाल कुर्ती आंदोलन 'खुदाई खिदमतगार' के समय ही रख दी गई थी। पाकिस्तान सरकार ने इस आंदोलन का क्रूरता से दमन कर दिया था।
2. महोम्मेदाली करीम छागला (1900-1981) संयुक्त राज्य अमरीका में 1958 से 1961 तक भारतीय राजदूत थे। इसके बाद ये 62-63 में ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त रहे। वापस लौटने के तुरंत बाद इन्हें केंद्रीय शिक्षा मंत्री बनाया गया, इस पद पर ये 1966 तक रहे थे।

दिया हुआ उपहार है और हिंदुत्व ही भारतीय राष्ट्रवाद की नींव है। हम हिंदुस्तान में हिंदुत्व की ऐसी अवमानना बरदाश्त नहीं करेंगे।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 2, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



2

विश्व हिंदू परिषद् : एक सामयिक योजना

हिंदू की अनेक परिभाषाएँ विद्वानों ने की हैं। प्राय: वे सभी अव्याप्ति अथवा अतिव्याप्ति के दोषों से पूर्ण हैं। पर परिभाषा की कठिनाइयों के उपरांत भी विश्व में करोड़ों मानव हैं, जो अपने को हिंदू कहते हैं अथवा कहे जाते हैं। हिंदू नाम से ख्यात समाज भी हैं और गुण-दोषमय उस समाज की जीवन-धारा भी है, हिंदुत्व के इस बोध की अभिव्यक्ति ही विश्व हिंदू परिषद् है।

हिंदू समाज की अधिकांश संख्या भारत में रहती है, किंतु भारत के बाहर भी विश्व के विभिन्न भागों में काफ़ी संख्या में हिंदू बसते हैं। इनमें से प्राय: सभी भारत से बाहर गए हुए प्रवासी अथवा उनके वंशज हैं। किंतु कुछ ऐसे भी हैं, चाहे उनकी संख्या गिनती पर गिनने लायक ही क्यों न हो, जो वंश परंपरा से भारत से कोई संबंध नहीं रखते अपितु जो हिंदू विचारधारा या यों कहिए कि हिंदू धर्म में दीक्षित हुए हैं। नेपाल तो पूर्णत: हिंदू देश है। ब्रह्मदेश,[1] सिंहल[2] तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के निवासी आज अपने को हिंदू नहीं कहते होंगे। किंतु भारत की ज्ञान परंपरा से उनका अभिन्न संबंध है। इस प्रकार हिंदू आज केवल हिंदुस्तान तक ही सीमित नहीं, विश्व के अनेक देशों में व्याप्त है। हिंदू विश्व राजनीतिक सत्ता नहीं है। इसका विचार राजनीति और राजनीतिक राष्ट्रवाद से ऊपर उठकर ही करना होगा। बिना इसके हिंदू जीवन में कर्तव्यों और निष्ठाओं का सामंजस्य और तारतम्य नहीं रहेगा और जहाँ यह सामंजस्य नहीं वह हिंदू जीवन नहीं, क्योंकि हिंदू धर्म की विशेषता ही यह है कि उसने सृष्टि

---

1. ब्रह्मदेश : म्याँमार का प्राचीन नाम।
2. सिंहल अर्थात् वर्तमान श्रीलंका।

की विभिन्न इकाइयों, जीवन के विभिन्न अंशों और मानव के विभिन्न कर्तव्यों के बीच एक आश्चर्यजनक तालमेल बिठाया है।

प्रत्येक समष्टि के मूल में एक तत्त्वज्ञान रहता है। उस तत्त्वज्ञान को अभिव्यक्त करते हुए, समष्टि की सत्ता का बोध करानेवाला कर्मकांड भी आवश्यक है। कर्मकांड की अपेक्षा तत्त्वज्ञान में अधिक स्थायित्व है, किंतु उसे स्थिर तथा गतिहीन मानना भूल होगी। जिन समष्टियों ने तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में नया चिंतन छोड़ दिया, वे निर्जीव होकर संप्रदाय मात्र बनकर रह गई। अत: तत्त्व चिंतन की गतिमयता आवश्यक है, इसी प्रकार कर्मकांड को नित्य परिवर्तनशील मानना अथवा उसे गौण समझकर उसकी उपेक्षा करना भी ठीक नहीं है। कर्मकांड रूढ़ि न बने, इसकी चिंता करना आवश्यक है किंतु बिना सातत्य एवं श्रद्धा के कर्मकांड में संस्कारशीलता नहीं आ सकती।

हिंदू समाज के पास तत्त्व और कर्मकांड दोनों ही हैं। किंतु आवश्यकता है कि एक ओर तो उसके तात्त्विक विवेचन को उन शब्दों और रूपों में रखा जाए, जिससे आज की समस्याओं का निदान और विद्यमान जीवन का विश्लेषण हो सके। साथ ही तत्त्व-चिंतन की दिशा को आगे भी बढ़ाना होगा। अपने पूर्वजों तथा ऋतंभरा प्रज्ञावान ऋषियों के प्रति पूर्ण श्रद्धा और आदर का भाव रखते हुए भी यह मानना कि ज्ञान के क्षेत्र में अंतिम शब्द कहा जा चुका है, असीम को समीम करने का प्रयत्न होगा। यदि समाज की ऋषि परंपरा समाप्त हो गई तो उसका जीवन-स्रोत सूख जाएगा। इस युग में भी योगी अरविंद[3] ने चिंतन की इस धारा को आगे बढ़ाया है।

हिंदू संस्कृति एकात्मवादी है। जगत् के नानात्व का भाव असत् और सबका एकत्व भाव सत् है। यही हिंदू संस्कृति की आत्मा है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद स्वीकार करते हुए वह उनके अंतर में एकता की खोज कर उनमें समन्वय स्थापित करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर वह परस्परावलंबन, पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर सृष्टि की सभी क्रियाओं का विचार करती है। दूसरा दृष्टिकोण एकांगी न होकर सर्वांगीण है।

हिंदू तत्त्वज्ञान ने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संकलित विचार किया है।

---

3. अरबिंद घोष (1872-1950) युवावस्था में क्रांतिकारी थे, बाद में एक महान् योगी और दार्शनिक बन पांडिचेरी में एक आश्रम स्थापित किया। वेद, उपनिषद् ग्रंथों आदि पर टीका तथा योग साधना पर मौलिक ग्रंथ लिखे। श्री अरविंद कवि और भारतीय राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने आध्यात्मिक विकास के माध्यम से सार्वभौमिक मोक्ष का दर्शन प्रतिपादित किया। पूरे विश्व के दर्शनशास्त्र पर इनका बहुत प्रभाव रहा है।

उसने व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि के बीच एकात्मता प्रतिष्ठापित की है। उसने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ की उपासना के द्वारा मानव के पूर्ण विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। इस दृष्टिकोण से आज के विश्व के संघर्षों का निबटारा हो सकेगा, तथा व्यक्ति राज्य सत्ता की कठपुतली बनने के स्थान पर अपनी पूर्णता का अनुभव कर कर्तव्यनिष्ठा यज्ञमय-कर्मोपासना के साधक की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा।

हिंदू तत्त्वज्ञान के आधार पर कर्मकांड तथा आचरण संहिता के विधान की आवश्यकता है। कर्मकांड देशकाल परिस्थिति के अनुसार बदलता है। चले आए कर्मकांड में अनेक रूढ़ियाँ बन गई हैं। अनेक का परिष्कार नहीं हुआ। यह काम है, जो हिंदू जगत् को करना होगा अन्यथा एक ओर तो ऐसे व्यक्ति रह जाएँगे, जो कर्मकांड को ही हिंदुत्व मानकर, आत्मा विरहित शरीर से चिपककर रहेंगे तो दूसरी ओर इस संपूर्ण कर्मकांड को त्यागकर शून्य में आत्मा की उपासना करनेवाले आचरणहीन व्यक्ति मिलेंगे। दोनों ही अवस्थाएँ चिंतापूर्ण हैं। और जब ये दोनों वर्ग हिंदुत्व की निष्ठा लेकर एक-दूसरे पर दोषारोपण कर संघर्षरत हो जाएँ तो भगवान् ही मालिक हो। हमें इस अवस्था से निकलना होगा। यह महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसका शुभारंभ विश्व हिंदू परिषद् की फलश्रुति के रूप में होना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 10, 1966



3

आख़िर वे उसके शहीद योद्धा को घर ले आए

ताशकंद में प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु की ख़बर सुनते ही मुझे अंग्रेज़ी कविता की पंक्तियाँ याद आईं, 'Home They Brought Her Warrior Dead.' श्री शास्त्री एक योद्धा की तरह वीरगति को प्राप्त हुए हैं।[1] कूटनीतिक युद्ध किसी भी तरह मैदानों के सशस्त्र युद्धों से कम नहीं होता। हमारे हाल के पाकिस्तान से हुए युद्धों में जब शहीदों का नाम लिया जाएगा तो निस्संदेह उनका नाम पहला होगा।

श्री लाल बहादुर शास्त्री के लिए ताशकंद उनके जीवन का आख़िरी युद्ध सिद्ध हुआ। उनका कार्य पूरा हुआ है, लेकिन देश का कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ। ताशकंद समझौते के संयुक्त वक्तव्य पर अपने हस्ताक्षर करने के कुछ ही देर बाद उनकी मृत्यु हुई। समझौते के कुछ ही देर बाद उनका निधन बताता है कि वे समझौते से बहुत खुश नहीं थे। वे शांतिप्रिय व्यक्ति थे, इसलिए भारत-पाक के बीच युद्ध-बंद होने का निर्णय चाहते थे। पाकिस्तान ने उनका यह प्रस्ताव ठुकरा दिया था, यह अब इतिहास की बात है। शायद शास्त्री उस वक्त वापस लौट आना

1. भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद 11 जनवरी, 1966 को ताशकंद (रूस) में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तानी समकक्ष अयूब ख़ाँ के मध्य शांति समझौता हुआ। समझौता बैठक सोवियत रूस के प्रधानमंत्री द्वारा आयोजित थी। इसमें दोनों देशों के बीच बिना शक्ति प्रयोग के झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने, सीमारेखा पर सेनाओं को 5 अगस्त, 1965 की स्थिति में रखने, एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने जैसे प्रमुख बिंदु थे। लेकिन दुर्भाग्यवश समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद रात में रहस्यमय परिस्थितियों में शास्त्रीजी की मृत्यु हो गई।

चाहते थे। लेकिन सोवियत रूस ताशकंद की बैठक का निष्फल होना झेल नहीं सकता था, इसीलिए शायद रूसी प्रमुख कोसिजिन ने भारत पर दबाव बनाना शुरू किया। प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों की ज़िम्मेदारी बनती है कि वे सबमें विश्वास पैदा करें। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रीजी को मजबूरी में अपने हस्ताक्षर करने पड़े। आख़िर वो कौन से दबाव थे, जिनके आगे देश को झुकना पड़ा? जो समझौता हुआ, वह पूरी तरह पाकिस्तानी प्रस्ताव की नक़ल है; शास्त्रीजी ने कोसिजिन की बात मान ली। लेकिन शायद यह उनके लिए बहुत ज़्यादा था।

वे इसे बरदाश्त नहीं कर पाए। कोसिजिन ने भारत की क़ीमत पर अपने लिए नाम कमाया। हमने इसके लिए लाल बहादुर शास्त्री की क़ीमत दी।

श्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के साथ ही ताशकंद समझौता भी मृत हुआ। प्रधानमंत्री नंदा[2] कहते हैं कि हम उस समझौते के हर अक्षर का पालन करेंगे। नहीं! हम कहते हैं कि समझौते तक पहुँचने की पूरी जाँच हो। निस्संदेह दाल में कुछ काला है। लाल बहादुर अपने मूल्यों पर चलनेवाले व्यक्ति थे। यह स्पष्ट है कि अपने नैतिक मूल्यों को कुचलकर उन्हें इस समझौते पर हस्ताक्षर करने पड़े थे।

अपने कार्यकाल के छोटे से समय में उन्हें विकट परिस्थितियों से जूझना पड़ा। समय की लहरों से जूझते हुए नौका को आगे ले जाने के लिए उन्हें साधुवाद! भारत के अध्याय में एक और सुनहरा पन्ना जुड़ा है। हम साथ मिलकर उनकी विरासत को आगे ले जाएँगे।

श्री शास्त्री ने यथार्थ के धरातल पर राष्ट्रवादी विचारों से सरकार की नीतियों को संचालित करने के प्रयास किए। अपने तरीक़ों से उन्होंने तथाकथित भावनाओं की काई देश की प्रगति के पहियों से हटाने का प्रयास किया। इससे पहले कि वे अपने महती कार्य को पूरा कर पाते, हमने उन्हें खो दिया है। हमें उनका काम जारी रखना होगा, ताकि हम सफलतापूर्वक आनेवाली चुनौतियों का मुक़ाबला कर सकें।

श्री शास्त्री आम लोगों के प्रतिनिधि थे। किसी भी मुद्दे पर फ़ैसले लेने के लिए वे एक आम आदमी की सहज बुद्धि का इस्तेमाल करते थे, न कि किसी सत्ताधारी की अकड़ का। श्री नेहरू का व्यक्तित्व करिश्माई था। लेकिन श्री शास्त्री

---

2. गुलजारीलाल नंदा (1898–1998), शास्त्रीजी की मृत्यु के बाद 11 जनवरी, 1966 से 24 जनवरी, 1966 तक भारत के कार्यवाहक प्रधानमंत्री बने थे। इससे पहले पं. नेहरू के निधन के पश्चात् 27 मई, 1964 से 9 जून, 1964 तक कार्यवाहक प्रधानमंत्री रहे थे।

को आम आदमी अपने ही बीच का मानता था। उनके शब्दों का सिर्फ़ सम्मान ही नहीं होता था, बल्कि उनका पालन भी किया जाता था। शास्त्रीजी कभी लोगों को यह भरोसा नहीं दिलाते थे कि अब मैं आ गया हूँ, सब ठीक हो जाएगा। वे लोगों की सक्रिय सहभागिता के द्वारा समस्याओं से निपटते थे। सामूहिक नेतृत्व की परिकल्पना को उन्होंने मूर्त रूप दिया था। वे सिर्फ़ अपने सहयोगियों से ही नहीं, बल्कि अपने विरोधियों से भी बातचीत और सलाह के रास्ते खुले रखते थे। नेहरू ने जिस लोकतंत्र का सपना दिखाया था, उसे शास्त्री ने ज़मीन पर उतार दिया।

शास्त्रीजी के 18 महीने के शासन काल ने हमें कई सालों के शुरुआती लोकतंत्र से ज़्यादा दिया है। अपने कद के साथ-साथ उन्होंने भारत को भी ऊँचा उठाया। आज हमें फिर से स्वयं को उन्ही मूल्यों के लिए समर्पित करना चाहिए, जिन्हें शास्त्रीजी ने जिया और मातृभूमि की सेवा में लगे रहे।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 16, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



4

सुरक्षा और विकास परस्पर विरोधी नहीं पूरक हैं

नवंबर, 1962 के चीनी हमले तथा अब अगस्त-सितंबर, 1965 के पाकिस्तानी हमले ने कल्पनाकाश में स्वच्छंद विचरनेवाले शासकों को एक गहरा झटका दिया है। हमें अपनी पिछली अठारह वर्षों की नीतियों को परखने का मौक़ा मिला, अपने शत्रु-मित्र की पहचान हुई है, देश की शक्ति और दुर्बलताएँ सामने आई हैं, राष्ट्र में अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए एकता, अनुशासन और त्याग का भाव जगा है। जन-जन को प्रेरित करनेवाले इस राष्ट्र-समर्पित जीवन के वातावरण में यदि यथार्थवादी आधार पर हम अपनी सभी नीतियों की पुनर्रचना करें तो न केवल, हम विद्यमान आक्रमणों की चुनौती का सफलतापूर्वक मुक़ाबला कर सकेंगे बल्कि अपने राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की ओर भी बढ़ सकेंगे। सुरक्षा और विकास एक-दूसरे के विरोधी नहीं अपितु परस्पर पूरक एवं अन्योन्याश्रित हैं।

सुरक्षा की उपेक्षा

स्वतंत्रता के बाद हमने सुरक्षा की घोर उपेक्षा की। हमने 1962 तक तो यह अनुभव ही नहीं किया कि हमारी स्वतंत्रता को बाहर से संकट हो सकता है। बिना लड़े आज़ादी लेने के मानसिक भ्रम का यह दुष्परिणाम हुआ कि आज़ादी को बनाए रखने के लिए हमें लड़ना भी पड़ सकता है, यह हम भूल ही गए। अहिंसा, पंचशील, बिन-लगाव की नीति आदि नारों ने हमारे मानस को पूर्णतः सैन्योपेक्षी बना दिया। यदि कभी किसी ने सेना की ओर ध्यान देने की बात कही भी तो उसे युद्धलोलुप, सेनावादी, फासिस्ट आदि कहकर बदनाम करने का ही प्रयत्न किया

गया। जब एक बार प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से पूछा कि आप बमवर्षक जहाज़ क्यों नहीं बनाते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया, "हमारी नीति किसी पर बम गिराने की नहीं है।" शांति और अहिंसा के कुछ पुजारी तो यहाँ तक आगे बढ़ गए कि उन्होंने भारत को यह सलाह भी दी कि अपनी सेनाओं को पूर्णत: भंग कर दें। भगवान् की दया है कि हम इतनी दूर तक नहीं गए। संभवत: 1947 में ही कश्मीर में पाकिस्तान के आक्रमण तथा युद्धविराम के बाद भी सेना की युद्धविराम रेखा पर आवश्यकता रहने के कारण यह सुझाव कार्यान्वित नहीं हो सका। संक्षेप में, 1963 तक हमने सैन्यबल तथा सुरक्षा सामर्थ्य बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

सुरक्षा बनाम मित्र राष्ट्र

नवंबर, 1962 के बाद सैनिक सामर्थ्य की ओर थोड़ा सा ध्यान देना प्रारंभ हुआ। कम्युनिस्ट चीन के आक्रमण के समय पश्चिमी देशों ने जिस प्रकार आगे बढ़कर हमारी सहायता की थी, उससे हमको लगने लगा कि उनकी सहायता से हम अपनी सेना का आधुनिकीकरण कर उसे सब प्रकार से सुसज्ज कर सकेंगे। फलत: अपनी पंचवर्षीय सुरक्षा योजना में आर्थिक योजनाओं के समान ही विदेशी सहायता का काफ़ी मीजान लगाया। 1963 से 1968 तक पाँच वर्षों के लिए 5599 करोड़ रुपए की योजना बनाई गई। उसमें 559.9 करोड़ रुपए की विदेशी सहायता का आधार लिया गया था। सेना के वार्षिक बजट का ख़र्चा इस परिव्यय में शामिल है। उसको निकालने के बाद सैनिक सज्जा पर जो ख़र्च आएगा, उसका अधिक-से-अधिक हम बाहर से अपेक्षा करके चले थे। जिन देशों से हमने इस विषय में आशा की थी, उन्होंने हमें खूब खेल खिलाया। चीन द्वारा युद्धबंदी के बाद उनका हमारी सहायता करने का उत्साह धीरे-धीरे कम हो गया। बड़ी कठिनाई के बाद कुछ समझौते हुए। उनका कुछ माल हमें मिला भी, किंतु पाकिस्तान के साथ संघर्ष के समय इन देशों ने भारत को शस्त्रास्त्र ही नहीं तो दूसरे कलपुर्जे आदि भेजने पर भी रोक लगा दी। जो माल हम व्यापारिक आधार पर निजी कारख़ानेदारों से ख़रीद रहे थे और जहाज़ पर लद भी चुका था, उसे भी रोक दिया गया। अत: अब हमें न केवल सुरक्षा सामर्थ्य बढ़ाने की आवश्यकता पड़ गई है बल्कि आत्मनिर्भरता की ओर भी द्रुतगति से आगे बढ़ना पड़ रहा है। पिछली दोनों लड़ाइयों ने हमें जो पाठ पढ़ाया है वह महँगा ज़रूर है, मगर उसे हमने न भुलाया तो वह हमारे लिए एक वरदान ही सिद्ध होगा।

ग़रीबी का प्रश्न बेकार

सुरक्षा बल हम कितना और किस प्रकार बढ़ाएँ, इसका निर्णय मनमाने ढंग पर नहीं किया जा सकता और न इसमें अपनी ग़रीबी-अमीरी का ही ध्यान रखा जा सकता है। स्वतंत्रता हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। उसकी रक्षा तो हर क़ीमत पर करनी ही होगी। किंतु ढंग और किफ़ायतदारी से काम किया जाए तो हमारी ग़रीबी इस मार्ग में बाधक नहीं होगी।

चीन-पाकिस्तान : प्राकृत शत्रु

कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान दोनों का आक्रमण तो विद्यमान ही है। उनके साथ संबंधों में थोड़ा-बहुत उतार-चढ़ाव भले ही चलता रहे, किंतु हमें यह ध्रुव समझना होगा कि ये दोनों हमारे प्राकृत शत्रु हैं। उनके साथ संघर्ष टाला नहीं जा सकता। हाँ! हमने यदि पर्याप्त अवरोधक शक्ति अर्जित कर ली तो हो सकता है कि उन्हें आक्रमण करने का दुस्साहस न हो। जो लोग पड़ोसियों के साथ मित्रता के अच्छे संबंध के सिद्धांत के नाम पर इन दोनों आक्रमणकारी संभावनाओं की ओर आँखें मूँदने की सलाह देते हैं। उन्हें उदारतापूर्वक अधिक-से-अधिक अयथार्थवादी कहा जा सकता है।

दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का नेतृत्व

कम्युनिस्ट चीन का भारत की सीमाओं के प्रत्यक्ष अतिक्रमण के अतिरिक्त दक्षिण-पूर्व एशिया में उसका विस्तारवाद भी हमारे लिए संकट का कारण है। पश्चिमी साम्राज्यवाद के जाने के बाद उन देशों में एक शक्तिशून्य पैदा हुआ है। चीन उसे भरने की कोशिश कर रहा है, अमरीका उसे रोक रहा है। किंतु वह काम तो स्वाभाविक रूप से भारत को ही करना होगा, तभी सफलता से हो सकेगा। भारत की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है।

सेना कैसी हो?

अपनी सीमाओं के न्याय तथा स्थिति पर भी हमें विचार करना होगा। पाकिस्तान के साथ हमारी संपूर्ण सीमा अप्राकृतिक है। हमारी उत्तर की सीमा यद्यपि प्राकृतिक है, किंतु आज वह हमारे लिए और भी कठिन हो गई है। अतः हम एक छोटी सी सेना से काम नहीं चला सकते। हमारे पास पहाड़, रेगिस्तान, मैदान तथा जलापूर्ण सभी क्षेत्रों में लड़ने लायक सेना चाहिए।

स्थल सैनिक 20 लाख : वायुसेना 200 स्क्वाड्रन

उपर्युक्त आधार पर विचार करें तो सरकार की सुरक्षा योजना अपर्याप्त है। शासन केवल 8,25,000 की थल सेना का तथा 45 स्क्वाड्रन हवाई सेना का लक्ष्य रखकर चल रहा है। नौसेना की ओर अभी कोई विशेष ध्यान नहीं है। आवश्यकता है कि हमारी थल सेना 20 लाख की हो तथा हवाई सेना शक्ति 200 स्क्वाड्रन तक होनी चाहिए। साथ ही सेना का भी पर्याप्त विस्तार करना होगा। हमारे शस्त्रास्त्र भी आधुनिकतम हों; हमें अपनी सेना को अण्वशस्त्रों से भी सज्ज करना होगा।

सुरक्षा और विकास परस्पर पूरक

प्रश्न होता है कि क्या हम यह सबकुछ कर सकेंगे? और यदि हाँ तो फिर क्या हमें अपने आर्थिक विकास की गति मंद नहीं कर लेनी होगी। यह एक विरोधाभास है, जिसे हमें मिटाना होगा। सुरक्षा और विकास दोनों को हमें साथ लेकर नहीं, बल्कि एक समझकर चलना होगा। सरकार की सुरक्षा योजना का आज देश की पंचवर्षीय योजनाओं से कोई संबंध नहीं है। आजकल सुरक्षालक्ष्यी योजना की चर्चा बहुत की जाती है। किंतु वह एक नारा मात्र है। सुरक्षा योजना का विचार चालू योजना के एक परिशिष्ट के रूप में ही किया जा रहा है। उसका संपूर्ण नीतियों के ताने-बाने के रूप में विचार नहीं हो पा रहा है।

सुरक्षा के दो भाग

यदि सुरक्षा और आर्थिक विकास को अलग-अलग रखा तो यह बहुत अधिक व्ययशील होगा। सुरक्षा के दो भाग हैं। कुछ अंशों में तो हमें अपनी सेना के सभी अंगों को सदैव तैयार रखना होगा। उसके साथ दूसरा वह भाग है, जो साधारण शांति काल में अपने-अपने काम में लगा रहता है किंतु युद्धकाल में वह पूरी ताक़त से युद्ध प्रयास में जुट जाता है। दूसरी ओर अभी तक हमारा ध्यान ही नहीं गया। समय पड़ने पर जोश में स्वेच्छापूर्वक जो कुछ सेना कर देती है, वही बस युद्ध और शांति काल का अंतर है।

अनिवार्य सैनिक शिक्षा

यदि 2 वर्ष के लिए 20-21 की आयु में लामबंदी कर दी जाए तो थोड़े ही दिनों में देश में बहुत बड़ी तादाद में सैन्य प्रशिक्षित व्यक्ति तैयार हो जाएँगे। ये हमारी स्थायी सेना के पूरक रहेंगे। इसमें हमारा ख़र्चा भी कम होगा।

निजी क्षेत्र बनाम सार्वजनिक क्षेत्र

शस्त्रास्त्रों के कारख़ानों के बारे में भी हमें यही नीति अपनानी चाहिए। ये सब कारख़ाने सरकार ही खोले, इसकी ज़रूरत नहीं। उसमें बहुत पूँजी लगेगी तथा शांतिकाल में उसकी पूरी क्षमता का भी उपयोग नहीं हो सकेगा। अत: यह उपयोगी होगा कि देश के सभी औद्योगिक संस्थानों की रचना इस प्रकार करें कि वे शांतिकाल में तो सामान्य माल तैयार करते रहें किंतु यद्धकाल में सैन्य सामग्री तैयार कर सकें। इस हेतु यह आवश्यक होगा कि प्रतिवर्ष एक नियत मात्रा में लगभग 10 प्रतिशत सैन्य सामग्री इन कारख़ानों से ली जाए। इस काम में निजी और सरकारी क्षेत्र का क़िताबी विवाद आड़े नहीं आना चाहिए। यदि यह किया गया तो हमें देश के औद्योगीकरण की गति को रोकने की आवश्यकता नहीं और न पूँजी को ख़ाली पड़ा रखने की ज़रूरत है। हमें तो अपनी पूँजी का अधिकतम उपयोग करना चाहिए।

योजना आयोग का ढाँचा बदल जाए

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि योजना आयोग के वर्तमान ढाँचे को बदला जाए तथा सुरक्षा योजना के निर्माण की पद्धति भी बदली जाए। आयोग के सदस्यों में कम-से-कम एक सुरक्षा विशेषज्ञ का समावेश होना चाहिए, जिससे संपूर्ण योजना को समन्वित रूप में बनाया जा सके। कृषि, उद्योग, यातायात, शिक्षा, चिकित्सा, सेवाएँ सभी का सुरक्षा के साथ संबंध आता है। इनमें से किसी को भी छोड़ा नहीं जा सकता और न सुरक्षा के नाम पर दुहरी व्यवस्था करने की ज़रूरत है। हाँ, उन योजनाओं को अवश्य समाप्त किया जा सकता है, जो हमने शौकिया तथा समाज कल्याण के नाम पर दिखाने के लिए बना रखी हैं।

साधन अपर्याप्त नहीं

यदि सरकार ने सभी ओर किफ़ायतसारी की तथा ऊपर बताए अनुसार एकात्मक योजना बनाई तो आज के साधन इतने पर्याप्त हैं कि सुरक्षा और विकास दोनों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। यदि एक एकात्मक दृष्टिकोण नहीं रखा तो सुरक्षा सामर्थ्य भी टिक नहीं सकेगी। साथ ही कम्युनिस्ट चीन के साथ हमारी लड़ाई सैनिक ही नहीं, वैचारिक भी है। यदि देश की आर्थिक अवस्था बिगड़ी तो चीन के पंचमांगी आंतरिक विद्रोह की योजना बना सकते हैं। उस हालत में हम सैनिक दृष्टि से जीतकर भी वास्तव में हम हार जाएँगे।

चिंतन और व्यवस्था में आमूलाग्र परिवर्तन हो

सुरक्षा का प्रश्न एक दो साल का नहीं, स्थायी है। अतः हमें स्थायी व्यवस्था ही करनी होगी। यह तभी संभव है जब हम अपने संपूर्ण आर्थिक चिंतन और आर्थिक योजनाओं को पूरी तरह बदलकर यथार्थवादी, सर्वसंग्राहक, एकात्मक तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करें।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 24, 1966



5

वचन-भंग

(ताशकंद-घोषणा की शव-परीक्षा)

-दीनदयाल उपाध्याय

प्रकाशक :
भारतीय जनसंघ
अजमेरी द्वार
दिल्ली-6
(फरवरी 1966)

मूल्य 30 पैसे

मुद्रक :
ए वन प्रिंटर्स
9, प्यारी मोहन पाल लेन,
कलकत्ता-7
फोन-34-7947

वचन-भंग : ताशकंद घोषणा की शव परीक्षा

10 जनवरी, 1966 को प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने ताशकंद घोषणा पर हस्ताक्षर किए और उसके कुछ ही घंटों के बाद वे चल बसे। इन दोनों घटनाओं का क्या कार्यकारण संबंध है, यह तो विधना ही बता सकती है, किंतु इसमें संदेह नहीं कि ताशकंद में उन पर जो शारीरिक और मानसिक भार पड़ा, उसका उनके रोगी हृदय पर घातक परिणाम हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि ताशकंद घोषणा से उन्हें आत्मक्लेश नहीं हुआ। दूसरे दिन शास्त्रीजी का शव और ताशकंद घोषणा दोनों ही श्री कोसीजिन के साथ भारत पहुँचे। पाकिस्तान के साथ युद्ध में अत्यंत कुशलता से नेतृत्व करनेवाले अपने प्रधानमंत्री के देहावसान से देश इतना शोकाकुल था कि वह 'ताशकंद घोषणा' की शव-परीक्षा भी नहीं कर सका। ताशकंद घोषणा और शास्त्रीजी की मृत्यु के समाचारों के बीच की थोड़ी सी अवधि में देश की जो प्रतिक्रिया व्यक्त हुई, वह घोषणा के अनुकूल नहीं थी। आज जनसाधारण उसके कारण चिंतित है। उसके मन में भावी के प्रति आशंका है। शांतिप्रियता तथा शोकातुरता ने उसकी निराशा पर आवरण अवश्य डाला है किंतु मन-ही-मन कुढ़ रहा है। उसे लग रहा है, जैसे उसने सबकुछ गँवा दिया। पराक्रम, त्याग और बलिदान से जो कमाया था, वह वार्त्ता की बाज़ी में खो दिया। राजा नल और धर्मराज युधिष्ठिर के काल से लेकर आजतक आमने-सामने बैठकर बाज़ी हारने की लंबी परंपरा में एक कड़ी और जुड़ गई। भारत-विभाजन के बाद पाकिस्तान के साथ कई समझौते हुए हैं। ताशकंद घोषणा उनसे भिन्न नहीं। अत: परिणाम भी भिन्न नहीं निकल सकता।

'ताशकंद-घोषणा' का विवेचन करने के पूर्व इस अभिलेख को अविकल पढ़ लेना उपयोगी होगा। मूल घोषणा रूसी में है। उसके अंग्रेज़ी अनुवाद पर

हस्ताक्षर हुए। अंग्रेज़ी अनुवाद का हिंदी रूपांतर निम्नलिखित है—

ताशकंद-घोषणा

1. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के प्रधान, ताशकंद में मिलने और भारत एवं पाकिस्तान के वर्तमान संबंधों की चर्चा करने के बाद एतद्वारा दोनों देशों के बीच सामान्य और शांतिपूर्ण संबंधों को प्रतिस्थापित करने और दोनों देशवासियों के बीच समझ और सौहार्द बढ़ाने के अपने संकल्प की घोषणा करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि इन उद्देश्यों की सिद्धि भारत और पाकिस्तान के 60 कोटि जनों के हित के लिए अत्यावश्यक है।
2. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के प्रधान, दोनों इस बात पर सहमत हैं कि दोनों पक्ष संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र के अनुसार भारत और पाकिस्तान में अच्छे पड़ोसीचारे के संबंधों का निर्माण करने के लिए भरसक प्रयत्नशील रहेंगे। वे पारस्परिक विवादों को शांतिपूर्वक सुलझाने तथा बल प्रयोग न करने के संयुक्त राष्ट्र घोषणा-पत्र के अंतर्गत अपने बंधनों के प्रति पुन: आस्था व्यक्त करते हैं।
3. उनका मत है कि भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बने रहने से उनके क्षेत्र की, विशेषत: भारत-पाक उपमहाद्वीप की शांति तथा दोनों देशों की जनता के हितों को कोई लाभ नहीं पहुँचता। इसी पृष्ठभूमि में जम्मू और कश्मीर पर चर्चा हुई तथा दोनों पक्षों ने अपना-अपना दृष्टिकोण रखा।
4. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के प्रधान सहमत हैं कि दोनों देशों के सशस्त्र व्यक्ति 25 फरवरी, 1966 तक उन स्थानों पर वापस चले जाएँ, जहाँ वे 5 अगस्त, 1965 के पूर्व थे तथा दोनों देश युद्धविराम रेखा पर युद्ध विराम की शर्तों का पालन करेंगे।
5. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान स्वीकार करते हैं कि दोनों देशों के बीच के संबंधों का आधार एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप का सिद्धांत होगा।
6. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान सहमत हैं कि दोनों पक्ष दूसरे के विरुद्ध प्रचार को निरुत्साहित करेंगे तथा ऐसे प्रचार को प्रोत्साहन

देंगे, जिससे दोनों देशों के बीच मैत्रीभाव की वृद्धि हो।

7. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के प्रधान मान्य करते हैं कि पाकिस्तान में भारत के उच्च आयुक्त तथा भारत में पाकिस्तान के उच्च आयुक्त अपने-अपने पदों पर वापस आ जाएँगे तथा राजनीतिक मिशन सामान्यतः काम करेंगे। राजनीतिक संबंधों के विषय में 1961 वियना अभिसमय का दोनों पक्ष पालन करेंगे।

8. भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के प्रधान ने मान्य किया कि वे दोनों देशों के बीच आर्थिक, व्यापारिक संबंधों, संचार-व्यवस्था तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के विषय में उपायों पर विचार करेंगे तथा वर्तमान समझौतों का पालन करने के लिए पग उठाएँगे।

9. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान ने अपने देश के अधिकारियों को युद्धबंदियों की अदला-बदली की व्यवस्था करने का आदेश देना मान्य किया।

10. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान ने माना कि दोनों देश शरणार्थियों की तथा अवैध आव्रजकों को निकालने की समस्याओं पर बातचीत जारी रखेंगे। उन्होंने यह भी मान्य किया कि दोनों देश ऐसा वातावरण पैदा करेंगे, जिससे निष्क्रमण रुक सके। संघर्ष के दौरान एक-दूसरे द्वारा हथियाई गई संपत्ति की वापसी पर विचार करने की बात भी दोनों ने मान ली।

11. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान ने यह माना कि दोनों पक्ष उच्च एवं अन्य स्तरों पर दोनों देशों से प्रत्यक्ष संबंधित विषयों पर बातचीत करते रहेंगे। दोनों पक्ष इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं कि संयुक्त भारत पाक समितियों का गठन किया जाए, जो अपनी-अपनी सरकारों को सुझाव देंगी कि भविष्य में और कौन से क़दम उठाए जाएँ।

12. भारत के प्रधानमंत्री तथा पाकिस्तान के प्रधान सोवियत नेताओं तथा सोवियत सरकार के तथा सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष के व्यक्तिगत रूप से आभारी हैं कि उन्होंने वर्तमान बैठक, जिसके परिणाम दोनों के लिए समाधान कारक रहे हैं, की योजना करने में रचनात्मक एवं मैत्रीपूर्ण भाग अदा किया।

13. वे उजबेकिस्तान की मित्र सरकार और जनता के प्रति भी उनके प्रेमपूर्ण स्वागत तथा हार्दिक आतिथ्य के लिए आभारी हैं। वे सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष को इस घोषणा के साक्षी के रूप में आमंत्रित करते हैं।

भारत के प्रधानमंत्री	पाकिस्तान के प्रधान
लाल बहादुर शास्त्री	मोहम्मद अयूब खाँ।

समाविष्ट विषय

घोषणा में मुख्यत: तीन प्रकार की बातों का समावेश है—(1) जिन बातों का निर्णय किया गया; इसमें (क)पाँच अगस्त, 1965 की स्थिति तक सशस्त्र व्यक्तियों की वापसी, (ख) युद्ध बंदियों की अदला-बदली तथा (ग) दूतावासों को पुन: खोलना है। (2) जिन समस्याओं पर चर्चा हुई या जिन पर आगे चर्चा करना तय किया, इसमें कश्मीर प्रश्न पर चर्चा हुई किंतु कोई निर्णय नहीं हुआ, शरणार्थियों और अवैध आव्रजकों की समस्या, युद्ध के संदर्भ में जब्त माल की वापसी, आर्थिक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंधों की पुन: संस्थापना के संबंध में आगे चर्चा करने का निर्णय हुआ, (3) अच्छे पड़ोसीचारे और शांति की सदिच्छा का प्रकटीकरण; इसमें (क) संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के आधार पर बल प्रयोग न करने तथा सभी प्रश्नों को शांतिपूर्वक हल करने, और (ख) एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार को निरुत्साहित करने तथा सद्भावनावर्द्धक प्रचार को प्रोत्साहित करने की घोषणा की गई है; (ग) यह भी मान्य किया गया है कि एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति बरती जाए।

जिन बातों की आगे चर्चा होगी या जो सदिच्छामूलक बातें हैं, उनका परिणाम तो भविष्य के गर्भ में निहित है। उन पर अब तक के अनुभवों के आधार पर अपना अभिमत अवश्य प्रकट किया जा सकता है, किंतु कोई भी निर्णायक विचार निर्विवाद रूप से नहीं प्रकट किया जा सकता। अत: उनका विचार करने के पूर्व हम उन बातों का विचार कर लें, जिन पर निर्णय हो चुका है। इसके साथ ही जिस विषय पर कोई चर्चा नहीं हुई, उसका भी कुछ विचार कर लेना होगा।

आक्रामक और आक्रांत एक ही स्तर पर

जहाँ तक युद्धबंदियों की अदला-बदली तथा दूतावासों को फिर से खोलने

का प्रश्न है, ये सामान्य निर्णय हैं। किंतु 5 अगस्त की रेखा तक वापसी का निर्णय ऐसा निर्णय है, जो सिद्धांततः ग़लत, व्यावहारिक दृष्टि से अहितकर तथा शासन द्वारा देश को दिए गए आश्वासनों के प्रतिकूल है। यह और भी आश्चर्य का विषय है कि यह निर्णय हमने पाकिस्तान के साथ बातचीत करके संयुक्त घोषणा के रूप में लिया। हम यह जानते हैं और विश्व भर इस बात का मंडन करते रहे हैं कि पाकिस्तान आक्रमणकारी है। प्रधानमंत्री शास्त्री, विदेशमंत्री स्वर्ण सिंह तथा हमारे सभी प्रतिनिधियों ने बार-बार दुनिया के सामने इस तथ्य को रखा है कि पाकिस्तान ने भारत के ऊपर तीन बार आक्रमण किया। प्रथम कश्मीर में अक्तूबर 1947 में, दूसरे कच्छ में अप्रैल 1965 में और तीसरे फिर कश्मीर में अगस्त 1965 में। हाल का संघर्ष पाकिस्तान द्वारा युद्धविराम रेखा के उल्लंघन तथा भारत पर भारी पैमाने पर आक्रमण के कारण पैदा हुआ। हमने सुरक्षा परिषद् से माँग की कि वह पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित करे, केंद्रीय शिक्षा मंत्री मु.क. छागला ने 17 सितंबर, 1965 को सुरक्षा परिषद् के अपने भाषण में पाकिस्तान के आक्रमण की चर्चा करते हुए बड़े प्रभावी शब्दों में कहा था—

''*इस परिषद् की क्या उपयोगिता रह जाएगी, यदि वह इन तथ्यों के आधार पर इस आक्रमण की निंदा नहीं करती? यदि आप महासचिव के प्रतिवेदन का समादर करना चाहते हैं— और मैं कहूँगा कि आप कहें कि हम चाहते हैं— तथा आपको संतोष है कि 5 अगस्त को पाकिस्तान ने आक्रमण किया तो मैं माँग करता हूँ कि आप इस आक्रमण की निंदा कर अपने कर्तव्य का पालन करें। अन्यथा अंतरराष्ट्रीय क़ानून निरर्थक हो जाएगा तथा अंतरराष्ट्रीय समाज टिक नहीं सकेगा। इस आक्रमण की केवल निंदा ही नहीं होनी चाहिए अपितु पाकिस्तान को आदेश देना चाहिए कि वह अपना आक्रमण समाप्त कर दे। एक आक्रमणकारी को आक्रमण का लाभ नहीं उठाने दिया जा सकता। सभापतिजी तथा परिषद् के सदस्यों! मेरा आपसे विनम्र निवेदन है कि आक्रमणकारी और आक्रमण के शिकार को आप एक ही तराजू में मत रखिए, उन्हें एक ही मापदंड से मत नापिए। सितंबर 4 और 6 के प्रस्तावों पर मेरी यही आपत्ति है कि आप भारत और पाकिस्तान के साथ बराबरी का बरताव कर रहे हैं, बिना यह विचार किए हुए कि पाकिस्तान तथा भारत दोनों ने किस प्रकार का काम किया, आप उन्हें एक सा व्यवहार करने का आदेश दे रहे हैं।*

''*कुछ राष्ट्र निष्पक्षता की बात करते हैं। वे भारत और पाकिस्तान के बीच*

निष्पक्ष रहना चाहते हैं। सभापतिजी, आप न्यायाधीश रहे हैं, मैं भी 17 वर्षों तक न्यायाधीश रहा हूँ। जब मेरे सामने दो पक्ष आते हैं तो मैं यह नहीं कह सकता कि मैं निष्पक्ष रहूँगा। मुझे सही और ग़लत का निर्णय देना ही पड़ेगा। आप न्याय करने को बैठे हैं। सुरक्षा परिषद् के लिए यह कहना ग़लत होगा कि वह भारत और पाकिस्तान के बीच निष्पक्ष है। ये पूर्णतः अशुद्ध तथा दुर्बलता का दृष्टिकोण होगा। इस रवैये से सुरक्षा परिषद् की उपयोगिता बिल्कुल ख़त्म हो जाएगी। अब समय आ गया है कि आप सच्चाई को यथार्थ रूप में ही रखें। अभी तक सुरक्षा परिषद् इस विषय में हिचकती रही है। किंतु इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं— और आज का ऐसा ही क्षण है— जब सुरक्षा परिषद् को सत्य का उच्चारण करना ही चाहिए।''

पाकिस्तान ने पश्चात्ताप नहीं किया

सुरक्षा परिषद् को इतने कड़े शब्दों में आह्वान करने के बाद हमने वही किया, जिसके लिए हम विश्व के प्रति अपनी नाराज़गी प्रकट करते रहे हैं। हमने ताशकंद में जाकर आक्रमणकारी के साथ न केवल बराबरी के साथ बात ही की बल्कि जो निर्णय किए, वे दोनों के ऊपर समान रूप से लागू होते हैं। क्या इस घोषणा में कहीं भी एक शब्द कहा गया है, जिससे यह संकेत मिले कि पाकिस्तान को अपने किए पर खेद है? आवश्यकता तो यह थी कि पाकिस्तान से पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त कराया जाता। बिना किसी कारण के उसने भारत ही नहीं, विश्व की शांति को भंग किया। भारत को न चाहते हुए भी युद्ध लड़ना पड़ा। अनुमान लगाया गया कि इस युद्ध में हमारा लगभग 500 करोड़ रुपया व्यय हुआ है। राष्ट्रीय संपत्ति की जो हानि हुई तथा हमारी विकास प्रक्रिया पर जो परिणाम हुए हैं, वे अलग हैं। हमारे कई हज़ार जवान इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। अनेक माताओं की गोद सूनी हो गई, बहिनों की माँग का सिंदूर पुछ गया, बहुत से आहत होकर जीविकोपार्जन के लिए असमर्थ हो गए हैं। हमें अपने इन कष्टों, त्याग और बलिदान पर गौरव है। माँ के इन लाड़लों ने अपने पराक्रम से भारत की प्रतिष्ठा को चार चाँद लगाए हैं। किंतु प्रश्न पैदा होता है कि आक्रमणकारी को क्या दंड मिला। उसको भी मार पड़ गई या उसका भी नुक़सान हो गया, यह कहना न्याय और व्यावहारिक दृष्टि से ठीक नहीं होगा। जो देश आक्रमणकारी को दंड नहीं दे सकता, वह कभी अपनी सुरक्षा की स्थायी व्यवस्था नहीं कर सकता।

विजय का विस्मरण

पाकिस्तान के आक्रमण के सामने यदि हमारी सेना टिक नहीं पाती तो एक बार हम मन मारकर बैठ सकते थे। किंतु यहाँ तो हमारे जवानों ने आक्रमणकारी के छक्के छुड़ाकर उसे मुँह की खिलाई है। सेना ने विजयश्री का वरण किया है। चोर को पकड़ लेने के बाद भी यदि उसे दंड न मिले तो मन को कैसा लगेगा? क्या इससे चोर की चोरी करने की आदत छूटेगी? क्या दुनिया की न्याय और नियम व्यवस्था चल सकेगी? ताशकंद में भारत विजयी बनकर गया था। किंतु उसने यह समझौता किया, जो एक पराजित देश भी नहीं कर सकता था। रूस लड़ाइयाँ लड़ चुका है। हम जानते हैं कि उसने पराजित देशों के प्रति कैसा व्यवहार किया है। आज यदि उसने हमको विपरीत व्यवहार करने की सलाह दी तो हमें कहना पड़ेगा कि उसने भारत के हितों और प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखा।

क्षतिपूर्ति क्यों नहीं?

युद्ध ही नहीं, हमारे दूतावास के ऊपर कराची में जो आक्रमण हुआ तथा उसके कर्मचारियों की जो क्षति हुई, उसके विषय में भी हमने अपने पिछले दावों को स्वयं ही समाप्त कर दिया है। 5 अक्तूबर, 1965 को हमने पाकिस्तान को एक विरोध-पत्र दिया था, जिसमें हमने माँग की थी कि पाकिस्तान इस दुर्घटना के संबंध में क्षमा-याचना करे तथा नुक़सान की भरपाई करे। क्या शास्त्रीजी ने दूतावासों को पुन: खोलने की चर्चा करते समय पाक प्रधान अयूब खाँ के सामने इस माँग को दुहराया था? यदि नहीं, तो हमारे द्वारा विरोध-पत्र क्यों भेजे जाते हैं? जब हम ही अपने पत्रों का मूल्य करने को तैयार नहीं तो दूसरे उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दें तो क्या आश्चर्य?

5 अगस्त तिथि है, रेखा नहीं

ताशकंद-घोषणा का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय दोनों देशों के सशस्त्र व्यक्तियों की 5 अगस्त, 1965 के पूर्व की स्थिति पर वापसी तथा युद्ध-विराम रेखा का पालन करने का निश्चय है। इस निर्णय से संपूर्ण देश को घोर निराशा हुई है। इसके द्वारा भारत शासन ने उन सब बातों को झुठला दिया, जो उसके प्रतिनिधि बार-बार कहते आ रहे थे। प्रधानमंत्री शास्त्री तथा दूसरे सभी प्रवक्ताओं ने यह बात अनेक बार स्पष्ट रूप से रखी थी कि भारत की सेनाएँ कारगिल की चोटियों तथा उड़ी पूँछ एवं

टिथवाल क्षेत्र से किसी भी परिस्थिति में वापस नहीं आएगी। जहाँ तक 5 अगस्त की रेखा का सवाल है, भारत ने उसे कभी स्वीकार नहीं किया था। पुरानी युद्ध-विराम रेखा पाकिस्तान ने आक्रमण करके समाप्त कर दी तथा उसको फिर से खींचने का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता। मु.क. छागला ने सुरक्षा परिषद् से लौटकर 28 सितंबर, 1965 को लोकसभा के अपने भाषण में 5 अगस्त की तिथि का महत्त्व अवश्य बताया था किंतु 5 अगस्त की रेखा अथवा स्थिति को भारत ने स्वीकार किया है, यह कभी नहीं बताया था। 5 अगस्त की तिथि पाकिस्तान के आक्रमण की तिथि है। उसका इस नाते अवश्य महत्त्व है। किंतु ताशकंद घोषणा में सबसे मजे की बात यह है कि पाकिस्तान के 5 अगस्त के आक्रमण की तो कोई चर्चा नहीं बल्कि 5 अगस्त के पहले की स्थिति हमारे ऊपर अवश्य थोप दी गई है।

घुसपैठियों का क्या होगा?

5 अगस्त की तिथि का महत्त्व इसलिए भी बताया गया था कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की रिपोर्ट के अनुसार इस तिथि को ही पाकिस्तानी आक्रमणकारी घुसपैठिए के रूप में कश्मीर में आए। अत: यह तर्क दिया गया था कि इस आधार पर पाकिस्तान घुसपैठियों को भेजने के अपने दायित्व को स्वीकार करेगा तथा उन्हें वापस बुलाएगा। किंतु ताशकंद घोषणा में दोनों में से एक भी बात नहीं है। न तो पाकिस्तान ने घुसपैठियों के बारे में अपनी ज़िम्मेदारी स्वीकार की है और न उनको वापस बुलाने के लिए वह तैयार है। इस घोषणा सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव से उधार लेकर सेनाओं के स्थान पर 'सशस्त्र व्यक्ति' शब्दावली का प्रयोग किया है। हमारा दावा है कि इस शब्द में सशस्त्र घुसपैठियों का भी समावेश होता है। किंतु घोषणा पर हस्ताक्षर होने के तुरंत बाद ताशकंद में ही पाकिस्तानी प्रवक्ता ने यह स्पष्ट किया कि सशस्त्र व्यक्तियों में घुसपैठियों का समावेश नहीं है। हाल ही में भारत और पाकिस्तान के सेनापतियों की संयुक्त बैठक में सशस्त्र व्यक्तियों की वापसी का जो कार्यक्रम बना है, उसमें भी घुसपैठियों का कोई उल्लेख नहीं है। क्या यह निष्कर्ष निकाला जाए कि भारत शासन द्वारा अभी तक दी गई व्यवस्था केवल भारत की जनता को धोखे में डालने के लिए है, पाकिस्तान के साथ व्यवहार में नहीं? या यह माना जाए कि इस विषय पर भी हमने अपना क़दम पीछे हटा लिया है।

मुक्त क्षेत्रों का महत्त्व

पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में जिन स्थानों को हमने मुक्त कर अपने हाथ में लिया, उसके दो ही आधार थे : प्रथम क़ानूनी दृष्टि से हमारे हैं और इसलिए उनको ग़ुलामी के पंजे से छुड़ाना हमारा दायित्व है, जिसका हमने इस अवसर पर पालन किया। दूसरे ये इलाके सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन दर्रों में से ही पाकिस्तान घुसपैठियों को भेजता रहा है। कारगिल की चोटियाँ हमारे श्रीनगर लेह मार्ग की सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक हैं। ताशकंद घोषणा में इन क्षेत्रों को ख़ाली करने का निर्णय हमारे ऊपर उक्त दोनों दृष्टि से प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

हमने यह अनेक बार घोषणा की कि भारत इन क्षेत्रों को कभी ख़ाली नहीं करेगा। इतना ही नहीं तो इन क्षेत्रों की मुक्ति के बाद हमने वहाँ सामान्य प्रशासन लागू करने तथा उन्हें संपूर्ण सुविधाएँ पहुँचाने की भी व्यवस्था की थी। हिंदुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली के 23 अक्तूबर के अंक में श्रीनगर से 22 अक्तूबर का यह समाचार प्रकाशित हुआ कि कश्मीर सरकार ने हाजी पीर क्षेत्र में सामान्य नागरिक प्रशासन लागू कर दिया है। इस क्षेत्र के 100 गाँवों की एक अलग तहसील बनाई गई है। एक असिस्टेंट कमिश्नर, एक तहसीलदार, दो नायब तहसीलदार, पाँच राजस्व अधिकारी तथा 20 पटवारी इस तहसील के लिए नियुक्त किए गए हैं। इसी प्रकार हिंदुस्तान टाइम्स के 7 नवंबर, 1965 के अंक में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि हाजी पीर दर्रे को देश के अन्य क्षेत्रों के साथ टेलीफोन से जोड़ने की व्यवस्था की जा रही है। उसी दिन यह भी समाचार दिया गया कि उड़ी और पुँछ को जोड़नेवाली 35 मील लंबी सीधी सड़क की मरम्मत करके यातायात के लिए खोल दिया गया है।

प्रश्न पैदा होता है कि यदि इन क्षेत्रों से अपनी सेना वापस बुलानी थी तो वहाँ यह सब व्यवस्था क्यों की गई। उन्हें भी लाहौर-स्यालकोट क्षेत्र के समान ही सैनिक प्रशासन के अधीन रखा जा सकता था। नागरिक प्रशासन का इतना भारी अमला क्यों भरती किया गया? क्यों अठारह वर्षों से टूटी और बेकार उड़ी-पुँछ सड़क की मरम्मत में पैसा लगाया गया? हाजी पीर दर्रे तक टेलीफोन की लाइनें किसके लिए बिछाई गईं? क्या यह पाकिस्तान को सौंपने के लिए ही किया गया?

प्रजातंत्र का तकाजा

स्पष्ट है कि भारत सरकार की नीति यही थी कि इन क्षेत्रों को ख़ाली नहीं

किया जाएगा, किंतु रूस के दबाव के कारण उन्हें झुकना पड़ा। यदि ऐसी ही बात थी तो प्रजातंत्र और नीतिमत्ता का तकाजा था कि भारत के अधिकारी ताशकंद में इस विषय में कोई निर्णय न करके भारत की जनता और संसद् की राय जानने की व्यवस्था करते। यदि उनकी कोई विवशता थी तो उन्हें देश को विश्वास में लेना चाहिए था। जब शास्त्रीजी ताशकंद जा रहे थे तो हमारे मन में इस प्रकार की आशंकाएँ थीं। वे हमने व्यक्त भी की थीं। किंतु उन्होंने सभी प्रकार से विश्वास दिलाया था कि वे भारत द्वारा अपनाई गई आधारभूत नीतियों से किसी भी दबाव के आगे नहीं डिगेंगे। दु:ख है कि इन आश्वासनों का ताशकंद घोषणा में निर्वाह नहीं हुआ है।

भारत की अधिकृत नीति

भारत शासन की अधिकृत नीति का उल्लेख प्रधानमंत्री श्री शास्त्री ने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव यूथान्ट को दिनांक 14 सितंबर को लिखे गए पत्र में किया है। आगे संसद्, सुरक्षा परिषद् अथवा महासचिव यूथान्ट के साथ इस विषय में जितनी भी चर्चा हुई है उनमें इस पत्र का ही हवाला दिया गया है।

इस पत्र में अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है— ''अपने पिछले कुछ महीनों के अनुभव के आधार पर हम इस बात पर दृढ हैं कि आगे भारत पर खुले या छिपे किसी भी प्रकार के आक्रमण की संभावना न रहे। महासचिव महोदय! मैं साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि युद्ध-विराम के प्रभावी होने के बाद जब अन्य ब्योरों का विचार होगा तो हम ऐसी कोई भी स्थिति को स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें आगे घुसपैठियों का रास्ता खुला रहे या जो घुसपैठ हो चुकी है, उसके विरुद्ध हम कार्रवाई न कर सकें। मैं यह भी नि:संदिग्ध शब्दों में कहना चाहूँगा कि कोई भी दबाव या आक्रमण हमको भारत की प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखंडता, जिसका जम्मू और कश्मीर अभिन्न अंग है, की रक्षा करने के हमारे दृढ निश्चय से डिगा नहीं सकेगा।''

इसी आधार पर प्रधानमंत्री ने 16 सितंबर, 1965 को संसद् में वक्तव्य दिया था। उसमें उन्होंने कहा था, ''हम ऐसी किसी भी स्थिति में वापस नहीं जा सकते, जिसमें हम घुसपैठियों का आना न रोक सकें या जो आ गए हैं, उनके विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई न कर सकें।''

दिनांक 24 सितंबर को संसद् में बोलते हुए उन्होंने कहा था, ''मैंने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को लिखे हुए अपने 14 सितंबर के पत्र में भारत का दृष्टिकोण

स्पष्ट कर दिया है। हम सुरक्षा परिषद् के तीनों प्रस्तावों का यह अर्थ समझते हैं कि वे सेना और पाकिस्तान से आए घुसपैठियों दोनों पर लागू होते हैं। पाकिस्तान को इन घुसपैठियों को वापस बुलाने की ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए। हम भविष्य में ऐसी कोई भी व्यवस्था कभी स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें घुसपैठ की संभावना बनी रहे।''

उसी दिन केंद्रीय शिक्षामंत्री श्री छागला ने अपने सुरक्षा परिषद् के भाषण का हवाला देते हुए इस विषय पर लोकसभा में कहा था, ''मैंने दिनांक 17 सितंबर को सुरक्षा परिषद् में कहा था :

''इसका संबंध युद्ध-विराम की व्यवस्था से है। मैं उसके ब्योरों में नहीं जाना चाहता किंतु इतना अवश्य कहूँगा कि कश्मीर से सभी आक्रमणकारियों को वापस जाना होगा। पाकिस्तान ने जैसे उन्हें भेजा था वैसे उन्हें वापस बुलाना चाहिए। दूसरे, इस बात की व्यवस्था करनी होगी कि आगे घुसपैठ असंभव हो जाए। तीसरे पाकिस्तान को घुसपैठ की ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए।''

राज्यसभा में इसी विषय पर बोलते हुए श्री छागला ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा था—

''अब मैं माननीय सदस्य ने 5 अगस्त की जो चर्चा की है, उस पर आता हूँ। उन्होंने कहा है कि इससे आक्रमणकारी को लाभ मिलेगा। यदि आप प्रधानमंत्री द्वारा महासचिव को लिखे गए पत्र को पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारा 5 अगस्त की स्थिति को लौटने का क्या अर्थ है। मैंने सरकार की नीति की सुरक्षा परिषद् के सामने भी स्पष्ट व्याख्या की थी कि 5 अगस्त की तिथि में तीन शर्तें निहित हैं— प्रथम सभी घुसपैठिये, जिन्होंने कश्मीर में प्रवेश किया तथा जिन्होंने पाकिस्तान की ओर से आक्रमण प्रारंभ किया, वापस चले जाएँ, दूसरे, पाकिस्तान इन घुसपैठियों की ज़िम्मेदारी स्वीकार करे और तीसरी जो सबसे महत्त्व की है— हम ऐसी स्थिति पैदा करें कि भविष्य में घुसपैठ असंभव हो जाए। हमने काफ़ी युद्धविराम किए हैं, हमने पाकिस्तान पर बहुत विश्वास किया है अब हम और विश्वास करने को तैयार नहीं हैं। अतः अपने देश के हित में, सुरक्षा के हित में हमें ऐसी युद्धविराम रेखा बनानी होगी, जिससे भविष्य में घुसपैठ संभव न हो। युद्ध विराम रेखा 500 मील लंबी है। आप संयुक्त राष्ट्र के पर्यवेक्षकों की संख्या चालीस से बढ़ाकर चार सौ या चार हज़ार कर सकते हैं किंतु जब तक युद्ध विराम रेखा ऐसी न बने कि घुसपैठ

असंभव हो जाए, भविष्य के लिए कोई गारंटी नहीं हो सकती।''

उपर्युक्त सभी वक्तव्यों में यह स्पष्ट कहा गया है कि भारत जम्मू और कश्मीर राज्य में अपनी सेनाओं को वापस नहीं बुलाएगा। वह हाजी पीर, कारगिल तथा उड़ी-पुँछ क्षेत्र से पीछे नहीं हटेगा, क्योंकि उन पर अधिकार रखे बिना घुसपैठियों को नहीं रोका जा सकता।

शास्त्रीजी की शर्तें

युद्धविराम के उपरांत 5 नवंबर, 1965 को लोकसभा में बोलते हुए प्रधानमंत्री शास्त्री ने और भी स्पष्ट शब्दों में पाकिस्तान के साथ बातचीत की शर्तें रखी थीं। उन्होंने कहा था—

''वापसी की चर्चा में सबसे महत्त्व का प्रश्न है कि हमें इस बात का विश्वास दिलाया जाए कि 5 अगस्त को प्रारंभ घुसपैठ का तरीक़ा फिर नहीं दुहराया जाएगा।

''युद्ध-विराम के पूर्व महासचिव को लिखे गए पत्र में मैंने इस विषय पर बहुत बल दिया था।

''मैं यह भावना व्यक्त किए बिना नहीं रह सकता कि दुनिया बहुत से कष्टों और दु:खों से बच जाएगी, यदि कहीं भी होनेवाले आक्रमण की निंदा की जाए तथा आक्रामक का नाम निर्देशन करने में निष्पक्षता बरती जाए।

''यदि पाकिस्तान आज की तनाव की अवस्था को समाप्त करना चाहता है तो उसे युद्ध-विराम समझौते का आदर और पालन करना चाहिए। उसे प्रतिदिन होनेवाले युद्ध-विराम के उल्लंघनों को बंद कर देना चाहिए। फिर उसे अपने सभी सशस्त्र व्यक्तियों को हमारी भूमि से वापस बुला लेना चाहिए, तब हम भी अपनी सेनाओं को पाकिस्तान के उन क्षेत्रों से वापस बुला लेंगे, जो हमारे अधिकार में हैं। (यहाँ पाकिस्तान के क्षेत्र शब्द का उल्लेख है। उड़ी-पुँछ, हाजी पीर तथा कारगिल पाकिस्तान का क्षेत्र नहीं है।)

''उसे हथियार और युद्ध-सामग्री इकट्ठा करने के प्रयत्न बंद कर देने चाहिए।

''उसने जो माल जब्त किया है, उसे मुक्त कर देना चाहिए।

''उसके चीन के साथ अपनी साँठ-गाँठ, जो भारत के समान विरोध के आधार पर है तथा जिसका उद्देश्य भारत का विनाश है, समाप्त कर देनी चाहिए।

''संक्षेप में पाकिस्तान पहले सामान्य स्थिति लाए, तब कहीं अच्छे संबंधों का विचार हो सकता है।''

ये शर्तें थीं, जिनको संसद् ने स्वीकार किया था और जिनके आधार पर पाकिस्तान से बातचीत होनी थी। जो कुछ हुआ, वह इसके बिल्कुल विपरीत है।

श्री सादिक की घोषणाएँ

जहाँ तक जम्मू और कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री ग़ुलाम मुहम्मद सादिक का संबंध है, उन्होंने तो कलकत्ता, जमशेदपुर, पटना, दिल्ली, श्रीनगर आदि सभी स्थानों पर अपने सार्वजनिक भाषणों में यह कहा था कि भारत किसी भी परिस्थिति में कश्मीर के उन स्थानों से अपनी सेना नहीं हटाएगा, जो उसने युद्ध-विराम रेखा के पार मुक्त किए हैं। हिंदुस्तान टाइम्स ने 13 दिसंबर के अंक में उनके कलकत्ता के 12 दिसंबर के भाषण का वृत्त देते हुए लिखा है—

"कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री गु.म. सादिक ने बलपूर्वक घोषणा की कि भारत ने तथाकथित आज़ाद कश्मीर के जिन इलाक़ों को मुक्त किया है, उन्हें वापस करने के बारे में चर्चा करने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। ये इलाके क़ानूनी और संवैधानिक दृष्टि से भारत के अभिन्न अंग है। जब हम किसी युद्ध-विराम रेखा के लिए तैयार नहीं हैं। यदि पाकिस्तान छंब क्षेत्र को ख़ाली कर देगा तो हम लाहौर और स्यालकोट से वापस आ जाएँगे।"

आश्वासन झुठलाए गए

इतने स्पष्ट उल्लेखों के बाद भी जब हमारे विदेशमंत्री श्री स्वर्ण सिंह ताशकंद घोषणा में वापसी की व्यवस्था को प्रधानमंत्री द्वारा रखी गई शर्तों के अनुसार बतलाते हैं तो उनका कथन एक राजनीतिक दुस्साहस ही कहा जाएगा। न तो जनता इतनी मूर्ख है कि वह इस प्रकार भुलावे में आ जाए और न ये सब घटनाएँ इतनी पुरानी हुई हैं कि काल के आवरण के कारण जन-मानस के स्मृति-पटल पर उनकी छाया धूमिल हो जाए। आज शास्त्रीजी हमारे बीच नहीं हैं किंतु हम श्री स्वर्ण सिंह और यशवंतराव चौहान से अवश्य पूछेंगे कि उन्होंने इस प्रकार के समझौते की स्वीकृति कैसे दी?

अलग-अलग व्याख्याएँ

श्री स्वर्ण सिंह ने अपने रेडियो भाषण में कहा है कि पाकिस्तान ने सभी सशस्त्र व्यक्तियों को वापस बुलाना तथा युद्ध-विराम की शर्तों का पालन करना और एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना स्वीकार करके भारत की

सभी शर्तों को मान लिया है। किंतु हम बताना चाहेंगे कि प्रथम तो भारत की ये शर्तें नहीं थीं। सरदार स्वर्ण सिंह अपनी नई शर्तें गढ़ रहे हैं। दूसरे, पाकिस्तान के प्रवक्ताओं ने ताशकंद घोषणा की जो व्याख्या की है, वह श्री स्वर्ण सिंह की व्याख्या से बिल्कुल भिन्न है।

पाकिस्तान के प्रवक्ता ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर के तुरंत बाद तथा विदेश सचिव श्री अजीज अहमद ने दिनांक 11 जनवरी, 1966 को यह स्पष्ट किया कि सशस्त्र व्यक्तियों में कश्मीर में स्वतंत्रता के लिए लड़नेवालों का समावेश नहीं होता। हम जानते हैं कि पाकिस्तान इन घुसपैठियों को मुजाहिद की संज्ञा देता है। वह उनको वापस बुलाने के लिए तैयार नहीं है।

इसी प्रकार पाकिस्तान के प्रवक्ता ने यह भी स्पष्ट किया है कि एक-दूसरे के मामलों में अहस्तक्षेप की नीति कश्मीर पर लागू नहीं होती, क्योंकि वह विवादग्रस्त क्षेत्र है। श्री अयूब और भुट्टो ने साफ कहा है कि वे कश्मीर के प्रश्न पर उदासीन नहीं रहेंगे।

स्पष्टीकरण माँगिए

स्पष्टतः ताशकंद घोषणा की व्याख्या अलग-अलग की जा रही है। किंतु आश्चर्य का विषय तो यह है कि भारत के शासन ने इस संबंध में पाकिस्तान से कोई स्पष्टीकरण भी नहीं माँगा, उल्टे भारत और पाकिस्तान के सेनापतियों के बीच वापसी का जो समझौता हुआ है, उसमें घुसपैठियों की कहीं चर्चा तक नहीं की है। आवश्यक तो यह था कि जब तक व्याख्या के संबंध में दोनों देश एकमत नहीं हो जाते, तब तक घोषणा का क्रियान्वयन नहीं होना चाहिए। हम यहाँ फिर अपनी पुरानी ग़लती दुहरा रहे हैं। हम अपनी व्याख्या देकर चुप बैठ जाते हैं तथा करने वही लगते हैं, जो पाकिस्तान कहता है। फलतः हमारा कथन निस्सार हो जाता है।

जम्मू-कश्मीर पर चर्चा क्यों की गई?

भारत सरकार का यह दृष्टिकोण रहा है कि जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है तथा उसके राजनीतिक भविष्य के संबंध में किसी बाहरी सत्ता से कोई बातचीत नहीं की जाएगी। इसी आधार पर हमारे विदेशमंत्री श्री स्वर्ण सिंह सुरक्षा परिषद् की बैठक से उठकर चले आए। ताशकंद जाने के पूर्व श्री शास्त्री ने घोषणा की थी कि कश्मीर पर कोई बातचीत नहीं होगी।

''जहाँ तक कश्मीर के भारत का अंग होने तथा उसके भारत के साथ एकीकरण का संबंध है, यह अध्याय कभी का समाप्त हो चुका है। यदि पाकिस्तान के साथ किसी विषय पर चर्चा करनी है तो वह उस दो-तिहाई भाग के विषय में ही होगी, जिस पर उसने बलात् अधिकार कर रखा है।'' श्री स्वर्ण सिंह ने यह बात न्यूयॉर्क के एक पत्रकार सम्मेलन में कही थी।

कश्मीर पर चर्चा क्यों हुई?

अपनी इसी नीति के अनुसार ताशकंद में विचार-विनिमय के लिए जो विषय-सूची बनाई जा रही थी, उसमें शास्त्रीजी कश्मीर जोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। किंतु रूस के प्रधानमंत्री के दबाव पर वे पाकिस्तान के साथ कश्मीर पर अनौपचारिक रूप से बातचीत करने को तैयार हो गए। अब जब बातचीत की बात ताशकंद घोषणा में सम्मिलित कर ली गई है तो वह किसी भी प्रकार से अनौपचारिक नहीं कही जा सकती।

कश्मीर पर भारत और पाकिस्तान ने क्या दृष्टिकोण उपस्थित किया, इसका तो पता नहीं है, किंतु घोषणा में यह कहा गया है कि कश्मीर चर्चा संपूर्ण क्षेत्र की शांति की पृष्ठभूमि में की गई। कश्मीर को क्षेत्रीय शांति के साथ जोड़कर पाकिस्तान ने बाज़ी जीत ली। हम कश्मीर के प्रश्न को शांति के लिए ख़तरा नहीं मानते। हमारे लिए यदि कोई प्रश्न और ख़तरा है तो केवल पाकिस्तानी आक्रमण का है।

पाकिस्तान बराबर यह कहता आ रहा है कि जब तक कश्मीर की समस्या नहीं सुलझेगी, इस क्षेत्र में शांति नहीं रह सकती। यह उसकी धमकी है। इसी के अनुसार उसने दो बार आक्रमण भी किया। आज उसने इस घोषणा के द्वारा हमसे यह मनवा लिया कि कश्मीर की समस्या के सुलझाव के बिना भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बना रहेगा तथा दोनों देशों की जनता का हित नहीं होगा। यह हमारे आज तक के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न बात है। हमने तो यह माना है कि कश्मीर का कोई प्रश्न ही नहीं है अथवा कश्मीर भारत-पाक तनाव का कारण नहीं बल्कि उसका लक्षण है।

न्यूयॉर्क और ताशकंद में विरोध

यह बात सत्य है कि कश्मीर के राजनीतिक भविष्य के संबंध में अभी कोई निर्णय नहीं हुआ है। किंतु कश्मीर पर चर्चा करके हमने इस प्रश्न को फिर से

जीवित कर दिया। हमारा यह क़दम सुरक्षा परिषद् के इसी विषय पर बहिर्गमन से मेल नहीं खाता। सुरक्षा परिषद् से हमने बलपूर्वक यह बताया था कि हम कश्मीर को अपना आंतरिक मामला मानते हैं और उस पर कोई चर्चा नहीं करेंगे। किंतु ताशकंद की हवा में हम अपनी मान्यता को भूल बैठे। जो कुछ हमने न्यूयॉर्क में कमाया था, वह ताशकंद में गँवा दिया।

पाकिस्तान की चाल

शास्त्रीजी ताशकंद गए थे भारत-पाक संबंधों और समस्याओं की कुल मिलाकर चर्चा करने के लिए, किंतु वहाँ चर्चा केवल कश्मीर पर हुई। अन्य प्रश्नों पर आगे चर्चा करने का निर्णय हुआ। 1962-63 में भारत-पाक वार्त्ता का इतिहास दुहराया गया है। उस समय भी दोनों देशों के सभी विवादों पर चर्चा के लिए एक नहीं कई बैठकें हुईं। किंतु कश्मीर छोड़कर और किसी भी बात पर चर्चा नहीं हुई। यह पाकिस्तान की पुरानी नीति है। वह जिस प्रश्न को चाहता है, उस पर चर्चा करता है तथा हमारे लिए महत्त्व के प्रश्न को टाल जाता है। लगता है, हमने अनुभव से कुछ सीखा नहीं।

पाकिस्तान बल प्रयोग करेगा

ताशकंद में कश्मीर प्रश्न की चर्चा से अब आगे के लिए उसका द्वार खुल गया है और इसलिए पाकिस्तानी प्रधान का यह कथन सारहीन नहीं कि ताशकंद घोषणा कश्मीर प्रश्न के हल का एक साधन है। इस संदर्भ में पाकिस्तान ने अपने हाथ कहीं बाँधे भी नहीं है। उसने सभी रास्ते खोलकर रखे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का हवाला देकर उसने सुरक्षा परिषद् के द्वारा कश्मीर प्राप्ति का दरवाजा खोलकर रखा है। ताशकंद घोषणा के नाम पर रूस की सहायता लेकर भी वह कश्मीर को हमारे हाथ से निकालने की कोशिश कर सकता है। घुसपैठियों का मार्ग तो उसने साफ कर ही लिया है। फिर से वह युद्ध और तोड़-फोड़ की कार्रवाइयों के द्वारा कश्मीर को हथियाने के लिए प्रयत्न कर सकता है। उसके नेताओं ने साफ कह दिया है कि उनका बल-प्रयोग न करने का निश्चय कश्मीर पर लागू नहीं होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के 51वें अनुच्छेद में राष्ट्रों को अपनी स्वतंत्रता और रक्षा के लिए बल प्रयोग की अनुमति दी गई है। पाकिस्तान कश्मीर के प्रश्न को स्वतंत्रता का प्रश्न कहता है।

पाकिस्तान के अगले क़दम

घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर के तुरंत बाद ताशकंद में पाकिस्तान के विदेश सचिव श्री अजीज अहमद ने एक पत्रकार परिषद् में बताया कि ताशकंद घोषणा ने कश्मीर प्रश्न के हल के लिए तीन मार्ग खोल दिए हैं : प्रथम, सेनाओं की वापसी के बाद सुरक्षा परिषद् को भारत-पाक संघर्ष के मूल निहित प्रश्न के राजनीतिक समाधान को हाथ में लेना ही होगा। दूसरे, ताशकंद घोषणा के 9वें भाग के अंतर्गत भारत और पाक जो विभिन्न स्तरीय संयुक्त समितियाँ बनाएँगे, वे कश्मीर की चर्चा कर मार्ग निकालेंगी। तीसरे, सोवियत मध्यस्थता के द्वारा भी इस समस्या का हल निकल सकेगा। अर्थात् जिस सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को भारत ने कभी पूर्णत: स्वीकार नहीं किया तथा युद्ध-विराम भी 'सादा युद्ध-विराम' कहकर माना, उसे ही अब हमारे ऊपर लादने की व्यवस्था की जा रही है। 25 फरवरी तक सेनाएँ वापस हो जाएँगी। उसके बाद पाकिस्तान फिर सुरक्षा परिषद् की बैठक बुलाएगा तथा कहेगा कि अब कश्मीर के राजनीतिक पहलू का विचार होना चाहिए। क्या उस समय रूस अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करेगा? कुछ लोगों का कहना है, हाँ। उसने हमें इस विषय में अभिवचन दिया है। यदि यह हुआ तो प्रश्न सुरक्षा परिषद् के हाथ से निकलकर फिर रूस के हाथ में आ जाएगा। फिर से 'ताशकंद' का आयोजन होगा और रूस अपने विभिन्न सुझावों को हमारे मत्थे मढ़ने की कोशिश करेगा। क्या उस समय हम दृढ रहेंगे? क्या रूस की नाराज़गी की चिंता हमें नहीं होगी? जिस 'अकेलेपन' से बचने के नाम पर भारत के हित, संसद् के संकल्प, देश की प्रतिष्ठा, सेना का पराक्रम तथा दिए गए आश्वासनों को एक ओर रखकर ताशकंद समझौते पर मन मारकर हस्ताक्षर किए, वही 'अकेलापन' भूत बनकर हमारे ऊपर खड़ा हो जाएगा। हमारी बेबसी फिर हमें विवश करेगी और कश्मीर का बलिदान हो जाएगा।

कुछ लोग यह आशा तथा विश्वास लेकर चल रहे हैं कि मध्यस्थता के प्रयत्नों में रूस हमारी सहायता करेगा। ताशकंद का अनुभव इस विश्वास को पुष्ट नहीं करता। यह रूस हमारी सहायता करेगा तो पाकिस्तान चीन की गोद में पूरी तरह जाने की धमकी देगा। चीन उसकी सहायता के लिए भारत की उत्तरी सीमा पर छेड़खानी करेगा। चीनी आक्रमण का ख़तरा बढ़ जाएगा। और फिर रूस और अमरीका दोनों ही हमें सलाह देंगे कि पाकिस्तान को चीन के चंगुल में से निकालना चाहिए। इसके

लिए यदि उसे संतुष्ट करने के लिए कुछ बलिदान भी करना हो तो करना चाहिए। और इस प्रकार 'म्यूनिख' की पुनरावृत्ति के लिए दूसरे 'ताशकंद' की योजना हो सकती है।

ताशकंद की घोषणा के तुरंत बाद से ही पाकिस्तान के नेताओं ने 'कश्मीर' की जिस प्रकार रट लगा रखी है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि इस कूटनीतिक वार्त्ता से उनका हौसला बढ़ा है। यह ठीक है कि पाकिस्तान उग्रवादी तत्त्व, जो एक ही झटके में कश्मीर ले लेना चाहते थे या जिनको पाकिस्तानी नेताओं ने अपने ग़लत प्रचार से इस भ्रम में डाल दिया था कि भारत की इस लड़ाई में बुरी हार हुई है, ताशकंद घोषणा से निराश हैं। किंतु उनकी निराशा और आंदोलन के कारण हमें यह ग़लत निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि ताशकंद घोषणा हमारे लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

अन्य प्रश्न

भारत और पाकिस्तान के बीच और भी प्रश्न हैं, जिनका पिछले 18 वर्षों से कोई हल नहीं निकला है। पाकिस्तान से लगभग 1 करोड़ हिंदू भारत में शरणार्थी बनकर आए हैं। वे अनुमानतः बाहर सौ करोड़ रुपए की संपत्ति छोड़कर आए हैं। पश्चिमी पाकिस्तान से आनेवाले हिंदू वहाँ 48 लाख स्टैंडर्ड एकड़ उपजाऊ भूमि तथा लगभग 500 करोड़ रुपए की मकानों की जायदाद छोड़कर आए हैं। कल-कारख़ाने, दुकान, बैंक आदि की संपत्ति, न्यासों और संस्थाओं की जायदाद का हिसाब अलग है। पूर्वी बंगाल से आए हिंदुओं की संपत्ति का तो कोई अनुमान ही नहीं लगाया गया। उसको कूतने के बाद तो मूल रकम और भी बढ़ जाएगी। पाकिस्तान से इस संपत्ति का मुआवजा लेना है। किंतु अभी तक एक भी पैसा नहीं मिला। इस विषय पर तो वह बात भी नहीं करता।

इसी प्रकार जो शरणार्थी भारत में आए, उनको फिर से बसाने में भी भारत को बहुत रकम ख़र्च करनी पड़ी है। भारत सरकार के सूचना विभाग के अनुसार 1964 तक यह रकम 420 करोड़ रुपए तक आती है। इस रकम के लिए पाकिस्तान देनदार है। यदि भारत नहरी पानी के नए बाँध बनाने के लिए पाकिस्तान को रुपया दे सकता है तो फिर जो लोग पाकिस्तान की नीतियों और वहाँ के शासन के कुकृत्यों के शिकार बन बेघरबार हुए, उनको बसाने का ख़र्चा उसे क्यों वहन नहीं करना चाहिए।

पाकिस्तान से केवल ग़ैर-मुसलिम ही नहीं, मुसलमान भी बहुत बड़ी तादाद

में आसाम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल तथा बिहार में आए हैं। ये अवैध रूप से आकर योजनापूर्वक बस गए हैं। उनकी संख्या भी बारह लाख के आसपास आँकी गई है। इस भारी संख्या से भारत की अर्थव्यवस्था पर तो दुष्परिणाम हुए ही हैं, किंतु जिस प्रकार पाकिस्तान चल रहा है, इस आव्रजन के मूल में निहित राजनीतिक संभावनाओं को भी आँख ओझल नहीं किया जा सकता। भारत शासन इन अवैध आव्रजकों को वापस भेजना चाहता है। पाकिस्तान इस मार्ग में अनेक बाधाएँ डालता रहा है।

पाकिस्तान से इतनी बड़ी संख्या में आए हुए लोगों के लिए भूमि की माँग करना भी स्वाभाविक है। यह तो नहीं चलने दिया जा सकता कि पाकिस्तान समय-समय पर भारी तादाद में अपने नागरिकों को हमारे ऊपर ढकेलता रहे।

देश विभाजन के समय संयुक्त भारत की जितनी देनदारी थी, वह भारत ने अपने ऊपर ले ली थी। उसमें से पाकिस्तान का हिस्सा लगभग 300 करोड़ रुपए का आता है। इस रुपए को पाकिस्तान 9 करोड़ रुपए की वार्षिक किश्तों में चुकानेवाला था, किंतु अभी तक एक भी किश्त नहीं चुकाई गई। इस प्रश्न पर भी विचार करना ही होगा।

हाल के संघर्ष में भी पाकिस्तान ने हमारा बहुत सा माल ज़ब्त कर लिया था। आसाम से कलकत्ता को आनेवाली चाय तथा दुनिया के विभिन्न देशों से आनेवाले सभी माल को पाकिस्तानी बंदरगाहों में रोक लिया गया। यह माल 20 करोड़ रुपए से कम का नहीं होगा। इस माल की वापसी, उसमें कमी या क्षति की पूर्ति तथा विलंब के कारण होनेवाले आर्थिक नुक़सान की भरपाई पाकिस्तान को करनी होगी।

सीमा विवादों के निबटारे में भी अभी तक पाकिस्तान के दावों को, फिर वे सही हों या ग़लत स्वीकार कर हम समय-समय पर समझौते करते रहे हैं, किंतु सिलहट के बारह थाने तथा चिटगाँव का पहाड़ी क्षेत्र, जो हिंदू-बहुल होने के कारण रेड क्लिफ अवार्ड के अनुसार भारत को मिलना था, अभी तक पाकिस्तान के पास है। पाकिस्तान उनके बारे में चर्चा भी करने को तैयार नहीं।

ग़ैर-मुसलिमों और पख्तूनों के साथ विश्वासघात

ताशकंद घोषणा में एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति स्वीकार की गई है। जहाँ तक दो राज्यों के बीच सामान्य व्यवहार संहिता का सवाल है, यह एक अच्छा सिद्धांत है। किंतु पाकिस्तान का निर्माण सामान्य एवं प्राकृतिक आधार पर नहीं हुआ। भारत और पाकिस्तान 1947 तक एक ही देश थे

और आज भी उनकी जनता के बीच के एकता के सूत्र को भुलाया नहीं जा सकता। आज पाकिस्तान में हिंदुओं की दुर्दशा पर और पख्तूनिस्तान के नेताओं के साथ होनेवाले अन्याय पर भारत उदासीन नहीं रह सकता। जब तक हिंदुओं को पाकिस्तान में समान अधिकार नहीं मिलते तथा उनके जान, माल और सम्मान की आश्वस्ति नहीं मिलती, तब तक अहस्तक्षेप के नाम पर उनको भुला देना अपने कर्तव्य की अवहेलना है। जिन लोगों ने मुसलिम लीग के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया, वे चाहे हिंदू हों या मुसलमान, उनको समाप्त करने की नीति पाकिस्तानी शासकों ने पिछले अठारह वर्षों में अपनाई है। हम दक्षिणी अफ्रीका और रोडेशिया के अश्वेत निवासियों के प्रति होनेवाले भेदभाव और अन्याय के विरुद्ध लड़ सकते हैं, किंतु अपने ही बगल में तथा 1947 तक देश की स्वतंत्रता, जिसमें पाकिस्तान की स्वतंत्रता भी शामिल है, के लिए लड़नेवालों की दुर्दशा के प्रति इतने बेख़बर कैसे हो सकते हैं।

सरहदी गांधी ख़ान अब्दुल गफ्फार खाँ को भारत आने का तथा यहाँ से अपने आंदोलन को चलाने का निमंत्रण भारत शासन के प्रवक्ताओं ने संसद् में दिया था। बिना संसद् की अनुमति के उसे वापस नहीं लिया जा सकता।

पाकिस्तान कश्मीरियों को उभार रहा है

जहाँ तक पाकिस्तान का प्रश्न है, उसने घोषणा कर दी है कि अहस्तक्षेप का निर्णय कश्मीर पर लागू नहीं होता। पाकिस्तान के नेता कश्मीरी जनता को बराबर भड़का रहे हैं। भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री श्री महावीर त्यागी ने इस तथ्य की ओर शासन का ध्यान खींचा है। अर्थात् जो लोग यह सोचकर आत्म-प्रवंचना कर रहे थे कि अहस्तक्षेप की घोषणा के कारण पाकिस्तान कश्मीर से अपने हाथ खींच लेगा, उनकी इससे आँखें खुल जानी चाहिए।

शांति भाषा दिखावा है

ताशकंद घोषणा को शांति और अच्छे पड़ोसीचारे का मशविदा बताया जाता है। भारत जिस अयुद्ध संधि को चाहता था, उसे तो पाकिस्तान ने ठुकरा दिया। हाँ, संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा का हवाला देकर शांतिपूर्वक सभी मामले सुलझाने की सदिच्छा का पुनरुच्चार अवश्य किया है। भारत के अनेक लोग इसी एक मीठी घोषणा से इतने मुग्ध हैं कि वे आपा खोकर सबकुछ समर्पण करने को तैयार हो गए हैं।

अंतरराष्ट्रीय जगत् के व्यवहार इस प्रकार की भावुकता और भोलेपन से नहीं चलते। यह तो हद दर्ज़े की अयथार्थवादिता है, जो शेखचिल्ली की कहानियों को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलती। हम शांति और समझौते के विरोधी नहीं। हम पाकिस्तान के साथ सदैव युद्ध के भी हामी नहीं। किंतु शांति का नारा लगाकर कोई हमें ठग ले या हम अपनी सुधबुध ही खो बैठें, यह हमें स्वीकार नहीं।

शांति और मित्रता की जो भाषा ताशकंद घोषणा में लिखी गई, वह नई नहीं है। प्रत्येक समझौते की प्रस्तावना में इसी प्रकार की भाषा रहती है। कच्छ समझौते की प्रस्तावना में भी तनाव कम करने की बात कही गई थी। नहरी पानी समझौते पर हस्ताक्षर करते समय भी भारत-पाक मित्रता की दृढ नींव रखे जाने की घोषणा की गई थी। नेहरू-लियाकत पैक्ट भी सद्भावना और मित्रता की आधारशिला समझी जाती थी। आजकल ताशकंद भावना की चारों ओर चर्चा है। वांडुंग भावना और पंचशील के नारों की गति हम देख चुके हैं। ताशकंद भावना उनसे भिन्न नहीं होगी।

यह हृदय परिवर्तन नहीं है

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की एक शोकसभा में बोलते हुए कहा था कि ताशकंद घोषणा न तो कोई संधि है और न क़ानूनी दस्तावेज़, बल्कि वह हृदय परिवर्तन का एक संकल्प है। यह वर्णन आशावादी एवं सुधारवादी दृष्टिकोण का द्योतक हो सकता है तथा घोषणा के शब्दों का ऊपरी अर्थ लगानेवाले उससे प्रभावित भी हो सकते हैं किंतु यदि गहराई में पैठा जाए तथा जिस प्रकार यह घोषणा स्वीकृत हुई, उसका विचार किया जाए तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि उसमें हृदय परिवर्तन देखने का कोई कारण नहीं है। यह सर्वविदित है कि ताशकंद में सप्ताह भर बातचीत चलती रही तथा भारत और पाकिस्तान किसी भी विषय पर एकमत नहीं हो पाए। आख़िरी दिन तो वार्त्ता भंग होने की संभावना स्पष्ट दिखती थी। दोनों नेता किसी भी प्रकार का संयुक्त वक्तव्य देंगे, इसकी कोई संभावना नज़र नहीं आती थी। एक पाकिस्तानी प्रवक्ता ने तो यहाँ तक कहा कि संयुक्त वक्तव्य कोई टिकट थोड़े ही है, जिसके बिना वे अपने देश नहीं लौट सकते। भारत एक के बाद एक मसौदा देता जाता था और पाकिस्तानी शिष्टमंडल उनका मजाक बनाकर रद्द करता जाता था। भारत का युद्ध-वर्जन संधि का प्रस्ताव इसी तरह ठुकरा दिया गया। 9 जनवरी को जो समाचार आए, उनसे तो औपचारिक वक्तव्य की भी संभावना नहीं दिखती थी।

इसके बाद जो चक्र चला, उसका परिणाम ताशकंद घोषणा है। यह सबकुछ हुआ रूस के प्रधानमंत्री के प्रभाव और दबाव से। यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी कि रूस के प्रधानमंत्री ने घोषणा तैयार की और भारत तथा पाकिस्तान के नेताओं ने उस पर हस्ताक्षर किए। यह हृदय-परिवर्तन का संकेत नहीं है। बाहरी दबाव से कभी हृदय परिवर्तन नहीं होता। ताशकंद घोषणा के बाद पाकिस्तान ने नेताओं ने जो कुछ कहा है, उससे यह साफ है कि वे इस घोषणा को अपने मंसूबों को पूरा करने का एक साधन मात्र मानते हैं।

अयुद्ध संधि ही क्यों?

घोषणा की भूमिका के रूप में संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र की दुहाई देकर बल-प्रयोग न करने का तथा सभी प्रश्नों को शांतिपूर्वक सुलझाने के संकल्प का पुनरुच्चार संधि का ही दूसरा रूप है। यह सत्य नहीं है। जहाँ तक संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता और उसके बंधनों का प्रश्न है, वे तो पिछले वर्षों में भी रहे हैं। इसके बाद भी पाकिस्तान ने एक बार नहीं, तीन बार भारत पर आक्रमण कर अपनी बात मनवाने की कोशिश की है। पाकिस्तान की संयुक्त राष्ट्र संघ में कितनी निष्ठा है यह भी सबको ज्ञात है। सुरक्षा परिषद् के आदेश पर युद्ध-विराम प्रस्ताव स्वीकार करने के पूर्व पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने यह धमकी दी थी कि यदि संयुक्त राष्ट्र संघ कश्मीर समस्या का हल 1 जनवरी, 1966 तक नहीं करेगा तो पाकिस्तान उसकी सदस्यता छोड़ देगा। स्पष्ट है कि पाकिस्तान संयुक्त राष्ट्र के बंधनों को वहीं तक मानता है, जहाँ तक वे उसकी स्वार्थ-सिद्धि और विस्तार-लालसा में सहायक होते हैं।

यह कहा जा सकता है कि युद्धवर्जन संधि भी तोड़ी जा सकती है और इसलिए उसकी कोई विशेष अहमियत नहीं है। हिटलर ने रूस के साथ इसी प्रकार की संधि की थी और बाद में उसने बिना किसी हिचकिचाहट के उस पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान के ऊपर इससे अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। जहाँ तक देश की रक्षा का तथा उसकी आक्रमणों से मुक्ति का प्रश्न है, वह काम संधियों से नहीं हो सकता। उसके लिए तो नित्यसिद्ध एवं जागरूक शक्ति ही चाहिए। पाकिस्तान के साथ युद्धवर्जन संधि का इतना ही महत्त्व है कि इस संधि के बाद जब भी वह बल-प्रयोग करने का प्रयत्न करेगा, वह युद्ध माना जाएगा। आज वह बार-बार आक्रमण करता है किंतु विश्व का राजनीतिक रंगमंच कुछ ऐसा

विकृत हो गया है कि उसे आक्रमणकारी घोषित करने से सभी कतराते हैं। युद्धवर्जन संधि का संभवत: पाकिस्तान की जनता पर भी कुछ मानसिक परिणाम हो सकता है। इसलामी राज्य के नाम पर उसे सदैव जिहाद के लिए ललकारा जाता है। जिस कल्पना को लेकर पाकिस्तान के शासक एक मजहबी राज्य बना रहे हैं, उसमें भारत दार-उल-हरब है। भारत के साथ लड़ना उनका मजहबी कर्तव्य समझा जाता है। अयुद्ध संधि में जिहाद के लिए गुंजाइश नहीं रहेगी। एक बार पाकिस्तान की जनता इस घृणा के वातावरण से बाहर निकलकर सोच सके तो फिर उनको अलग रहने की भूल सहज समझ में आ सकेगी।

पाकिस्तान के नेताओं ने वहाँ की जनता को कश्मीर के लिए लड़ने के लिए तैयार किया है। यदि उन्होंने युद्धवर्जन संधि कर ली तो फिर यह मजहबी जुनून बेकार हो जाएगा।

युद्धवर्जन संधि का पाकिस्तान की चीन के साथ साँठगाँठ के साथ भी मेल नहीं बैठता। चीन तो युद्ध को अनिवार्य मानता है तथा संपूर्ण एशिया को युद्ध की भट्ठी में झोंक देने की योजना बना रहा है। पाकिस्तान तथा चीन दोनों ही भारत के प्रति घृणा तथा विस्तारवादी मंसूबों में साझेदार हैं। यदि पाकिस्तान एक बार भारत के साथ युद्धवर्जन संधि कर लेता है तो फिर चीन और पाकिस्तान के बीच दरार पड़ सकती है। पाकिस्तान यह कभी भी सहन नहीं कर सकता, इसीलिए यह अयुद्ध संधि के लिए राजी नहीं हुआ और न आगे कभी राजी होगा।

कूटनीतिक पराजय

भूतकाल के अनुभवों और वर्तमान के ठोस तथ्यों को भुलाकर भावी सुनहले सपने देखनेवाले ताशकंद घोषणा को भारत-पाक संबंधों में नहीं, विश्व की राजनीति में एक नया मोड़ कहकर मनमोदक खा रहे हैं। कल्पना-लोक में विचरनेवालों ने जो नीतियाँ पिछले 18 वर्षों में बनाईं, उनका कड़वा फल हम आज भोग रहे हैं। जब भारत-पाक संघर्ष हुआ तो दुनिया में कोई हमारा साथ देनेवाला नहीं निकला। हिंदुस्तान टाइम्स ने 23 अक्तूबर, 1965 के अंक में संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा की आम बहस का विश्लेषण देते हुए बताया कि विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा दिए गए 110 भाषणों में से 65 देशों ने भारत-पाक संघर्ष का उल्लेख किया। इनमें से 63 ने संघर्ष पर चिंता तथा आपसी बातचीत से विवाद को हल करने की सदाशा प्रकट करते हुए भारत और पाकिस्तान के बीच तटस्थता का रुख़ प्रकट

किया। 19 देशों ने भारत के विरुद्ध वक्तव्य दिए। इनमें से 11 अरब देश थे तथा शेष 8 में अल्बानिया, पुर्तगाल, ईरान, तुर्की, सोमालिया, माली, रुआंडा तथा उगांडा थे। 3 अन्य देशों ने अप्रत्यक्ष उल्लेख किया। भारत के पक्ष का समर्थन करनेवाला कोई नहीं था।

विदेश-नीति का खोखलापन

हमारी इस अकेलेपन की नीति का मुख्य कारण यही है कि हमारी विदेश नीति अयथार्थवादी रही है। उसने कोरे सिद्धांतों और नारों का सहारा लिया है। दूसरे, दुनिया के किसी भी देश को विश्वास नहीं कि हम जो बात कह रहे हैं, उस पर डटे रहेंगे। कश्मीर को हम अपनी स्वतंत्रता, प्रभुता और प्रादेशिक अखंडता का प्रश्न बताते हैं किंतु दूसरी ओर उसके बारे में तरह-तरह के सुझावों पर विचार और वार्त्ता भी करते हैं। सुरक्षा परिषद् से भारत के बहिर्गमन का समाचार देते हुए हिंदुस्तान टाइम्स के संवाददाता ने दिनांक 27 अक्तूबर के अंक में लिखा था, ''नई नीति का मंतव्य उस पुरानी परंपरा को तोड़ना है, जिसके अनुसार जब भी पाकिस्तान या सुरक्षा परिषद् का कोई भी सदस्य चाहता है, हमें कश्मीर के आंतरिक प्रश्न पर विवाद में घसीट लेता था। अब आशा की जाती है कि नई दिल्ली के इस कथन में कि ''कश्मीर की घटनाएँ हमारा आंतरिक मामला है तथा व्यवहार में उस पर जब भी किसी ने कहा तो बातचीत करने के बीच जो विरोध है, वह समाप्त हो जाएगा।'' दुर्भाग्य है कि यह आशा ताशकंद में फलवती नहीं हो पाई।

पाकिस्तान के साथ संघर्ष में विजय के कारण विश्व में हमारी कुछ प्रतिष्ठा बढ़ी थी। फलतः धीरे-धीरे अनेक देश हमारे पक्ष को समझते जाते थे। विभिन्न संसदीय शिष्टमंडलों के अनुभव काफ़ी आशाजनक थे, यहाँ तक कि ब्रिटेन के विदेश सचिव श्री माइकल स्टुअर ने संयुक्त राष्ट्र में 8 अक्तूबर को यह माना कि कश्मीर के बारे में भारत के तर्कों में भी काफ़ी बल है। श्री शास्त्री ने गुरुद्वारा बँगला साहब में भाषण देते हुए कहा था कि इस बार दुनिया को हमारी बात सुननी ही पड़ेगी। और दुनिया हमारी बात सुनती भी जा रही थी। धीरे-धीरे हमारी ओर आती भी। पर हुआ यही—

बड़े ग़ौर से सुन रहा था ज़माना,
पर तुम्हीं सो गए दास्ताँ कहते-कहते।

ताशकंद घोषणा से कूटनीतिक क्षेत्र में हमारा क़दम पीछे हटा है। हमारी

फौजों के हाजी पीर और टिथवाल से पीछे आने के साथ-साथ हम भी दुनिया की राजनीति में पीछे आ रहे हैं। ताशकंद घोषणा से हमारे समर्थकों के मन में हमारे बारे में संदेह पैदा होगा। हमारे विरोधी जो निराश और हताश हो चले थे, फिर से आशान्वित होंगे। हमने रणक्षेत्र की जीती हुई लड़ाई शांति वार्त्ता में गँवा दी।

रूस की पंचायत

ताशकंद घोषणा में यदि किसी को लाभ हुआ है तो वह पाकिस्तान और रूस को। पाकिस्तान तो सबकुछ करके वहीं आ पहुँचा, जहाँ वह 5 अगस्त के पहले था। झाड़-पोंछकर वह फिर से मैदान में उतरने के लिए तैयार हो जाएगा। रूस ने एशिया ही नहीं, विश्व में पंच बनने की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। यही कारण था कि उसने अपना सबकुछ दाँव पर लगाकर हमें दबाया और ताशकंद घोषणा पर हस्ताक्षर करवाए। आज जो यह कह रहे हैं कि उनके ऊपर कोई दबाव नहीं पड़ा, वे सत्य को झुठला रहे हैं। संभवत: राजनीति इसी प्रकार की बेशर्मी की माँग करती हो। पर देश हित का यह तकाजा नहीं है। हो सकता है कि परिस्थितियों ने इस दबाव के आगे झुकने को मजबूर कर दिया हो। अगर मजबूरी का अहसास होगा तो उसको दूर करने का रास्ता निकल सकता है। मगर भुलावे डालने से हम अपनी कमजोरी को कभी समाप्त नहीं कर पाएँगे।

समर्थक कौन?

भारत में ताशकंद घोषणा का वे ही समर्थन कर रहे हैं, जो या तो मास्को से इशारा लेकर अपनी नीति बनाते हैं या जो भारत में रहकर पाकिस्तान के ही पक्ष में प्रचार करते हैं। इन तत्त्वों ने अब भारत से उदारता के नाम पर और भी बलिदान करने की माँग की है। अब चीन के साथ भी इसी प्रकार से बिना शर्त बात करने के प्रस्ताव किए जा रहे हैं। यदि इनकी बात मान ली गई तो भारत अपनी भूमि और प्रतिष्ठा दोनों से हाथ धो बैठेगा। यह नहीं होने दिया जाएगा।

हमें बिचौलिए नहीं चाहिए

जो लोग सोचते हैं कि ताशकंद से शांति की नींव रखी गई है, वे धोखे में है। इससे भावी युद्ध के बीज बोए गए हैं। ताशकंद घोषणा से भारत और पाकिस्तान निकट नहीं आएँगे; उनके बीच में मित्रता और एकता नहीं होगी, बल्कि वे और दूर जाएँगे। आज जो कुछ दिख रहा है, वह अस्थायी है, जिनकी ऐसी धारणा है कि

ताशकंद से पाकिस्तान चीन के चंगुल से निकल आएगा, उनको भी निराशा ही हाथ लगेगी। भारत और पाकिस्तान के बीच जब तक कोई भी तीसरी ताक़त रहेगी, वे निकट नहीं आ सकते। अंग्रेज़ सदा बिचौलिए का स्वाँग भरते रहे तथा हिंदू और मुसलमान अलग होते गए। अंग्रेज़ों के जाने के बाद अमरीका ने भारत-पाक के बीच मध्यस्थता का काम करने की कोशिश की। इससे पाकिस्तान की हठधर्मी को बढ़ावा मिला। आज रूस वही काम कर रहा है। सत्य तो यह है कि आपस में मिलकर मामले सुलझाने की सलाह देनेवाले ही अपनी टाँग बीच में अड़ाकर मामला बिगाड़ते हैं। यदि दुनिया के ये सलाहकार और दोस्त भारत-पाक मामले में सच में तटस्थ हो जाएँ तो भारत और पाक की जनता अपने हितों को पहचानकर एक होकर सभी समस्याओं का समाधान कर सकेगी।

ताशकंद घोषणा ठुकरा दो!

'ताशकंद घोषणा' भारत की विवशता और पराबलंविता का प्रतीक है। यह भारत के पराक्रम पर पानी फेरनेवाला अभिलेख है। इससे हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। हमारे इतिहास के एक स्वर्णिम अध्याय का पटाक्षेप इतना कालिमामय होगा, इसका अनुमान भी नहीं हो सकता था। भारत कूटनीति में इतना कच्चा निकलेगा, यह कल्पना भी नहीं थी। भारत की स्वतंत्रता, अस्मिता, पराक्रमशीलता, प्रादेशिक अखंडता तथा प्रजातंत्र इसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे। शास्त्रीजी और कोसीजिन के बीच क्या बात हुई, यह किसी को मालूम नहीं। शास्त्रीजी गए और उनके साथ ही ताशकंद घोषणा भी चली गई। जो आज शास्त्रीजी का नाम लेकर इस अपमानजनक समझौते को देश के मत्थे मढ़ना चाहते हैं, वे वास्तव में शास्त्रीजी और देश दोनों के साथ अन्याय कर रहे हैं। 'जय जवान' का नारा भारत के कोटि-कोटि कंठों से गूँजा है। आज वे ताशकंद के स्वर से अपना गला नहीं रुँधने देंगे। 16 अगस्त, 1965 को भारत ने करवट ली थी। उसका पुरुषार्थ और पराक्रम जागा था। अब कोई कितनी ही लोरियाँ गाए, कितनी ही मोहनी माया चले, उसे सुला नहीं पाएगा।

जय भारत!

—पुस्तक, फरवरी 1966



6

जनसंघ किसी संस्था का विकल्प नहीं वरन् राष्ट्रीय आंदोलन है

उत्तर प्रदेश जनसंघ प्रतिनिधि सभा का त्रिदिवसीय सम्मेलन मुरादाबाद में दिनांक 10 फरवरी, 1966 आर्य समाज के मैदान में प्रदेश प्रधान श्री गंगारामजी तलवार की अध्यक्षता में संपन्न हुआ, जिसमें प्रदेश के सभी ज़िलों से आए हुए सात सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस सम्मेलन का उद्‌घाटन जनसंघ के अखिल भारतीय मंत्री श्री नानाजी देशमुख ने किया। दीनदयालजी का भाषण।

भारतीय जनसंघ के उद्‌देश्यों में यह उल्लेख किया गया है कि हम भारतीय राष्ट्र को भारतीय संस्कृति एवं मर्यादाओं के आधार पर एक जागरूक, प्रगतिशील, सशक्त एवं समृद्ध राष्ट्र के नाते खड़ा करना चाहते हैं। भारतीय जनसंघ अन्य राजनीतिक दलों से जहाँ भिन्न है, वह है जनसंघ की भारतीय मर्यादाओं पर आस्था। हम अपने देश को केवल राजनीतिक दृष्टि से ही प्रजातंत्र नहीं बनाना चाहते अपितु हम तो इसे सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र बनाना चाहते हैं, जिससे यहाँ पर जन्मा मानव विश्व के विकास में योगदान कर सके। हमें इस कार्य को पूर्ण करने के लिए अपनी प्रकृति को समझना होगा। इस प्रकृति को पहचानकर उसके अनुरूप ही व्यवहार करना होगा, तभी हमारे देश की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ कल्याणकारी ढंग से सुलझ सकेंगी।

राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है—स्वतंत्रता केवल राजनीतिक ही नहीं अपितु आर्थिक, मानसिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी होनी चाहिए। हम देखें तो पता चलेगा कि राजनीतिक दृष्टि से भले ही हम स्वतंत्र हों, पर अनेक विवशताएँ हमारे सामने खड़ी हैं। ताशकंद समझौता हमने इन्हीं विवशताओं में पड़कर किया।

पाकिस्तान से युद्ध के समय अमरीका ने हमारी आर्थिक मजबूरी को युद्ध रोकने के लिए उपयोग किया। हमें अपनी कृषि योजना को भी निरीक्षण के लिए अमरीका के सामने रखना पड़ा है। अमरीका ने आर्थिक सहायता के लिए शर्तें भी रखी हैं। कुछ देशों ने तो व्यापारिकता के आधार पर ख़रीदे जानेवाले अस्त्रों के द्वारा भी हम पर दबाव डाला है और युद्ध विराम के बाद रूस ने सुरक्षा परिषद् में दिए जानेवाले सहयोग को रोकने का दबाव डालकर शास्त्रीजी से समझौते पर हस्ताक्षर कराए। इस प्रकार हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में हमारी स्वतंत्रता अभी अधूरी है। मानसिक परतंत्रता तो बेहद घर किए हुए है। हम अभी भी अंग्रेज़ी भाषा में बँधे हुए हैं। इतना ही नहीं तो दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में हमने अभी तक भारतीय प्रकृति को प्रकट ही नहीं किया है।

हमें ज्ञान का आदान-प्रदान विश्व के प्रत्येक देश से करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए, पर ऐसा करते समय हमें अपने जीवन-मूल्यों का स्मरण रखना होगा। हमें अपने संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन पर लादे गए बंधनों से शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करनी होगी। भारतीय जनसंघ किसी पार्टी की वैकल्पिक पार्टी मात्र नहीं है वरन् एक नवीन जीवन दृष्टि लेकर चलनेवालों का राष्ट्रीय आंदोलन है। आज देश को राजनीतिक साँठ-गाँठ के आधार पर भानुमती का कुनबा जोड़कर कांग्रेस को अपदस्थ करनेवाले दलों की मनोवृत्ति केवल क्षुद्र स्वार्थ पर आधारित है। इनसे नवीन भारत का उदय नहीं हो सकेगा। जनसंघ राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय आत्मा का साक्षात्कार करनेवाले उन लोगों का आंदोलन है, जो केवल विरोध के लिए नहीं जन्मे हैं, वरन् देश को निर्माण की नई राह पर तीव्र गति से ले जाना चाहते हैं।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 21, 1966



7

क्या कश्मीर मसले पर पाकिस्तान से कोई गुप्त समझौता हुआ है?

दीनदयाल उपाध्याय का लखनऊ में 1 फरवरी, 1966 को दिया वक्तव्य।

ताशकंद समझौते को लागू करने के नाम पर भारत ने तिथवाल, कारगिल और हाजी पीर से फौजें वापस बुलाने का निर्णय लिया है। साथ ही, कश्मीर में फौजों की गिनती घटाकर वापस सन् 1949 के स्तर पर ले जाया जाएगा। रक्षा मंत्री श्री यशवंत राव चौहान ने कहा है कि इससे किसी आपात स्थिति से निपटने की भारत की सामरिक क्षमता में कोई कमी नहीं आएगी। लेकिन हमारा मानना है कि यह भारत की सुरक्षा को गंभीर ख़तरों में डालने जैसा है। कोई एक नहीं, बल्कि कई ताक़तें हैं, जो कश्मीर को भारत से तोड़कर अलग कर देना चाहती हैं। हम इन सबकी तरफ़ से अपनी आँखें नहीं मूँद सकते। पाकिस्तान के रवैये में कोई बदलाव नहीं आया है। ऐसे माहौल में सरकार के ये नुक़सानदेह क़दम सिर्फ़ यह शक जगाते हैं कि कहीं पाकिस्तान से कश्मीर पर कोई गुप्त समझौता तो नहीं हुआ है?

सन् 1949 का समझौता इस आधार पर हुआ था कि पहले पाकिस्तान अपनी सारी फौजें हटाएगा और तथाकथित 'आज़ाद कश्मीर' के सशस्त्र बल को ख़त्म कर देगा। उसके बाद ही भारत कश्मीर में अपनी घोषित सैन्य क्षमता को कम करने का क़दम उठाएगा, ताकि राज्य में क़ानून और व्यवस्था बनी रहे।

अभी का फ़ैसला 1949 के समझौते[1] से पीछे हटना है। ये भारत और पाकिस्तान को बराबर का दोषी मानकर चलता है। अब हमने मान लिया है कि पाकिस्तान अपनी सेनाएँ पाक अधिकृत कश्मीर में रख सकता है। सन् 1949 के समझौते के हिसाब से कश्मीर के किसी भी हिस्से पर पाकिस्तान का कोई हक़ नहीं होता। इस फ़ैसले से हमारे क़ानूनी और न्यायसम्मत अधिकारों पर ही नहीं, हमारे सुरक्षा संबंधी दायित्वों पर भी चोट पहुँचती है।

सरकार के क़दम लगातार पीछे हटाने से कश्मीर मुद्दे पर उसका रुख़ संदेह के कठघरे में खड़ा हो गया है। कश्मीर के भविष्य को लेकर जनता संदेह में है। इन शंकाओं का निराकरण सरकार के प्रवक्ताओं के साहसिक बयानों से किया जा सकता है। भारत सरकार जो कहती है, वही उसका इरादा भी है और वह जम्मू कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग मानती है, इसे साबित करने के लिए सरकार को ठोस क़दम उठाने होंगे।

मेरी सलाह मानें तो धारा 370 को फ़ौरन ख़त्म किया जाना चाहिए और भारत के संविधान को पूरे राज्य में लागू करने का क़दम अभी उठाया जाना एक उचित फ़ैसला होगा। इससे चूकने पर हम यही मानेंगे कि सरकारी बयानबाज़ी सिर्फ़ जनता को भुलावे में रखने के लिए है। अपने पूर्व के अनुभवों से हमने सीख लिया है कि ये कोरे भाषण केवल जनता को बरगलाने के लिए दिए जाते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 27, 1966

□

1. भारत विभाजन के बाद सीमा विवाद को सुलझाने के उद्देश्य से 27 जुलाई, 1949 को कराची में एक समझौता हुआ। इस पर संयुक्त राष्ट्र पर्यवेक्षकों की उपस्थिति में भारतीय सेना प्रमुख सत्यवंत मल्लनाथ श्रीगणेश तथा पाक मेजर जनरल जे. कावथोर्ण ने हस्ताक्षर किया। इसमें जम्मू-कश्मीर के नक्शे पर 'युद्ध विराम रेखा' को रेखांकित किया गया और एन.जे. 9842 को युद्ध विराम रेखा मानते हुए समझौता हुआ था।

8

सावरकर को श्रद्धांजलि

दीनदयालजी का श्री सावरकर की मृत्यु पर शोक संदेश।

'जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी रहे श्री सावरकर का निधन हो गया है। श्री सावरकर का जीवन दुनिया भर के स्वतंत्रता सेनानियों के लिए एक प्रेरणास्रोत रहेगा।'

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, फरवरी 27, 1966



9

सावरकर नहीं रहे : सावरकर अमर रहें

सन् 1933 की गरमियों की छुट्टी का दौर था, जब पहली बार मेरा श्री विनायक दामोदर सावरकर[1] के लेखन से परिचय हुआ। परीक्षाओं के बाद मैं अपने चाचा के पास भरतपुर में ठहरा था। एक शाम जब मैं रेलवे प्लेटफार्म पर टहल रहा था, तभी मुझे चार हवलदारों के बीच जंजीरों से जकड़ा एक व्यक्ति दिखा। हवलदारों में से एक मेरा परिचित था। इसका फ़ायदा उठाते हुए मैंने क़ैदी से बात कर ली। पता चला कि वह आजीवन कारावास की सजा पाया एक क्रांतिकारी था। उस वक्त उसे भरतपुर से उत्तर प्रदेश की किसी ज़ेल में ले जाया जा रहा था।

शुरुआती औपचारिक बातचीत के बाद ही क़ैदी ने मुझसे सीधा प्रश्न पूछ लिया : 'क्या तुम्हें आज़ादी चाहिए?' 'क्यों नहीं ?' मैंने जवाब में प्रश्न किया और साथ ही कहा, 'क्या देश में कोई है, जिसे आज़ादी नहीं चाहिए?'

वो गांधीजी के जिक्र से बहुत प्रसन्न नहीं हुए। उनका कहना था कि गांधीजी के तरीक़े आज़ादी पाने के सही तरीक़े नहीं हैं। आज़ादी छीनकर ली जानेवाली चीज़ है, न कि भीख में माँगी जाने की। उन्होंने बताया कि कैसे भारत ने सन् 1857 में स्वतंत्रता संग्राम छेड़ा था, मगर नाकामयाब रहे। जब उन्होंने 1857 के विद्रोह को स्वतंत्रता संग्राम कहा तो मुझे सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। हमें इतिहास की किताबों में पढ़ाया गया था कि वो महज सिपाहियों का एक विद्रोह था। मैंने उन्हें

---

1. विनायक दामोदर सावरकर (28 मई, 1883) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रिम पंक्ति के तेजस्वी सेनानी, प्रखर राष्ट्रवादी नेता, चिंतक, सिद्धहस्त लेखक, कवि, ओजस्वी वक्ता तथा दूरदर्शी राजनेता थे। हिंदुत्व को विचारधारा के रूप में विकसित करने का बड़ा श्रेय सावरकर को जाता है। इनकी मृत्यु 26 फरवरी, 1966 को बंबई में हुई।

ऐसा ही बताया, 'यह इतिहास नहीं', उन्होंने कहा, 'ये तो सिर्फ़ उनकी (ब्रिटिश हुक्मरानों) सुनाई कहानियाँ हैं। और जैसा कि तुम जानते हो, उनकी कहानी हमारी कहानी से अलग होगी।'

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने मुझे वीर सावरकर और उनकी क्रांतिकारी किताब 'भारत का प्रथम स्वातंत्र्य समर' के बारे में बताया और मुझे उसे पढ़ने को कहा। जब मैंने पूछा कि यह किताब मुझे कहाँ मिल सकती है तो उन्होंने बताया कि यह भारत में प्रतिबंधित है। साथ ही उन्होंने चोरी-छिपे मुझे यह किताब भिजवाने का वादा भी किया।

शायद किन्हीं कारणों से वो सज्जन अपना वादा पूरा नहीं कर पाए। किताब पढ़ने की मेरी जिज्ञासा शांत नहीं हुई और मैं किताब ढूँढ़ने में लगा रहा। कई साल बाद मुझे उस किताब के कुछ टाइप किए हुए पन्ने मिल पाए।

सावरकर का कानपुर आगमन

इस घटना ने मेरे मन में सावरकर के लिए भी एक रुचि जगा दी थी, और जब वो हिंदू महासभा के प्रमुख के तौर पर सन् 1938 में उत्तर प्रदेश के दौर पर आए, जो उस दौर में आगरा और अवध का संयुक्त प्रांत कहलाता था, तो वो कानपुर भी आए। वहाँ आर.एस.एस. की शाखा शुरू ही हुई थी, हम सावरकरजी को भी अपनी शाखा पर आमंत्रित करके उनका एक भाषण करवाना चाहते थे। लेकिन महासभा के व्यवस्थापक की इच्छा नहीं थी कि सावरकरजी का किसी भी राष्ट्रीय चीज़ से कोई लेना-देना हो। 'वो यहाँ आ रहे हैं', उन्होंने बताया, 'हिंदुओं को अपना संदेश देने के लिए हिंदू महासभा को किसी भी राष्ट्रीय आंदोलन से कोई लेना-देना नहीं।' हमें काफ़ी निराशा हुई। कैसे एक महान् क्रांतिकारी, जिसने कभी ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने की योजना बनाई थी, मेरे राष्ट्रीय आंदोलन से खुद को अलग देखता है?

एक छात्र, जो बाद में कम्युनिस्ट हो गया, उसने बताया कि सावरकर अब क्रांतिकारी नहीं रह गए थे। इसी कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें आज़ादी दी थी और कांग्रेस में शामिल होने के बदले उन्होंने हिंदू महासभा में शामिल होना इसलिए स्वीकारा था, ताकि राष्ट्रीय आंदोलनों को बिखराया जा सके। ये कम्युनिस्ट प्रचार काम कर जाता, लेकिन हमें पक्की सूचना थी कि सावरकरजी की आर.एस.एस. में गहरी रुचि है।

इसलिए हम लोगों ने तय किया कि हम सावरकरजी के कानपुर पहुँचते ही उनसे संपर्क करेंगे। इसे संभव करने के लिए हम लोग हिंदू महासभा में स्वयंसेवकों के तौर पर शामिल हो गए। हम में से कुछ उस जगह भी काम पाने में कामयाब हो गए, जहाँ सावरकरजी ठहरे हुए थे। डॉ. हेडगावर के एक क़रीबी दादा राव परमार्थ[2] की वजह से भी हमारा काम और आसान हो गया। वे सावरकरजी की यात्रा में उनके साथ ही सफ़र कर रहे थे। उन्हें पता था कि कानपुर में आर.एस.एस. की एक शाखा है, इसलिए उन्होंने सिर्फ़ हमारा निवेदन ही नहीं माना, बल्कि इस पूरे कार्यक्रम में अपनी गहरी रुचि भी दिखाई।

उनके द्वारा हिंदू राष्ट्र का पुनरुत्थान

रात के क़रीब ग्यारह बजे यह तय हुआ कि अगली सुबह सात बजे वे आर.एस.एस. की शाखा पर आएँगे। शाखा के जो कुछ स्वयंसेवक थे, वे पिछली पूरी रात और पूरे दिन काम करके थक चुके थे। लेकिन उन्होंने अगली पूरी रात-दिन काम किया और फिर कार्यक्रम बहुत सफल हुआ। वीर सावरकर हमारे कार्यक्रम में आ रहे हैं, इस बात से ही हमारे स्वयंसेवकों में इतना उत्साह भर गया था कि उन्होंने चमत्कार कर डाला। अपने छोटे से भाषण में सावरकरजी ने 1857 के दौरान कानपुर के इतिहास पर भी बात की। पूरे भाषण का मुद्दा था कि 'वो प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था।'

वे सैकड़ों लोग, जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता की राह में अपनी कुर्बानियाँ दीं, उन सबके नाम सितारों से भी ऊपर सुशोभित हैं। पिछले कुछ दशकों में जिन नामों को हमारे सामने क्रांतिकारियों के तौर पर परोसा गया है, वो इनके सामने कहीं नहीं ठहरते। सावरकर किसी प्रतिक्रिया में देशभक्त, क्रांतिकारी नहीं बने थे। उनके पास राष्ट्रवाद की अपनी सकारात्मक सोच थी। उनके लिए आज़ादी के मायने इस राष्ट्र की आत्मा की अभिव्यक्ति के मौक़े थे। इतिहास के प्रति निष्ठा दिखाते हुए उन्होंने इस राष्ट्र को 'हिंदू राष्ट्र' की संज्ञा दी। वे सावरकर ही थे, जिन्होंने हिंदू राष्ट्र की वैज्ञानिक परिभाषा दी। डॉ. हेडगेवार और सावरकर, समकालीन इतिहास के वो दो नाम हैं, जिन्होंने अथक श्रम करके हिंदू राष्ट्र की परिकल्पना को ब्रिटिश जालसाजियों से बाहर निकाला और कांग्रेस के सपनों की दुनिया से यथार्थ के धरातल का मार्ग दिखाया।

---

2. दादाराव पारमार्थ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रारंभिक प्रचारकों में से एक थे। इन्होंने मद्रास केंद्र से दक्षिण भारत में संघ का कार्य प्रारंभ किया था।

श्री सावरकर सच्चे अर्थों में एक क्रांतिकारी थे। वे कट्टरवाद की सीमा तक अहिंसा के पुजारी नहीं थे। वे किसी बम और बंदूक की नाल से निकलनेवाली क्रांति के भी हिमायती नहीं थे। वे स्वतंत्रता के पुजारी थे, जिनके लिए व्यावहारिक तरीक़े मायने रखते थे। एक क्रांतिकारी होने के साथ-साथ वे एक सुधारक भी थे। जिन्हें हिंदुत्व से घृणा होती हो, उन्हें सावरकर का लिखा ज़रूर पढ़ना चाहिए। उन्हें समझ आएगा कि असली हिंदुत्व क्या है। उनके गतिशील विचार निस्संदेह प्रभावित करेंगे। कोई भी वरिष्ठ राजनीतिक कार्यकर्ता ऐसा नहीं है, जिसने सावरकरजी से प्रेरणा न ली हो।

सावरकरजी में एक साथ एक क्रांतिकारी, एक साहित्यकार और एक सुधारक के गुण सिमट आए थे। वे बासुदेव बलवंत फड़के,[3] लोकमान्य तिलक और दयानंद सरस्वती का मिला-जुला रूप थे। मराठी साहित्य में सावरकरजी का कार्य अतुलनीय है।

उनका हाल ख़ान अब्दुल गफ्फार ख़ान सा हुआ

यह बड़े खेद का विषय है कि स्वतंत्र भारत ने कभी सावरकरजी के साथ न्याय नहीं किया। उन्हें सिर्फ़ किनारे ही नहीं किया गया, कई बार तो उनसे घृणा भी की गई। अगर उन्हें ज़ेल में न डालने का एकमात्र अंतर छोड़ दिया जाए तो उनकी दशा वही हुई, जो ख़ान अब्दुल गफ्फार ख़ान की पाकिस्तानी सरकार ने की।[4] राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का शोक संदेश बस खानापूर्ति है। केंद्रीय गृह मंत्री नंदा का तब हज़ार रुपए भेजना, जब वे अपनी मृत्युशैया पर थे, तो बस जनता को छलने की

---

3. वासुदेव बलवंत फड़के (1845-1883) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के आद्य क्रांतिकारी थे। उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए लोगों को जाग्रत् किया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सशस्त्र मार्ग का अनुसरण किया। महाराष्ट्र की कोली, भील तथा धांगड जातियों को एकत्र कर 'रामोशी' नाम का क्रांतिकारी संगठन खड़ा किया। वे ब्रिटिश काल में किसानों की दयनीय दशा को देखकर विचलित हो उठे थे। उनका दृढ विश्वास था कि 'स्वराज' ही इस रोग की दवा है।

4. ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान 'सीमांत गांधी' (1890-1988) सीमाप्रांत और बलूचिस्तान के महान् राजनेता थे। इन्होंने भारत के विभाजन का विरोध किया था, मूलतः ये अखंड भारत के पक्षधर थे। विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान से उनकी विचारधारा सर्वथा भिन्न थी। पख़्तून अल्पसंख्यकों के अधिकारों और पाकिस्तान के भीतर स्वायत्तशासी पख़्तूनिस्तान के लिए इनका आंदोलन आजीवन जारी रहा। अपने सिद्धांतों के लिए इन्हें भारी क़ीमत चुकानी पड़ी, ये कई वर्षों तक ज़ेल में रहे और उसके बाद इन्हें अफ़ग़ानिस्तान में रहना पड़ा। सन् 1988 में पाकिस्तान सरकार ने पेशावर में उनके घर में नज़रबंद कर दिया, जहाँ इनकी मृत्यु हो गई।

चाल भर है। फिर भी सावरकरजी ने किसी के प्रति वैमनस्य नहीं पाला। अपने अंतिम दिनों तक वे राष्ट्रसेवा में ही जुटे रहे।

जब 1939 में द्वित्तीय विश्वयुद्ध छिड़ने पर उन्होंने भारत के युवाओं से सेना में शामिल होने को कहा, तो कुछ लोग पसोपेश में थे। लेकिन युद्ध के नतीज़ों ने सावरकरजी को सही साबित किया।

श्री सावरकरजी का जीवन विश्व भर के सभी स्वतंत्रता प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। हमें उनके आदर्शों की राह पर चलना है और हिंदुस्तान को प्रत्येक अर्थ में एक बड़ी शक्ति और महान् राष्ट्र के रूप में आगे लाना है। हज़ारों ने इनकलाब ज़िंदाबाद के नारे लगाए होंगे, मगर उन्होंने एक इनकलाबी का जीवन जिया और क्रांति को ज़िंदाबाद कर दिया।

डॉ. हेडगेवार की मृत्यु पर आर.एस.एस. को लिखे अपने शोक संदेश में सावरकरजी ने लिखा था, 'डॉ. हेडगेवार नहीं रहे, डॉ. हेडगेवार अमर रहें!' आज हम भी वही कहना चाहेंगे, 'सावरकर नहीं रहे, सावरकर अमर रहें।'

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 6, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



10

राजनीतिक दलों की बैठक बुलाई जाए

हाल के खाद्य संबंधी आंदोलनों ने केरल और पश्चिम बंगाल में व्यापक पैमाने पर अव्यवस्था और ग़ैरक़ानूनी हालात पैदा कर दिए हैं। संपत्ति का भी काफ़ी नुक़सान हुआ है। इसे पीड़ित और भूखे लोगों का ग़ैर-ज़िम्मेदाराना बरताव कहकर नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इस बड़े पैमाने पर हुई हिंसा में अवश्य कोई षड्यंत्र छुपा हुआ है।

यह तो जाहिर सी बात है कि इन आंदोलनों के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ था। वे अव्यवस्था फैलाकर जनता का विश्वास शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक तरीक़ों से तोड़ना चाहते हैं। कम्युनिस्टों ने अपना अमृतसर थीसिस[1] त्याग दिया है और फिर से एक हिंसक क्रांति की राह पर चल निकले हैं। उनका विघ्नकारी बरताव अभी की पश्चिम बंगाल विधानसभा में देखा जा सकता है, लगभग यही हाल राजस्थान में भी है। मौजूदा सरकार की जन-विरोधी खाद्य नीति के ख़िलाफ़ जनता की उचित शिकायतें होने पर भी किसी दल को मौक़े का फ़ायदा व्यापक हिंसा और अराजकता फ़ैलाने के लिए नहीं दिया जा सकता। अगर इसे बरदाश्त किया गया तो हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक गंभीर ख़तरा उत्पन्न हो जाएगा।

जो भी व्यक्ति या दल ऐसी अराजक और हिंसक गतिविधियों में लिप्त हैं, उनके ख़िलाफ़ क़दम उठाने के अनुरोध सहित मेरी प्रधानमंत्रीजी को यह भी सलाह है कि वे सभी दलों की बैठक बुलाएँ और एक समिति का निर्माण करें। समिति

1. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की पाँचवीं (विशेष) कांग्रेस अमृतसर में 1958 में हुई थी। इसी सत्र में पार्टी संविधान की प्रस्तावना से 'क्रांतिकारी हिंसा' शब्दावली को हटा दिया गया था।

राष्ट्रीय एकता समिति के आधार पर बने और देश में आंदोलनों और विरोध प्रदर्शनों के लिए दिशा निर्देश तय करे। किसी भी लोकतंत्र में विरोध प्रदर्शन सरकार की नीतियों को प्रभावित करने के उपाय हैं। लेकिन आज जहाँ सरकारें एक तरफ़ तो शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर ध्यान ही नहीं देतीं, वहीं दूसरी तरफ़ कुछ दल ऐसे भी हैं, जो इसकी आड़ में ग़ैर-ज़िम्मेदाराना बरताव करते हैं। वे सब लोग जो भारत के लोकतंत्र की सुरक्षा चाहते हैं, उन सब को अपने मतभेद भुलाकर साथ आना चाहिए और इन अराजक, ग़ैर-लोकतांत्रिक शक्तियों के ख़िलाफ़ खड़े होना चाहिए।

जालंधर में भारतीय जनसंघ का सम्मलेन सन् 1966 के अप्रैल 2, 3 और 4 को किया जाएगा। पंजाब के अलावा भी अलग-अलग प्रांतों से क़रीब पाँच हज़ार लोगों के आने की संभावना है। पंजाब से भी क़रीब इतने ही लोग आएँगे। इस साल के दौरान जनसंघ के सांगठनिक कार्य में महत्त्वपूर्ण प्रगति दर्ज़ की गई है। सदस्यता भी चार लाख से बढ़कर बारह लाख पर पहुँच रही है और समितियाँ भी क़रीब पच्चीस हज़ार हो जाएँगी। देश के आर्थिक और राजनीतिक हालात का जायजा लेने के अलावा हम पार्टी की आगे की रणनीति और चुनाव की योजनाओं पर भी चर्चा करेंगे।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 13, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



11

भारतीय जनसंघ पंजाब समस्या के सामूहिक हल के पक्ष में?

कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव ने पूरे पंजाब प्रांत में खलबली मचा दी है। पूरे प्रदेश में व्यापक असंतोष की भावना है। लोग ठगा हुआ सा महसूस कर रहे हैं। उनके साथ अन्याय हुआ है। वे इसे सर झुकाकर स्वीकारनेवाले नहीं हैं। कांग्रेस कार्य समिति ज़रूर दबाव में आ गई है, मगर लोग दबनेवाले नहीं हैं। अकालियों और कांग्रेस के केंद्रीय नेतृत्व के बीच हुई साँठ-गाँठ के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। हाल के विरोध प्रदर्शन, हड़तालें लोगों की अशांति की संयमित और हल्की अभिव्यक्ति हैं।

श्री यज्ञदत्त शर्मा[1] का उपवास अगर जारी रहा तो उनकी हालत और बिगड़ेगी। अगर केंद्र सरकार समयानुकूल फ़ैसले लेकर लोगों को आश्वस्त नहीं करेगी तो हालात क़ाबू से बाहर हो जाएँगे।

मेरी सलाह है कि प्रधानमंत्री यह घोषित करें कि कांग्रेस कार्यसमिति का प्रस्ताव मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। इससे विरोध की आँच पर पानी पड़

---

1. यज्ञदत्त शर्मा (1922-1996) पंजाब जनसंघ के नेता थे। इन्होंने चौथी लोकसभा में अमृतसर का तथा छठी में गुरदासपुर का प्रतिनिधित्व किया था। बाद में उड़ीसा के राज्यपाल (1990-93) रहे। मूलत: पेशे से एक आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। इन्होंने 1945-46 में बंगाल के भीषण अकाल और विभाजन के समय शरणार्थियों की चिकित्सा सहायता के लिए पंजाब के डॉक्टरों का नेतृत्व किया था।

जाएगा। उन्हें एक सर्वदलीय बैठक बुलाकर सबके मंतव्य सुनने चाहिए। सारे अंतर्विरोध दूर करने चाहिए। सहभागिता से लिए गए फ़ैसले थोपे गए निर्णय से हमेशा बेहतर होते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, मार्च 20, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



12

चतुर्थ योजना

उद्देश्य और संभावनाएँ

31 मार्च, 1966 को तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि समाप्त हो गई। एक अप्रैल से चौथी योजना का काल प्रारंभ हो गया है। किंतु अभी तक योजना का कुछ भी पता नहीं। योजना आयोग से जो संकेत मिले हैं, उनके अनुसार योजना के प्रारूप को तैयार होने में अभी कुछ महीने और लग जाएँगे। प्रारूप पर विचार होने के बाद योजना का असली रूप शायद अगले साल तक सामने आ जाए। इस रूप में उसे योजना के स्थान पर प्रतिवेदन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

चौथी योजना के प्रारूप के संबंध में एक स्मृतिपत्र आयोग ने अक्तूबर 1964 में प्रकाशित किया था। तदोपरांत सितंबर 5 और 6 को राष्ट्रीय परिषद् की बैठक में चतुर्थ योजना के रूप और आकार के संबंध में कुछ निर्णय हुए किंतु वे अंतिम नहीं कहे जा सकते। कारण, पाकिस्तान के साथ संघर्ष और विदेशी सहायता के रुक जाने से ऐसी स्थिति पैदा हो गई थी, जिसमें संपूर्ण योजना पर पुनर्विचार आवश्यक था। अत: प्रधानमंत्री को यह अधिकार दिया गया था कि वे योजना में आवश्यक हेर-फेर कर लें। तदनुसार प्रधानमंत्री ने आयोग को परिवर्तन का आदेश भी दिया था। किंतु इसके पहले कि इन संशोधनों के साथ चौथी योजना कुछ निश्चित रूप ले पाती, ताशकंद में श्री लाल बहादुर शास्त्री का देहांत हो गया। श्री शास्त्री के आयोजन और योजना के संबंध में कुछ अपने विचार थे। वे उसे अधिक व्यावहारिक व स्वावलंबी बनाना चाहते थे। समय पर उन्होंने इन विचारों को प्रकट भी किया था। किंतु युद्धजन्य परिस्थिति के पूर्व तक वे आयोग को अपनी बात मनवा नहीं

पाए थे। सितंबर में जो स्थिति पैदा हुई, उसमें इन विचारों की तर्कशुद्धता और अनिवार्यता स्पष्ट हो गई थी। आयोग के उप-प्रधान का मन तो नहीं मानता था किंतु वे उनका विरोध भी नहीं कर पाते थे। श्री शास्त्री के निधन, ताशकंद समझौते की मादक हवा, विदेशी सहायता के वादे और संभावनाओं से फिर वह वातावरण बन गया है कि हमारे आयोजक अपने पुराने स्वप्नों को चित्रित करने में कोई हिचक अनुभव नहीं करते। अत: आत्मनिर्भरता, स्वदेशी, मितव्ययिता आदि की बातें अब दकियानूसी और प्रतिगामी दिमाग की उपज समझी जाने लगी हैं। फिर से पुरानी योजना की शराब को नई बोतलों में भरने का उपक्रम चालू हो गया है।

एक वर्षीय छुट्टी योजना

इसके पूर्व कि चौथी योजना अपनी सोलहों कलाओं के साथ पावस की अँधियारी में आभा बिखेरने का प्रयास करे, आयोग ने सन् 1966-67 एकवर्षीय योजना प्रस्तुत की है। इस योजना के अंतर्गत 2,081 करोड़ रुपए के परिव्यय की व्यवस्था की गई है। यद्यपि आयोग ने यह प्रतिपादित किया है कि इस योजना को चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के व्यापक उद्देश्यों और लक्ष्यों की पृष्ठभूमि में ही देखना चाहिए, फिर भी इसका मुख्य उद्देश्य तीसरी योजना की अवधि में उत्पन्न तनावों और समस्याओं का समाधान करना है। हम उसे एक प्रकार से छुट्टी की योजना कह सकते हैं। जो लोग सप्ताह भर काम करके भी अपना काम पूरा नहीं कर पाते, वे छुट्टी के दिन काम करके उसे निबटाने की कोशिश करते हैं। इस योजना को भी इसी रूप में देखना चाहिए और इसी आधार पर उसकी जाँच करने की आवश्यकता है।

अन्न की कमी, औद्योगिक उत्पादन में गिरावट, बढ़ते हुए मूल्य, विदेशी मुद्रा का भारी अभाव आदि की प्रमुख समस्याएँ हैं। इनका मूल कारण तो संपूर्ण नियोजन की व्यूह नीति और ढाँचा है। जब तक वह नहीं बदलता, इन समस्याओं से त्राण नहीं मिलेगा। किंतु तीसरी योजना के कार्यक्रमों और लक्ष्यों के अपूर्ण रह जाने के कारण इन समस्याओं का स्वरूप और गंभीर हो गया है। यदि इस वार्षिक योजना में उन कमियों को पूरा कर लिया गया, तो हो सकता है कि साँस लेने को कुछ जगह मिल जाए।

योजना का प्रयास

योजना में कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई है। उद्योग के क्षेत्र में

इस्पात, भारी इंजीनियरिंग और मशीन निर्माण, खनिज एवं अलौह धातुएँ, तेल की खोज और शोधन तथा उर्वरकों को प्राथमिकता दी गई है। केवल प्रायोजनाओं का समावेश किया गया है, जिन पर अभी तक काम चालू है, जिनके पूरे ब्योरे का विचार हो चुका है, जिनके लिए विदेशी मुद्रा की व्यवस्था के संबंध में वचन प्राप्त हैं तथा जो जल्दी परिणामकारी हो सकती हैं। यदि वास्तव में इन आधारों पर विभिन्न कार्यक्रमों की पूरी जाँच कर ली गई हो तो कोई कारण नहीं कि योजना फलवती न हो। किंतु अभी तक का अनुभव यह है कि आयोग जिन कसौटियों को तय करता है, कार्यक्रमों को स्वीकृत करते समय उनको भूल जाता है। वास्तविक निर्धारण तो राजनीतिक कारणों तथा दबावों के अंतर्गत किया जाता है। चालू वर्ष का अनुभव भिन्न नहीं हो सकता।

कृषि संबंधी नीति

कृषि योजना में नई व्यूह-नीति की घोषणा की गई है। आयोग इस नतीज़े पर पहुँचा है कि कृषि उत्पादन में कमी का कारण किसान का पिछड़ापन नहीं बल्कि साधनों का अभाव है। अतः एक संकलित कार्यक्रम के अंतर्गत किसानों को अच्छी किस्म का बीज, उर्वरक, जंतुनाशक दवाएँ तथा पानी देने की व्यवस्था की जाएगी। आयोग को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने भारत के किसान को पिछड़ा मानना बंद कर दिया, किंतु जिसे नई व्यूह रचना कहा जाता है, वह वास्तव में नई नहीं है। 'पैकेज प्रोग्राम' के नाम से यह कई ज़िलों में पहले से चल रही है। इसमें संदेह नहीं कि यदि किसान के साधनों की कमी को पूरा कर दिया जाए तो कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि हो सकती है किंतु शासन जिन नीतियों को लेकर चल रहा है, उनमें यह संभव नहीं है।

परावलंबन की ओर

केंद्रीय खाद्यमंत्री[1] उर्वरकों तथा नई किस्म के बीज पर बहुत जोर दे रहे हैं। किंतु प्रश्न यह है कि इतनी भारी मात्रा में उर्वरक आएगा कहाँ से? एक वर्ष की अवधि में देश में उर्वरक के कारख़ानों को खोलकर उनके उत्पादन को किसान तक नहीं पहुँचाया जा सकता। तीसरी योजना में नत्रजनीय उर्वरक का लक्ष्य 800 हज़ार मीट्रिक टन रखा गया था, किंतु संभावित उत्पादन का आँकड़ा केवल 300

1. चिदंबरम सुब्रह्मण्यम (1910-2000), केंद्रीय कृषि एवं खाद्य मंत्री थे।

हज़ार मीट्रिक टन है। इसी प्रकार फास्फेटिक उर्वरकों का 400 हज़ार मीट्रिक टन की जगह 150 हज़ार टन तक हो पाएगा। इसके विपरीत इन उर्वरकों की माँग बहुत ज़्यादा है। संयुक्त राज्य अमरीका ने उर्वरक देने का वायदा किया है। यदि इस वायदे के आधार पर भारत का कृषि कार्यक्रम बनाया गया तो पी.एल.- 480[2] के गेहूँ के अनुभव की ही पुनरावृत्ति होगी। प्रारंभ में सन् 1950-57 में अमरीका से गेहूँ का आयात केवल 'बफर स्टॉक' बनाने के लिए किया गया था और उसका अनुमान बीस लाख टन लगाया गया था। किंतु धीरे-धीरे यह आयात बढ़ता गया तथा हमारी अन्न योजना का अनिवार्य अंग बन गया। इस आयात का परिचय भारत के किसान के लिए अलाभकारी रहा है। अब यदि गेहूँ के स्थान पर अथवा यों कहिए कि उसके अतिरिक्त उर्वरक भी हम अमरीका से मँगाने लगे तो हम आत्मनिर्भरता के स्थान पर परावलंबन की एक और कड़ी जोड़ लेंगे।

योजना आयोग के एक सदस्य, श्री वी.के.आर.वी. राव[3] भी इस संबंध में अपनी असहमति प्रकट कर चुके हैं। उनका मत है कि उर्वरक के स्थान पर यदि हम कंपोस्ट और हरी खाद का उपयोग करें तो अधिक उपयोगी रहेगा। यह गाँव-गाँव तैयार की जा सकती है। वितरण की अव्यवस्था से जो समस्याएँ पैदा होती हैं, उनका झगड़ा इसमें नहीं रहेगा। साथ ही उर्वरकों के लिए पानी भारी मात्रा में चाहिए। आज वह सर्वत्र उपलब्ध नहीं है। उर्वरक हर फ़सल के लिए कितना डालना चाहिए, इसका भी पूरा ज्ञान अभी नहीं है। दूरगामी दृष्टि से देखा जाए तो उर्वरकों का अधिक प्रयोग ज़मीन को अनुर्वर बनाने का ही रास्ता है। सिंचाई के छोटे साधनों की ओर तो ध्यान दिया गया है। लगभग एक लाख से ऊपर पंपों में बिजली लगाने की योजना है। आवश्यकता है कि इस ओर अधिक ध्यान दिया जाए।

उद्योगों की वरीयता के विषय में तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता जब तक

---

2. अमरीकी कांग्रेस ने दुनिया भर में खाद्य सहायता प्रदान करने के लिए 'Food For Peace' कार्यक्रम की शुरुआत की, अमरीकी राष्ट्रपति ड्वाइट डी ने 10 जुलाई, 1954 को कृषि व्यापार विकास और सहायता अधिनियम 'Public Law-480' पर हस्ताक्षर किए थे। मुख्यत: अमरीकी कृषि की आर्थिक स्थिरता और कृषि वस्तुओं के अंतरराष्ट्रीय व्यापार का विस्तार ही इसका मुख्य लक्ष्य था। चीन आक्रमण के बाद जब देश को खाद्यान्न अभावग्रस्तता का सामना करना पड़ा, तब तत्कालीन कृषि एवं खाद्य मंत्री सदाशिव कनोजी पाटिल (1898-1981) ने पी.एल. 480 के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमरीका से 6 अरब 7 करोड़ रुपए के गेहूँ-ऋण के लिए समझौता किया था।
3. विजयेंद्र कस्तूरी रंगा वरदराजा राव (1908-1991) प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्री थे। इन्होंने भारतीय संदर्भ में विकास के लिए कृषि को प्राथमिकता देने की बात कही थी।

कि निजी क्षेत्र के संबंध में शासन की नीति स्पष्ट न हो। सार्वजनिक क्षेत्र में उक्त वरीयताएँ ठीक हैं। किंतु शासन की वित्तीय और मौद्रिक नीतियों के फलस्वरूप निजी क्षेत्र में उद्योगों पर प्रतिकूल परिणाम हुआ है। उसे दूर करने की आवश्यकता है। छोटे उद्योगों के विषय में इस योजना में प्रतिगामी पग उठाया गया है। यह हानिकारक होगा।

योजना की कमजोर कड़ी

इस योजना की सबसे कमजोर कड़ी शिक्षा है। इस मद में सन् 1965-66 के 180 करोड़ 13 लाख रुपए की जगह केवल 18 करोड़ 38 लाख का रुपए का प्रावधान है। प्राथमिक शिक्षा पर 60 करोड़ 65 लाख रुपए से काटकर अब केवल 18 करोड़ 64 लाख रुपए की व्यवस्था है। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा पर 33 करोड़ 38 लाख रुपए ख़र्च किया जाएगा। विश्वविद्यालयों पर शिक्षा के लिए अवश्य 22 करोड़ 67 लाख रुपए से बढ़ाकर 35 करोड़ 70 लाख रुपए की व्यवस्था की गई है। शिक्षा का क्रम तो अबाध रूप से चलना चाहिए। यदि उसे बीच में तोड़ दिया गया या कमजोर कर दिया गया तो आगे बढ़ना कठिन हो जाएगा।

मूल्यों की स्थिरता के संबंध में योजना में कुछ भी विचार नहीं किया गया। साधनों को जुटाने की जिस प्रकार व्यवस्था की गई है, उसमें कराधान और विदेशी ऋण ही प्रमुख आधार हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था का भी कुछ अंशों में विचार किया गया है। इससे मुद्रा का अवमूल्यन निश्चित ही होगा। संक्षेप में यह योजना फिर नई दिशा की ओर संकेत नहीं करती। यदि चौथी योजना का आकलन इसी आधार पर किया गया तो भारत की अर्थव्यवस्था और अधिक संकटाकुल होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग में जो लोग प्रभावी हैं, वे व्यावहारिक रूप से तथा क्रांतिकारी परिवर्तन की दिशा में नहीं सोच सकते। बिना इसके आज की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान नहीं की जा सकती।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 8, 1966



13

प्रस्तावित चुनाव विधान पर कुछ विचार

यह लेख पोलिटिकल डायरी पुस्तक, 1971 में 'चुनाव-विधान पर कुछ विचार' शीर्षक के साथ पुनः प्रकाशित हुआ था।

तृतीय आम चुनाव पर अपने प्रतिवेदन में चुनाव आयोग ने देश के चुनाव-क़ानून में संशोधन के लिए अनेक सुझाव दिए हैं। सरकार ने चुनाव-न्यायाधिकरणों को समाप्त कर देने विषयक संस्तुतियों को स्वीकार भी कर लिया है। यदि कोई चुनाव-याचिका हो तो उसे राज्य के उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना चाहिए और उस पर एक स्थायी न्यायाधीश द्वारा विचार किया जाना चाहिए। इस व्यवस्था से याचिका के निर्णय में लगनेवाले समय में कमी हो सकती है, परंतु इसमें दोनों प्रतिनिधियों के ख़र्च में वृद्धि हो जाएगी। उच्च न्यायालयों में भारी काम एवं विचाराधीन प्रकरणों की संख्या को ध्यान में रखते हुए इसमें भी संदेह ही है कि याचिकाओं पर शीघ्र निर्णय हो सकेंगे।

सरकार को अभी अन्य संस्तुतियों पर विचार करना शेष है। ये सुधार सुझाते समय आयोग दो मूलभूत उद्देश्यों से प्रेरित है—चुनाव को सस्ता और निष्पक्ष बनाना और दलों की संख्या कम करना, ताकि अंततः दो दल पद्धति क्रमिक रूप से अस्तित्व में आ जाए। जहाँ तक पहले उद्देश्य का संबंध है, उसके बारे में दो मत नहीं हो सकते। किंतु जहाँ तक दूसरे उद्देश्य का प्रश्न है, चुनाव-क़ानून में किसी प्रकार के संशोधन द्वारा उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। चुनावों को जनता का सही प्रतिनिधित्व करने दीजिए। यदि मतदाता दो से अधिक दलों को मत देता है तो

प्रोक्रस्टिस की शैली में चुनाव के परिणामों को तोड़ने-मरोड़ने की अपेक्षा बहुदलीय शासन की संसदीय प्रणाली को अपनाना ही अधिक अच्छा है।

लोकसभा चुनाव के लिए प्रत्याशियों की प्रतिभूति-राशि को 500 रुपए से बढ़ाकर 1500 रुपए कर देने और विधानसभा के लिए प्रत्याशी की प्रतिभूति-राशि 250 रुपए से बढ़ाकर 750 रुपए कर देने का सुझाव प्रत्याशियों की संख्या में कमी करने के उद्देश्य से दिया गया है। यह उचित नहीं है। यह निर्धन लोगों को चुनावों से डराकर अलग रखने के समान है। इन कृत्रिम उपायों से प्रत्याशियों की संख्या कम नहीं की जा सकेगी। राजनीतिक दलों के सशक्त होने के साथ यह संख्या अपने आप घट जाएगी। अभी भी, जहाँ कोई भी ग़ैर-कांग्रेस दल सशक्त हुआ है, वहाँ बहुकोणीय चुनाव-संघर्षों की संख्या कम रही है।

चुनाव-व्यय को कम करने की दृष्टि से कुछ सुझाव दिए गए हैं। चुनाव-अभियान के लिए कुल समय घटाकर पंद्रह दिन कर दिया जानेवाला है। इससे निश्चय ही व्यय में कुछ कमी होगी। यह भी प्रस्ताव है कि विधानसभा-निर्वाचन-क्षेत्र के लिए उपयोग में लाए जानेवाले मोटर-वाहनों की संख्या तीन तक और संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के लिए छह तक सीमित कर दी जाए। 'एक ही लाठी से सबको हाँकने' की इस व्यवस्था से उन क्षेत्रों में कठिनाइयाँ पैदा होंगी, जहाँ यातायात-सुविधाओं का अभाव है। विरल मानव-वास वाले क्षेत्रों में भी इस प्रतिबंध से उचित चुनाव-अभियान में बाधा पहुँच सकती है। इसके साथ ही, साधन-संपन्न लोगों पर, जिसके पास स्वयं के वाहन हैं, इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने में कठिनाई हो सकती है।

जुलूसों, प्रदर्शनों और बड़े आकार के झंडों तथा प्रचार पटों के उपयोग को भी निषिद्ध ठहराने का एक प्रस्ताव है। राजमार्गों पर चल ध्वनि-विस्तारकों (लाउड स्पीकर) के प्रयोग पर भी प्रतिबंध लगाने के लिए कहा गया है। इन प्रस्तावों से व्यय घटेगा और चुनाव-अभियान में शालीनता भी आएगी। इन्हें स्वीकार किया जा सकता है।

यह सुझाव दिया गया है कि मतदाताओं को ढोने के लिए वाहनों के उपयोग को हस्तक्षेप्य अपराध माना जाना चाहिए। मैं नहीं समझता कि इससे स्थिति में कोई अंतर आएगा। यह व्यापक रूप से विद्यमान भ्रष्ट प्रचलन है। सुझाए गए इस संशोधन से पुलिस अधिकारियों द्वारा परेशान किए जाने का मार्ग प्रशस्त होगा, किंतु

पुलिस दल इस व्यवस्था को क्रियान्वित कराने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इसके स्थान पर मतदान-केंद्रों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए, ताकि किसी भी गाँव से मतदान-केंद्र एक मील से अधिक दूर न रहे। चल-मतदान-केंद्रों की कल्पना पर भी विचार किया जा सकता है।

इन सुझावों पर आधारित कुछ संशोधनों के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि विभिन्न राजनीतिक दलों को चुनाव-प्रतीकों के आवंटन के लिए कोई संतोषजनक पद्धति अपनाई जाए। चुनाव आयोग इस संबंध में समय-समय पर परिवर्तन करता रहा है। वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है। कांग्रेस को छोड़कर, जिसे गोवा को छोड़कर पूरे देश भर में मान्यता प्राप्त है, अन्य प्रत्येक दल को बाधाओं का अनुभव करना पड़ता है। पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

वर्तमान पद्धति के अनुसार राजनीतिक दलों को राज्य स्तर पर मान्यता दी गई है। किसी भी दल को अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता नहीं दी गई है। 1962 के चुनावों में जिस दल ने किसी राज्य में कुल डाले गए वैध मतों का कम-से-कम 4 प्रतिशत प्राप्त किया है, उसे उस राज्य में मान्यता दी गई है। प्रतिशत का निर्धारण करते समय उन प्रत्याशियों को प्राप्त मतों की गिनती नहीं की जाती, जिनकी प्रतिभूति (जमानत) जब्त हो गई हो। किसी दल के लिए केवल तभी चुनाव-चिह्न आरक्षित रखा जाता है, जब उसे मान्यता प्राप्त हो जाए। यदि वह मान्यता-प्राप्त दल नहीं है, तो उसके प्रत्याशियों को निर्दलीय माना जाता है और उन्हें स्वतंत्र चुनाव-चिह्नों की सूची में से, जिसमें किसी दल का चुनाव-चिह्न सम्मिलित नहीं होता—कोई भी एक—चुनाव-चिह्न दिया जाता है। इस प्रकार किसी भी दल का चुनाव-चिह्न केवल उसी राज्य तक सीमित रहता है, जिसमें उस दल को मान्यता प्राप्त हो। 'दीपक' का चुनाव-प्रतीक मद्रास और मैसूर में, और 'दो बैलों की जोड़ी' का चुनाव-चिह्न गोवा में नहीं रहेगा।[1]

यह बिल्कुल एक नई पद्धति है। यह पूर्ववर्ती तीन आम चुनावों में प्रचलित पद्धति से भिन्न है। इससे राजनीतिक दल अपने चुनावों-चिह्नों से न केवल वंचित हो गए हैं, बल्कि अन्य कठिनाइयाँ भी पैदा हुई हैं।

उन राज्यों में, जहाँ जनसंघ मान्यता प्राप्त दल नहीं है, उप चुनावों में उसके प्रत्याशी 'दीप' चुनाव-प्रतीक को नहीं प्राप्त कर सके। इसका अन्य प्रत्याशियों ने

1. भारतीय जनसंघ का चुनाव चिह्न 'दीपक' था, वहीं 'दो बैलों की जोड़ी' चुनाव चिह्न भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का था।

लाभ उठाया। उन लोगों ने यह प्रचार किया कि ये जनसंघ के प्रत्याशी नहीं हैं, क्योंकि यदि ये भारतीय जनसंघ के प्रत्याशी होते तो इन्हें जनसंघ का चुनाव-चिह्न 'दीप' मिला होता। चूँकि जनसंघ सारे ही, अर्थात् तीनों आम चुनाव इसी चुनाव-चिह्न के साथ लड़ चुका है, अत: वह इन क्षेत्रों में भी सुपरिचित है, जहाँ उसे पर्याप्त मत नहीं मिल सके। जनसंघ को या किसी भी अन्य दल को, उसके विशिष्ट चुनाव-चिह्न से वंचित करना उस दल द्वारा तैयार की गई उस पृष्ठभूमि पर पानी फेर देना है, जिसे उसने गत आम चुनावों में तैयार किया था।

पिछले चुनावों के परिणामों के आधार पर चुनाव-चिह्नों के आरक्षण के समय बाद के चार वर्षों में उस दल द्वारा किए गए कार्यों के कारण उत्पन्न परिवर्तनों पर विचार नहीं किया जाता। जहाँ तक कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा-समाजवादी दल, समाजवादी दल और स्वतंत्र पार्टी का संबंध है, सभी प्रकार के विलय और विभाजन हुए हैं। आयोग ने इन पर ध्यान दिया है, और वह समय-समय पर इन दलों के लिए आरक्षित चुनाव-चिह्नों की सूची में संशोधन करता रहा है। यह सच है कि भारतीय जनसंघ इस प्रकार के किसी परिवर्तन से नहीं गुजरा है, किंतु उसने ऐसे राज्यों में अपने कार्य का व्यापक विस्तार किया है और शक्तिशाली बना है, जहाँ पिछली बार उसे मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी। तृतीय आम चुनाव के पहले आयोग ने स्थिति पर विचार किया था और स्वतंत्र पार्टी के लिए जो तब एक नवागंतुक थी, समुचित व्यवस्था की। यदि इस कार्य वृद्धि पर और प्रत्याशियों की संख्या पर, जिन्हें जनसंघ अगले आम चुनावों में खड़ा करने की इच्छा रखता है, ध्यान दिया जाए तो जनसंघ कई राज्यों में सरलता से मान्यता प्राप्त कर सकता है।

अन्य दल भी इस प्रकार के दावे प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार आरक्षित चुनाव-चिह्नों की सूची में अनवरत संशोधन करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इस कठिनाई से बचने के लिए हमारा यह सुझाव है कि तृतीय आम चुनावों के लिए अपनाई गई पद्धति को चलाए रखना चाहिए। चुनाव-चिह्नों के आरक्षण के अतिरिक्त, मान्यता प्राप्त दल को मतदाताओं की सूची भी नि:शुल्क मिलती है। जहाँ तक इस दूसरी सुविधा का प्रश्न है, इसे केवल उन्हीं दलों तक सीमित रखा जा सकता है, जिन्हें मान्यता प्राप्त हो, किंतु चुनाव चिह्न के आरक्षण को आगामी चुनाव के संबंध में दल की योजनाओं से संबद्ध करना चाहिए, न कि पिछले चुनावों में उसके परिणामों से। पुरानी पद्धति संतोषजनक थी, और उसमें किसी दल

के साथ भेदभाव नहीं था। आयोग ने 'भारत में तृतीय आम चुनाव' ग्रंथ में पृष्ठ 30 पर लिखा है :

"स्वतंत्र चुनाव-चिह्न और चुनाव-चिह्नों के आवंटन के आरक्षण संबंधी पहले के नियमों के अनुसार एक या दो राज्यों में केवल किसी दल के लिए आरक्षित चुनाव-चिह्न किसी अन्य राज्य में किसी प्रत्याशी को स्वतंत्र चुनाव-चिह्न के रूप में भी उपलब्ध नहीं था। कुछ मान्यता प्राप्त दलों ने, जिन्होंने कई अन्य राज्यों में—जिनमें उन्हें मान्यता प्राप्त नहीं थी—कार्यरत होने का दावा किया, इस प्रतिबंध का इस आधार पर विरोध किया कि उन राज्यों में चुनाव-कार्य के लिए उनके चुनाव-चिह्न प्राप्त न होने से उनको बड़ी बाधा पहुँचेगी। यह एक उचित आपत्ति प्रतीत होती है और आयोग का मत है कि यह उचित होगा कि उन अन्य राज्यों में भी राजनीति दलों के प्रत्याशियों को उनके दल का चुनाव-चिह्न दिया जाए, बशर्ते कि आयोग यह अनुभव करे कि यह वांछनीय है और दल पर्याप्त संख्या में प्रत्याशी खड़े करनेवाला है।"

यह आश्चर्य की बात है कि आयोग ने उल्टे ऐसे नियमों का अवलंबन किया, जो उन नियमों से भी अधिक पिछड़े हैं, जिनके बारे में उसका मत है कि दलों की आपत्तियाँ उचित हैं।

राजनीतिक दलों की शिकायतें दूर करने की दृष्टि से आयोग ने स्वतंत्र चुनाव-चिह्न की सूची में दल-चुनाव-चिह्नों को सम्मिलित कर लिया है और इन चुनाव-चिह्नों के आवंटन के लिए निम्नांकित नियमों को विज्ञापित किया है :

1. यदि कोई दल किसी निर्वाचन-क्षेत्र में (चाहे वह संसदीय हो या विधानसभाई) कोई भी प्रत्याशी खड़ा करता है तो उसे अन्य सभी प्रत्याशियों के समक्ष दल का चुनाव-चिह्न देने में वरीयता दी जानी चाहिए।
2. यदि कोई दल संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र में कोई प्रत्याशी खड़ा करता है, तो उस संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के अंतर्गत किसी भी विधानसभाई निर्वाचन-क्षेत्र में किसी प्रत्याशी को वह चुनाव-चिह्न तब तक नहीं दिया जाना चाहिए, जब तक वह उसी दल का प्रत्याशी न हो।
3. यदि कोई दल किसी विधानसभाई निर्वाचन-क्षेत्र से अपना कोई प्रत्याशी खड़ा करता है, तो उस संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के किसी प्रत्याशी को उसका चुनाव-चिह्न नहीं दिया जाना चाहिए, बशर्ते कि वह प्रत्याशी उसी दल का न हो।

यह पद्धति इसलिए अपनाई गई कि एक ओर तो दलीय प्रत्याशियों को दल का चुनाव-चिह्न अवश्य मिल सके, और दूसरी ओर उन निर्वाचन-क्षेत्रों में, जहाँ दल का कोई प्रत्याशी न हो, वह चुनाव-चिह्न निर्दलीय प्रत्याशियों के लिए मुक्त रहे। फिर भी, आयोग की रिपोर्ट के अनुसार—''बहुत से निर्दलीय प्रत्याशी ऐसे थे, जिन्होंने अपने को किसी दल का चुनाव-चिह्न दिया जाना पसंद नहीं किया।'' स्पष्ट ही दलीय चुनाव-चिह्न को स्वतंत्र चुनाव-चिह्न की सूची में रखने से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। इसलिए यह आवश्यक है कि दलों के चुनाव-चिह्नों के बारे में एक सरल पद्धति अपनाई जाए और उन्हें देश भर में आरक्षित चुनाव-चिह्न माना जाए।

वर्तमान में केवल सात ही दल ऐसे हैं—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया (दक्षिणपंथी), कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), प्रजा-समाजवादी दल, स्वतंत्र पार्टी, संयुक्त समाजवादी दल और भारतीय जनसंघ—जो अखिल भारतीय दल होने का दावा कर सकते हैं। उनके चुनाव-चिह्नों को सभी राज्यों में आरक्षित रखना चाहिए। जहाँ तक अन्य दलों का संबंध है, वे कुछ विशेष राज्यों तक सीमित हैं। फिर भी, यदि उनमें से कोई किसी अन्य राज्य में पर्याप्त संख्या में प्रत्याशी खड़े करने का दावा करता है, तो आयोग उसके लिए समुचित व्यवस्था कर सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 10, 1966



14

अशोक मेहता की 'नई रणनीति'

श्री अशोक मेहता[1] चौथी योजना के लिए धन जमा करने अमरीका निकल चुके हैं। उनके साथ ही अधिकारियों का दल भी निकला है, ताकि वहाँ उठे तकनीकी मुद्दों को वहीं सुलझाया जा सके। जब प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अमरीकी दौरा किया था, तभी यह स्पष्ट हो गया था कि अगर पाकिस्तान से युद्ध जैसे हालात फिर बने तो मदद रुक जाएगी। ऐसा लगता है कि दोनों देशों में से कोई यह मानना नहीं चाहता कि वह कर क्या रहा है।

वे सभी बहुत ज़्यादा विरोध करते हैं!

प्रधानमंत्री गांधी ने अपने अमरीकी दौरों के दौरान कई बार यह कहा है कि यह सब आर्थिक मदद के सिलसिले में नहीं है। अब श्री मेहता का जाना सिर्फ़ इसी चौथी योजना के लिए आर्थिक मदद की बातचीत के मकसद से है, लेकिन वित्त मंत्री कहते हैं कि वाशिंगटन में ऐसी कोई बात नहीं की जाएगी। योजना मंत्री विश्व बैंक के अध्यक्ष से मिलेंगे और उन्हें योजना की बारीकियाँ और रणनीति बताएँगे। क्या वित्त मंत्री[2] अभी तक विश्व बैंक के अधिकारियों को ये सारी बातें समझाने लायक काग़ज़ात जमा नहीं कर पाए? इस मामले में कोई गोपनीयता और हिचकिचाहट नहीं बरती जानी चाहिए। हम सभी जानते हैं कि ऐड इंडिया कंसोर्टियम और विश्व बैंक में अमरीका एक वरिष्ठ सदस्य है।

---

1. अशोक मेहता (1911-1984) योजना आयोग के 1963 से 67 तक उपाध्यक्ष तथा देश के नियोजन मंत्री रहे।
2. सचिंद्र चौधरी, भारत के 1965 से 67 तक वित्त मंत्री रहे।

जब तक वाशिंगटन से मंजूरी नहीं आती, पश्चिमी स्रोतों से मदद आनी शुरू नहीं होगी। अगर आई भी तो वह कोई बड़ी मदद नहीं होगी।

हमें अपने मन में यह स्पष्ट रखना चाहिए कि अमरीकी मदद कोई मुफ्त का उपहार नहीं है। न ही वह कोई सहयोग या सहायता के मद में दिया जाता है। उसके अपने आर्थिक और राजनीतिक पक्ष हैं।

आंतरिक सच्चाई को उजागर करता अमरीकी कांग्रेस का प्रस्ताव

खाद्य भी इन चीज़ों से मुक्त नहीं है। अमरीकी कांग्रेस ने प्रस्ताव का जो मसौदा अपने राष्ट्रपति को भेजा है, उसमें पी.एल.-480 के तहत भारत को आनेवाली मदद के बारे में पहले ही वाक्य में लिखा है, जबकि कांग्रेस ने यह कहा है कि अमरीकी नीति में देश के कृषि उत्पादन के भरपूर होने का उपयोग विदेश नीति को बढ़ावा देने में किया जाए। जबकि सहायता के निर्णयों में आर्थिक पहलुओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है, विदेश विभाग अंतरराष्ट्रीय मामलों पर हमारे विचार को प्रभावित करने का कोई अवसर नहीं छोड़ेगा। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने यह साफ़ कर दिया है कि सिर्फ़ इसलिए, क्योंकि उनका देश किसी से आर्थिक मदद ले रहा है, उन्हें राजनीतिक मुद्दों को प्रभावित करने का हक़ नहीं दिया जाएगा। उन्होंने साथ ही अति संवेदनशीलता से भी बचने की बात की है। मोटे तौर पर जहाँ यह अच्छी बात है, वहीं हमें बिल्कुल आँख मूँदकर इसे मान नहीं लेना चाहिए। अगर बहुत ज़्यादा संवेदनशीलता हमें अलग-थलग कर देती है, वहीं इसका न होना, हमारे स्वायत्त होने पर ख़तरा बन जाता है।

पाकिस्तान का ब्लैकमेल कामयाब हो चुका है

वाशिंगटन का राजनीतिक माहौल अशोक मेहता के लिए बहुत आरामदेह नहीं होनेवाला है। पाकिस्तान समर्थक लॉबी हमारे वियतनाम के प्रति रवैये को अमरीका में भारत के ख़िलाफ़ माहौल तैयार करने में इस्तेमाल कर रही है। भारत के विदेश विभाग ने इस मामले में सतर्कता बरतते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी के भारत लौटने पर उनके इस मुद्दे पर विचारों को प्रकट नहीं किया होता तो बेहतर होता। उनकी वहाँ के अधिकारियों से बातचीत गोपनीय रखी जा सकती थी, लेकिन अब वह सार्वजनिक हो चुकी है। इससे अमरीकी प्रेस को भारत और राष्ट्रपति जॉनसन

दोनों को बदनाम करने का मौक़ा मिल गया है। अमरीकी लोगों को आसानी से चीन-पाक संबंधों के प्रति आँखें मूँदने को समझाया जा रहा है। वे यह भूल रहे हैं कि पाकिस्तान के वियतनाम के प्रति रवैये और गुप्त गतिविधियाँ किसी भी तरह अमरीकी हित में नहीं हैं। भारत जो कि निर्णायक समिति में है, वह इस पर सिर्फ़ तटस्थ रह सकता है।

एक पाकिस्तानी मंत्री भी आजकल वाशिंगटन के दौरे पर हैं। आर्थिक मुद्दों के साथ-साथ सैन्य मदद पर भी बातचीत होने की संभावना है। अमरीका भी भारत और पाकिस्तान के बीच समानता का व्यवहार कायम रखना चाहता है। अगर ऐसा हुआ तो पाकिस्तान निस्संदेह अपने इरादों में कामयाब हो जाएगा। राष्ट्रपति अयूब ख़ान और चीनी प्रधानमंत्री के आपसी सहयोग संबंधी चीनी हथियारों के प्रदर्शन से अमरीकी घबराए हुए हैं। ऐसे में पाकिस्तान के प्रति तुष्टीकरण का रवैया अगर उसने अपनाया और पाकिस्तान ने भी दबाव जारी रखा तो स्थिति भारत के लिए घातक होगी। ऐसे हालात हमारे इलाके में शांति और अमन-चैन बहाल करने के लिए ख़तरनाक हैं।

विदेशी मदद के रूप में 4800 करोड़ रुपए की माँग

ताजा अनुमानों के मुताबिक, चौथी योजना के लिए 4800 करोड़ रुपयों की ज़रूरत है। इसमें से क़रीब 4000 करोड़ रुपए तो विश्व बैंक और ऐड इंडिया कंसोर्टियम की तरफ़ से आएँगे। निजी निवेश से 200 से 250 करोड़ रुपए जुटने की संभावना है। वह सोवियत रूस और कम्युनिस्ट देशों से बात कर चुके हैं। पश्चिमी देशों का कितना योगदान होगा, यह अभी ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। प्रश्न यह है कि क्या विदेशों से इतना पैसा लेना सुरक्षित होगा?

भारत के लिए विदेशी मुद्रा की ज़रूरत धीरे-धीरे बढ़ती रही है। चौथी योजना के प्रारूप में विदेशी पूँजी की ज़रूरत क़रीब 3200 करोड़ आँकी गई थी। कमीशन ने रिपोर्ट सौंपते समय इसे बढ़ाकर 4000 करोड़ कर दिया। नेशनल डेवलपमेंट काउंसिल के पास से जब यह आगे आई तो इसमें 800 करोड़ और जुट चुके थे। इसके अलावा पुराना क़र्ज़ चुकाने की समय सीमा में और बढ़ोतरी करने की माँग भी किए जाने की संभावना है।

योजना आयोग पूर्वानुभवों से सीख नहीं ले रहा

सरकार ने विदेशी मुद्रा के निवेश और उसके बँटवारे के लिए कोई ठोस

योजना नहीं बनाई है। लेकिन यह आसानी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि कमीशन ने जो योजना बनाई है, उसमें विदेशी मुद्रा का मूलधन रख-रखाव के काम में जमकर ख़र्च होनेवाला है। शिव मेहता की 'नई रणनीति' है कि ज़्यादा आर्थिक मदद एक निश्चित समय के लिए ली जाए, ताकि देश जल्दी से जल्दी आत्मनिर्भर बन सके। अभी तक की रणनीति में जो बुनियादी कारख़ानों को मदद देने का काम हो रहा था, यह उसी का बदला हुआ स्वरूप है। तर्क का आधार वही रखा गया है, नतीज़े भी अलग नहीं निकलनेवाले।

ऐसा लगता है कि पिछले सितंबर-अक्तूबर के अपने अनुभव से कमीशन ने कुछ नहीं सीखा। हम ऐसे हालात से इनकार नहीं कर सकते, जब हम युद्ध की स्थिति में हों और विदेशी मदद आनी बंद हो जाए। इस वजह से विदेशी मदद के आधार पर योजना बनाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। यह भी सत्य है कि पूर्व में देश ने ऐसी ही स्थिति की वजह से काफ़ी परेशानी उठाई थी। अगर थोड़ा समय मिल जाए तो आयात के विकल्पों से कुछ मदद मिल सकती है। सरकार इन आयातों के लिए लगातार उदार हो रही है, इस वजह से जो हमारे स्थानीय उत्पाद हैं, वे शुरुआती दौर में विदेशी उत्पादों के सामने न तो क़ीमत के मामले में टिक पाएँगे, न ही गुणवत्ता के मामले में। कई उद्योग ऐसी ढुलमुल आयात नीति की वजह से परेशानी झेल रहे हैं। उधर हम विदेशी पूँजी के जाल में और जकड़ते भी जा रहे हैं।

केन्या भी हमसे समझदार है !

अगर विदेशी मदद के भरोसे बिल 3200 करोड़ से 4800 करोड़ रुपए तक जा पहुँचा है तो यह मानकर चलना चाहिए कि योजना परिव्यय और ऊपर ही जाएगा। यानी कि अब 21,500 करोड़ रुपए के बदले हमारे पास 25,000 से 30,000 करोड़ रुपए की योजनाएँ हैं। क्या सरकार ने इसके नतीज़ों के बारे में सोचा है? विदेशी वित्त से मुक्ति उतनी ही ज़रूरी है, जितनी ज़रूरी विदेशी खाद्यान्न से मुक्ति है। ये सिर्फ़ एक राजनीतिक लक्ष्य ही नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण भी है। अगर यह मान भी लें कि कुछ विदेशी निवेश मददगार होता है, इसलिए ज़रूरी है तो भी हम विदेशी मदद पर निर्भरता अंधाधुंध नहीं बढ़ा सकते। ऐसा लगता है कि हम हाल में ही आज़ाद हुए अफ्रीकी देशों जितनी सावधानी भी नहीं बरत रहे। केन्या की सरकार के एक दस्तावेज़ 'अफ्रीकी समाजवाद और उसके समाजवाद पर प्रभाव' में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं, जो हमारे नीति नियंताओं के काम आ

सकती हैं : 'एक विकासशील राष्ट्र के तौर पर हमें अपने सभी विदेशी विनिमय संबंधी कार्यों और आती हुई मदद की समीक्षा करनी चाहिए। हमें ऐसे सभी देशों से आनेवाली आर्थिक मदद को रोकना चाहिए, जो केवल इस उद्देश्य से भेजी जाती है, ताकि हम उनके माल के लिए एक बाज़ार बने रहें; हमें भविष्य में खुद चीज़ें उत्पादित करने का ध्येय रखना है। आर्थिक सहायता के मुद्दे इस बात पर तय होने चाहिए कि क्या इस उपक्रम की क्षमता है कि वह हमारी अर्थव्यवस्था में कोई सकारात्मक योगदान दे सके? ऐसे मुद्दों को सिर्फ़ राजनीतिक और भावनात्मक चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए।' (अफ्रीका क्वार्टरली; पृष्ठ. 223)

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 24, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



15

भारतीय जनसंघ, तेरहवाँ वार्षिक अधिवेशन जालंधर

भारतीय जनसंघ का बारहवाँ वार्षिक अधिवेशन दिनांक 23 और 24 जनवरी, 1965 को विजयवाड़ा में हुआ। अधिवेशन के साथ ही दिनांक 25 और 26 जनवरी, 1965 को भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक हुई। आंध्र प्रदेश में यह पहला अधिवेशन था। वस्तुतः दक्षिण में एक बड़े पैमाने पर यह प्रथम ही आयोजन था। अपेक्षानुसार आंध्र जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने संपूर्ण व्यवस्था व्यापक रूप से की। उन्हें आंध्र प्रदेश की जनता से, विशेषकर विजयवाड़ा निवासियों से भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। इस अधिवेशन से प्रदेश में जनसंघ की प्रगति को भरपूर बल मिला।

भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक में विशेषतः जनसंघ के 'सिद्धांत और नीति' के प्रारूप पर विचार हुआ। ग्वालियर अधिवेशन में इस पर प्रारंभिक विचार हुआ था। तदुपरांत उसका प्रकाशन कर उस पर सार्वजनिक चर्चा हुई। भारतीय कार्यसमिति द्वारा मनोनीत एक उपसमिति ने भी उस पर विचार किया। समिति ने विचार करते समय प्रकट मतों को भी दृष्टि में रखा। समिति के प्रतिवेदन पर विचार करके भारतीय कार्यसमिति ने उसे स्वीकार किया। कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत प्रारूप प्रतिनिधि सभा के समक्ष विचार और स्वीकृति के लिए उपस्थित किया गया। सभा ने दो दिन की बैठक में पूर्ण विचार-विनिमय के उपरांत 'सिद्धांत और नीति' को स्वीकृत किया। विजयवाड़ा अधिवेशन इस दृष्टि से उल्लेखनीय रहेगा।

26 जनवरी, 1965[1] को अंग्रेज़ी को केंद्र की राजभाषा के रूप में व्यवहार की संविधान प्रदत्त छूट की अवधि समाप्त होती थी किंतु शासन अंग्रेज़ी को सदैव के लिए चलाने की नीति लेकर चल रहा था। कुछ क्षेत्रों में यह आशंका भी प्रकट की गई कि हिंदी के प्रयोग से उनके भविष्य पर प्रतिकूल परिणाम होगा। वास्तव में यह निराधार थी। अधिवेशन में जनसंघ की भाषा नीति का पुनरुच्चार किया गया। विजयवाड़ा में दक्षिण के प्रदेशों के प्रतिनिधियों की बहुलता थी। वहाँ सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया कि भारत की केंद्रीय राजभाषा हिंदी ही हो सकती है। यह तथ्य कुछ इने-गिने अंग्रेज़ी भक्तों के इस प्रचार को झुठलाता है कि दक्षिण में हिंदी को कोई नहीं चाहता। जनसंघ का यह भी मत रहा कि प्रादेशिक स्तर पर प्रदेश-भाषाओं को राज-काज भाषा के रूप में व्यवहृत होना चाहिए। अत: यह निश्चित किया गया कि प्रदेशों में प्रादेशिक भाषा के व्यवहार के लिए आंदोलनों को बल दिया जाए।

भारतीय जनसंघ की भाषा नीति के संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि जनसंघ ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया है तथा उसकी शिक्षा को अनिवार्य माना है। विशेष संस्कारी अवसरों पर उसका प्रयोग होना चाहिए। अधिवेशन में इस विषय में भी एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

विजयवाड़ा अधिवेशन में देश की अर्थव्यवस्था पर भी विस्तृत रूप से विचार हुआ। भारत की विद्यमान विभिन्न आर्थिक समस्याओं के मूल में ग़लत नियोजन तथा उसकी आनुषंगिक ग़लत नीतियाँ ही रही हैं। अत: यह निर्णय किया गया कि इस प्रश्न पर आंदोलन करने के स्थान पर यह अधिक उपयुक्त होगा कि योजना को बदलने के लिए ही जनमत संगठित किया जाए। चौथी योजना का स्मरण-पत्र उस समय प्रकाशित हो चुका था। उसके अनुसार चतुर्थ योजना की कल्पना उन्हीं ग़लत नीतियों के आधार पर की गई थी, जिनका हानिकर परिणाम देश भुगत रहा था। अधिवेशन में योजना बदलो आंदोलन की नींव रखी गई।

मद्रास में हिंदी विरोधी उपद्रव

अधिवेशन से प्रतिनिधि अपने-अपने स्थान पर वापस लौट भी नहीं पाए थे

1. हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर, 1949 को स्वीकार किया गया। इसके बाद भारतीय संविधान में राजभाषा के संबंध में धारा 343 से 352 तक की व्यवस्था की गई। हिंदी को ग़ैर-हिंदी राज्यों में सुदृढ करने के लिए केंद्र को 15 वर्ष का समय दिया गया तथा अनुच्छेद 343 (2) में संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग की भी मान्यता दी गई, जो कि स्वत: ही 26 जनवरी, 1965 को समाप्त हो जानी थी।

कि तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलन प्रारंभ हो गया।[2] आंदोलन ने शीघ्र ही तोड़-फोड़ और हिंसा का रूप ले लिया। रेलवे स्टेशन, तार-घर, दूरभाष केंद्र आदि केंद्रीय संस्थानों को आग लगाने का उपक्रम हुआ। कुछ व्यक्तियों ने आग में जलकर आत्माहुति भी दी। पांडिचेरी में श्रीअरविंद आश्रम तथा तिरुपति में राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्ण के पुस्तकालय को जलाया गया।

आंदोलन विशेषत: तमिलनाडु तक ही सीमित रहा। केरल, आंध्र और कर्नाटक तथा कलकत्ता में भी अंग्रेज़ी के समर्थकों ने आंदोलन करने का प्रयास किया, किंतु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। इन सभी क्षेत्रों में जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने राजभाषा के प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण को बलपूर्वक रखा, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी के समर्थक जन-मन में भ्रम और आशंकाएँ निर्माण नहीं कर पाए। तमिलनाडु में जनसंघ का कार्य नया और छोटा है। अत: वहाँ हम प्रभावी नहीं हो पाए।

आंदोलन का मूल कारण भाषा समस्या न होकर राजनीतिक था। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तथा द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के नेताओं ने जन-भावनाओं को भड़काने के लिए सभी उपायों का अवलंबन किया। कांग्रेस की आंतरिक गुटबंदी भी इसमें सहायक हुई। मद्रास के मुख्यमंत्री की हठधर्मी तथा कांग्रेस प्रधान द्वारा 'हिंदी के पत्रों की रद्दी की टोकरी में फेंक देने की घोषणा' ने आग में घी का काम किया।[3] आंदोलन का सूत्रपात होने के उपरांत उसका नेतृत्व वामपंथी कम्युनिस्ट तथा पुराने मुसलिम लीगियों के हाथ में चला गया। कुछ विदेशी पादरियों ने भी उस आंदोलन को बढ़ावा दिया।

हिंसा और तोड़-फोड़ से शासन घबरा गया और प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री ने अंग्रेज़ी के पूर्ववत् निर्बाध रूप से चलने का आश्वासन देते हुए हिंदी के प्रयोग

---

2. मद्रास में पहला हिंदी विरोधी आंदोलन 1937 में हुआ था,जब मद्रास प्रेसीडेंसी के स्कूलों में हिंदी को आवश्यक विषय के रूप में पढ़ाने की कोशिश की गई। इस क़दम का विरोध ई.वी. रामास्वामी (पेरियार) और जस्टिस पार्टी (बाद में द्रविड़ कड़गम बन गई) ने किया। दूसरी बार जब राजभाषा अधिनियम के तहत 26 जनवरी, 1965 को हिंदी को एकमात्र आधिकारिक भाषा के रूप में शोभित होना था, यह आंदोलन भड़का। यह दिन जैसे-जैसे निकट आने लगा, दक्षिण भारत के राज्यों विशेष तौर पर मद्रास स्टेट में हिंदी-विरोधी आंदोलन तेज़ होने लगा। 25 जनवरी, 1965 को मदुरै के दक्षिण भाग में शुरू हुए दंगे ने पूरे मद्रास को अपनी चपेट में ले लिया। दंगा दो महीने चला और इस दौरान दंगाइयों ने व्यापक हिंसा तथा लूट-मार की और अंतत: पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ीं। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक इस घटना में दो पुलिसकर्मी सहित 70 लोग मारे गए थे।
3. एम. भक्तवत्सलम, मद्रास के 1963 से 67 तक मुख्यमंत्री रहे। वहीं कुमारास्वामी कामराज, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1964 से 67 तक अध्यक्ष रहे थे।

संबंधी सभी आदेश वापस ले लिये। फलतः आज राजकाज में हिंदी का उतना भी स्थान नहीं है जितना 26 जनवरी, 1965 से पूर्व था। शासन ने यह भी घोषणा की कि वे राजभाषा अधिनियम 1963 में संशोधन कर ऐसी व्यवस्था करेंगे कि जब तक एक भी प्रांत चाहेगा, अंग्रेज़ी चलती रहेगी। शासन की अकर्मण्यता के कारण जो राजकर्मचारी हिंदी नहीं सीख पाए, उन्हें कुछ और दिनों तक अंग्रेज़ी की सुविधा देना एक बात है, परंतु हिंदी के प्रयोग के लिए हिंदी विरोधियों को ही निषेधाधिकार देना बिल्कुल उलटी ही बात है। भारतीय जनसंघ ने इस नीति का डटकर विरोध करने का निर्णय लिया। तदनुसार दिनांक 22 फरवरी, 1965 को संपूर्ण देश में राजभाषा दिवस मनाया गया। साथ ही प्रदेशों में प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग अविलंब करने की माँग की गई। कई प्रांतों में प्रदेश-भाषाओं का प्रयोग बढ़ रहा है। फिर भी अभी सर्वत्र अंग्रेज़ी का ही वर्चस्व है, जिसे समाप्त करने के लिए किसी ज़ोरदार प्रयत्न की आवश्यकता होगी।

योजना बदलो अभियान

विजयवाड़ा अधिवेशन के निर्णयानुसार संपूर्ण देश में योजना बदलो अभियान लिया गया। कुछ प्रांतों में यह कार्यक्रम 13 अप्रैल से प्रारंभ हुआ था, शेष देश भर में 2 मई से शुरू किया गया। कार्यक्रम के अंतर्गत सघन क्षेत्रों में प्रत्येक ग्राम पंचायत तक अन्यत्र विकास खंड के केंद्र स्थानों पर प्रदर्शन किया गया। छोटी-छोटी विचार गोष्ठियों के द्वारा भी योजना के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत संपूर्ण देश में लगभग पचास हज़ार सभाओं और गोष्ठियों का आयोजन हुआ। योजना बदलो अभियान में इस बात पर बल दिया गया कि योजना सुरक्षा, स्वदेशी और स्वावलंबन के आधार पर बने तथा उसमें अन्न और अस्त्र दोनों के उत्पादन पर बल दिया जाए। मूल्यों की स्थिरता, उत्पादन वृद्धि तथा रोजगार की व्यवस्था को योजना के उद्देश्यों में वरीयता प्रदान की जाए। हमने इस मत का भी प्रतिपादन किया कि कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाए तथा इस हेतु छोटी सिंचाई योजनाओं तथा स्थानीय साधनों के विकास पर ध्यान दिया जाए। शासन में मितव्ययता लाकर मुद्रा-स्फीति को रोकने पर भी बल दिया जाए।

योजना बदलो अभियान का परिणाम देश के आर्थिक चिंतन पर हुआ। पाकिस्तान के साथ संघर्ष के दिनों में बाहरी सहायता बंद होने के कारण उत्पन्न परिस्थितियों ने जनसंघ के आर्थिक कार्यक्रम की गहराई और व्यावहारिकता की

ओर सहज ही सबका रुझान हुआ। शासन की नीतियों में कुछ परिवर्तन के आसार नज़र आए थे, किंतु ताशकंद समझौते के बाद वे तेजी के साथ पुराने ढर्रे पर आ गए और अब नई योजना की कल्पना पूर्ववत् अव्यावहारिक रूप में की जा रही है।

पाकिस्तान पर आक्रमण

पाकिस्तान का जन्म भारतीय राष्ट्र के विरोध में से हुआ। अपने अस्वाभाविक अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए तथा अपनी विस्तारवाद की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के हेतु उसके शासक सदैव ही भारत के विरोध में जनता का जिहादी जुनून उभारकर आक्रामक नीति अपनाते रहे हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति में वे साम, दाम, दंड, भेद सभी उपायों का अवलंबन करते रहे हैं। सन् 1947 में विभाजन के तुरंत बाद उन्होंने कश्मीर पर आक्रमण किया। भारत की सेनाओं के पराक्रम के कारण वे कश्मीर को हड़पने में असफल रहे, किंतु संयुक्त राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता के परिणामस्वरूप 1 जनवरी, 1949 को युद्ध विराम हो गया और इस प्रकार कश्मीर का एक तिहाई भाग पाकिस्तान के ग़ैर क़ानूनी क़ब्ज़े में रह गया। उसे मुक्त कराना भारत की राष्ट्रीय नीति है, जिस पर भारतीय जनसंघ सदैव बल देता रहा है।

भारत शासन ने अपने इस भू-भाग को मुक्त करने के लिए कोई उपाय नहीं किया किंतु पाकिस्तान ने शेष कश्मीर को हड़पने की योजना इस वर्ष अवश्य कार्यान्वित की। इस योजना के तीन अंग थे—1. पाकिस्तान द्वारा सैनिक कार्रवाई, 2. पाकिस्तानी घुसपैठियों द्वारा कश्मीर में तोड़-फोड़ की कार्रवाई तथा बगावत का प्रचार और 3. पाकिस्तान तथा चीन समर्थक तत्त्वों द्वारा भारत में व्यापक पैमाने पर उपद्रव। भारत के ऊपर दबाव बनाए रखने के लिए चीन ने भी तिब्बत और लद्दाख में सैन्य संचालन तथा कुछ कार्रवाई करना प्रारंभ किया था।

इस योजना का प्रारंभ शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला की विदेश यात्रा से हुआ। अब्दुल्ला हज करने के बहाने बाहर गया। वहाँ हर देश में उसने भारत के विरुद्ध प्रचार किया तथा अल्जीयर्स में तो चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई से भी मिला। विदेशों में अब्दुल्ला की संपूर्ण व्यवस्था पाकिस्तानी दूतावासों ने की।

भारत में उपद्रव भड़काने की दृष्टि से अलीगढ़ विश्वविद्यालय में, जो प्रारंभ से पाकिस्तानी मनोवृत्ति का गढ़ रहा है और अब लीगी और कम्युनिस्ट तत्त्वों के गठबंधन का षड्यंत्र केंद्र है, वहाँ के कुछ शरारती व्यक्तियों ने उपकुलपति पर घातक हमला किया और बाद में तोड़-फोड़ की कार्रवाई की। जब शिक्षा विभाग ने

वहाँ अनुशासन बनाए रखने के लिए एक अध्यादेश जारी किया तो संपूर्ण देश में मुसलमानों की भावनाओं को संगठित रूप में उभारा गया। केंद्रीय शिक्षामंत्री श्री मोहम्मद करीम छागला के विरुद्ध उसी प्रकार विष वमन किया गया, जिस प्रकार मुसलिम लीग स्वातंत्र्य-समर काल में कांग्रेसी मुसलमानों के ख़िलाफ़ करती थी।

भाषा विवाद का सहारा लेकर उर्दू की माँग के नाम पर भी मुसलमानों की सांप्रदायिक प्रवृत्ति को जगाने का प्रयास हुआ।

दूसरी ओर कम्युनिस्टों ने अन्न समस्या को लेकर देश भर में बंद तथा हिंसा और तोड़-फोड़ की योजना बनाई। लीगी तत्त्व तो स्वाभाविक रूप में उनके साथ थे, किंतु दुःख है कि संयुक्त समाजवादी दल भी उनका शिकार हो गया। इस योजना को महाराष्ट्र और गुजरात में तो विशेष सफलता नहीं मिली, किंतु पटना में 9 अगस्त के दिन उपद्रव काफ़ी गंभीर रूप धारण कर गए।

देश में उक्त गड़बड़ के साथ-साथ कश्मीर में भी घुसपैठिए भेजे गए। ये पाकिस्तानी सेना के अंग थे तथा उन्हें विप्लव की पूरी शिक्षा दी गई थी। कश्मीर की सादिक सरकार की तथाकथित उदारता की ढीली नीति के कारण ये घुसपैठिए आसानी से कश्मीर में बहुत अंदर तक प्रवेश कर गए। उनकी यह योजना थी कि वे श्रीनगर में लूटपाट और आगजनी की कार्रवाइयों को उत्तेजना देकर वहाँ के रेडियो केंद्र तथा हवाई अड्डे पर अधिकार कर लेंगे तथा वहाँ एक क्रांतिकारी सरकार की स्थापना करके पाकिस्तान से सहायता माँगेंगे। पाकिस्तान अपनी सैन्य कार्रवाई उनकी सहायता के नाम पर करना चाहता था। भारत की ओर से प्रतिकार होने पर पंजाब और राजस्थान के क्षेत्र में भी वे सेना भेजने की योजना बना चुके थे।

सैनिक कार्रवाई

कश्मीर में युद्धविराम रेखा के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए उल्लंघनों के साथ ही पाकिस्तान ने पूर्व में दहाग्राम टप्पे की सीमा पर बड़े पैमाने पर गोलियाँ चलाना आरंभ कर दिया। इसके साथ ही त्रिपुरा और पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर उसने काफ़ी सेना इकट्ठी कर दी। यह संभवतः उसकी चाल थी, क्योंकि वास्तविक कार्रवाई तो वह पश्चिम में विशेषकर कश्मीर में करना चाहता था।

फरवरी में पाकिस्तानी सीमा पुलिस ने कच्छ के रण में घुसपैठ प्रारंभ कर दी। 17 मार्च को पाकिस्तानी रैंजर्स ने भारतीय सीमा में तेरह सौ गज अंदर आकर कंजरकोट पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह कार्रवाई बढ़ती गई। दिनांक 25 मार्च को

उन्होंने डिंग पर अधिकार कर लिया, जहाँ भारतीय सीमा पुलिस के थोड़े सिपाहियों को छह मील पीछे विगोकोट तक हटना पड़ा।

भारत सरकार दहाग्राम क्षेत्र में पाकिस्तान के सामने झुक गई तथा 31 मार्च को उसने वहाँ गोला बंदी का आदेश दिया। पाकिस्तानियों को पारपत्र की सुविधा भी दे दी गई। बदले में पाकिस्तान ने करीमगंज के पास सीमा पर गोलीबारी शुरू कर दी।

कच्छ में पाकिस्तान और आगे बढ़ा तथा दिनांक 9 अप्रैल को भारी सेना और तोपों के साथ उसने सरदार चौकी तथा विगोकोट पर हमला कर दिया। अभी तक भारत सरकार ने सीमा सुरक्षा का भार केवल पुलिस पर छोड़ रखा था। किंतु देश में जनमत अधिकाधिक क्षुब्ध हो रहा था। फलतः सेना को कच्छ की सुरक्षा का भार सौंपा गया। सेना ने पहुँचकर पाकिस्तानियों को पीछे खदेड़ना प्रारंभ किया। फलतः दिनांक 14 अप्रैल को ही पाकिस्तान ने युद्धविराम का तथा विवादों को बातचीत से सुलझाने का प्रस्ताव रखा। भारत ने उसे यह कहकर अमान्य कर दिया कि कच्छ के रण का कोई विवाद नहीं है तथा जब तक पाकिस्तान कंजरकोट और भारत की संपूर्ण भूमि को ख़ाली करके पीछे नहीं हट जाता, युद्धविराम नहीं होगा।

दिनांक 24 अप्रैल को पाकिस्तान ने भारत की सीमा चौकी प्वॉइंट 84 पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसने अमरीकी टैंकों का भी प्रयोग किया, जो कि अमरीका से हुई सैन्य शर्तों के विपरीत था। भारत ने अमरीका की दृष्टि में यह तथ्य लाया किंतु अमरीका ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे पाकिस्तान का हौसला बढ़ा और उसने आगे चलकर युद्ध में अमरीका शास्त्रास्त्रों का खुलकर प्रयोग किया।

जैसे ही भारतीय सेनाओं ने शत्रु के मुक़ाबले तथा प्रत्याक्रमण के लिए मोरचेबंदी की, वैसे ही ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मध्यस्थता के लिए बीच में कूद पड़े। प्रधानमंत्री श्री शास्त्री ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री विल्सन की अपील पर पहले तो व्यवहार में युद्धविराम स्वीकार कर लिया तथा बाद में राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में पाकिस्तान के साथ अनौपचारिक बातचीत के परिणामस्वरूप कच्छ के रण के विवाद को पंच फ़ैसले के लिए सुपुर्द करने का फैसला कर लिया।

पाकिस्तान ने समझौते का लाभ उठाकर कश्मीर को भी पंच फ़ैसले के लिए सौंपने का राग अलापना शुरू किया। दूसरी ओर अपनी योजना के अनुसार उसे 5

अगस्त से बड़े पैमाने पर घुसपैठिए भेजकर वहाँ गड़बड़ करवाना शुरू किया। जब भारत की पुलिस ने इन घुसपैठियों के विरुद्ध कार्रवाई की तथा उनकी आंतरिक विद्रोह की योजना असफल हुई तो उसने 1 सितंबर, 1965 को छंब के क्षेत्र में एक बड़े पैमाने पर आक्रमण कर दिया। फलत: भारत और पाकिस्तान के बीच सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ हुआ। 22 सितंबर तक यह युद्ध चला। 23 सितंबर की प्रात: सुरक्षा परिषद् के आदेश पर युद्ध विराम हुआ तथा 10 जनवरी, 1966 को हुए ताशकंद समझौते के अनुसार 25 फरवरी, 1966 को भारत और पाकिस्तान की सेनाएँ 5 अगस्त, 1965 की स्थिति को वापस आ गई। जैसे अपेक्षित था, ताशकंद समझौते का लाभ उठाकर पाकिस्तान अपनी नुक़सान भरपाई करने तथा चीन के साथ मिलकर एक नए आक्रमण की तैयारी कर रहा है।

भारतीय जनसंघ का योगदान

कच्छ में आक्रमण के प्रारंभ से अभी तक पाकिस्तान के साथ संघर्ष और बातचीत संबंधी प्रश्नों पर भारतीय जनसंघ ने राष्ट्रीय भावनाओं और अभिमत को बराबर प्रभावी रूप से प्रकट किया है।

इस हेतु जनसंघ ने तीन प्रकार के कार्यक्रम अपनाए। प्रथम शासन को भावी की संभावनाओं के संबंध में सचेत करना, दूसरे उसकी ग़लत और असावधानता की नीतियों का डटकर विरोध करना तथा तीसरे संघर्ष में शासन के साथ सक्रिय सहयोग के लिए सब प्रकार से रचनात्मक उपायों को अपनाना।

जनसंघ ने ही सबसे पहले कच्छ में होनेवाले अतिक्रमणों की ओर शासन का ध्यान खींचा। संसद् में इस प्रश्न को उठाकर श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने शासन को विवश किया कि वे तथ्यों की पूरी जानकारी देश को दें। श्री सुंदर सिंह भंडारी तथा श्री बलराज मधोक 28-29 मार्च, 1965 को दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अधिवेशन के अवसर पर शासन को चीन-पाकिस्तान गठबंधन और शेख़ अब्दुल्ला की गतिविधियों की चेतावनी दी। अप्रैल में 'कंजरकोट वापस लो', दिवस मनाया तथा शासन से माँग की कि कच्छ के रण की रक्षा का दायित्व सेना के सुपुर्द किया जाए।

शेख़ अब्दुल्ला को विदेश न जाने दिया जाए, यह अनुरोध करते हुए विजयवाड़ा से ही प्रधानमंत्री को तार दिया गया था। बाद में जम्मू में भी पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने शेख़ की विदेश यात्रा से होनेवाले दुष्परिणामों की ओर शासन का ध्यान दिलाया। दिनांक 3-4 अप्रैल, 1965 को जयपुर में भारतीय कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा

सरकार से माँग की कि वह शेख़ अब्दुल्ला का पारपत्र रद्द करके उसके विरुद्ध राष्ट्रद्रोह का मुकदमा चलाए।

कच्छ में लड़ाई बंद करवाने तथा मध्यस्थता के लिए ब्रिटेन द्वारा किए गए प्रयत्नों और सुझावों के संबंध में भी जनसंघ बराबर चेतावनी देता रहा। किंतु शांति और मित्रता के नाम पर शासन बराबर पीछे हटता गया। दिनांक 24 जून को संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव के आश्वासन पर भारत ने कारगिल की दोनों चौकियों को ख़ाली कर दिया। जनसंघ ने इस बात का विरोध किया, क्योंकि प्रथम तो ये दोनों चौकियाँ भारतीय क्षेत्र में थीं तथा दूसरे संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों पर श्रीनगर-लेह जैसी सामरिक महत्त्व की सड़क की सुरक्षा के लिए आश्रित रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं था।

जब ब्रिटेन के दबाव में कच्छ समझौते की ख़बर बाहर आई तो श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखा कि बिना विरोधी दलों के नेताओं को विश्वास में लिये वे इस समझौते पर हस्ताक्षर न करें। शासन ने सब अनसुनी करके दिनांक 30 जून को कच्छ समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए।

भारतीय कार्यसमिति के दिल्ली स्थित सदस्यों ने एक आवश्यक बैठक में इस समझौते का विरोध करने का निर्णय लिया। फलतः 30 जून, 1965 को विदेश मंत्रालय के सामने धारा 144 तोड़ने के अभियोग में श्री अटलबिहारी वाजपेयी, श्री रामचंद्र विट्ठल बड़े[4] तथा अन्य बयालीस कार्यकर्ता पकड़े गए।

12-13 जुलाई, 1965 को जबलपुर में कार्यसमिति की बैठक हुई। उसमें निर्णय किया गया कि इस समझौते के विरोध में देश भर में जनमत संगठित किया जाए तथा दिनांक 16 अगस्त को संसद् के सत्रांरभ पर संसद् भवन के समक्ष एक विराट् प्रदर्शन हो। इस बीच जहाँ भी केंद्रीय मंत्री जाएँ, वहाँ काले झंडों के प्रदर्शन करने तथा स्थान-स्थान पर विरोध सभाओं के आयोजन का निश्चय किया गया। 23 जुलाई (लोकमान्य तिलक जयंती) से 1 अगस्त (लोकमान्य की पुण्य तिथि) तक भारत की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संकल्प सप्ताह मनाने का निर्णय हुआ। इसी प्रकार 9 अगस्त को कार्यक्रम हुए। रक्षाबंधन पर रक्षा सूत्र बाँधकर स्वतंत्रता की रक्षा की प्रतिज्ञा की गई। स्थान-स्थान के सभा प्रदर्शन आदि कुल मिलाकर लगभग एक लाख कार्यक्रम इस बीच में आयोजित हुए।

4. रामचंद्र विट्ठल बड़े, भारतीय जनसंघ के नेता थे। ये तीसरी लोकसभा में खरगोन निर्वाचन क्षेत्र (मध्य प्रदेश) से सांसद थे।

16 अगस्त के प्रदर्शन में संयुक्त समाजवादी दल ने भी सम्मिलित होने की इच्छा प्रदर्शित की। श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने एक वक्तव्य निकालकर उनके निर्णय का स्वागत किया, किंतु यह भी स्पष्ट कर दिया कि जनसंघ का प्रदर्शन शांतिपूर्वक एवं अनुशासनपूर्ण होगा। घेरा डालने, धरना देने अथवा किसी भी प्रकार की हिंसात्मक कार्रवाई का उसका कार्यक्रम नहीं है। संभवतः नीति की इस भिन्नता के कारण उन्होंने साथ आने का विचार छोड़ दिया।

16 अगस्त, 1965 को प्रदर्शन दिल्ली ही नहीं, भारत के इतिहास में अभूतपूर्व था। संख्या, व्यवस्था, अनुशासन, उत्साह और कष्ट सहिष्णुता सब में वह बाज़ी मार ले गया। संसद् से लेकर लालक़िले तक केसरिया सागर हिलोरें ले रहा था। इस प्रदर्शन में देश के कोने-कोने से प्रदर्शनकारी आए। मनाली से लेकर मंडपम तक तथा बैलोनिया से भुज तक के माँ भारती की स्वतंत्रता के मतवाले दिल्ली में इकट्ठे हुए थे। विभिन्न स्थानों से रेलवे के डिब्बे तथा स्पेशल गाड़ियों की व्यवस्था की थी। नियमानुसार पैसे जमा किए गए थे, किंतु आख़िरी समय पर रेल विभाग ने सब डिब्बे और गाड़ियाँ रद्द कर दीं। पंजाब में मोटरों को भी बीच में ही रोक लिया। अमृतसर से चली हुई मोटरों को तो बीस मील दूर आकर रोका गया। गुड़गाँव और दिल्ली के बीच रोज चलनेवाली सभी मोटरें भी बंद कर दीं। फिर भी इतने लोग आए कि उनका हिसाब लगाना कठिन था। बी.बी.सी. ने प्रदर्शनकारियों का अनुमान पाँच लाख लगाया। लालकिले से लेकर संसद् तक सड़क के दोनों ओर संपूर्ण दिल्ली उमड़ पड़ी थी। दिल्ली वालों ने जिस प्रकार से प्रदर्शनकारियों का आतिथ्य किया, वह सराहनीय है। प्रदर्शन और जनसंघ दोनों के लिए उनके हृदय में कितना स्थान है, उसका यह द्योतक था। प्रदर्शनकारियों को जनसंघ के नेताओं के अतिरिक्त संसद् सदस्य सर्वश्री प्रकाशवीर शास्त्री,[5] श्री बी.पी. मौर्य,[6] दादा साहेब गायकवाड़,[7]

---

5. प्रकाशवीर शास्त्री (1923-1977) प्रमुख आर्यसमाजी नेता थे। 1957 में आर्य समाज द्वारा संचालित हिंदी आंदोलन में उनके भाषणों ने जबरदस्त जान फूँक दी थी, सारे देश से हज़ारों सत्याग्रही पंजाब आकर गिरफ़्तारियाँ दे रहे थे। भाषणों में दिए शक्तिशाली तर्कों से इनके विरोधी भी प्रशंसक बन जाते थे। इन्होंने 1962 के लोकसभा चुनाव में बिजनौर (उत्तर प्रदेश) से जीत दर्ज़ की।
6. बी.पी. मौर्य उत्तर प्रदेश में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इंडिया के लोकप्रिय नेता थे। ये 1962 में अलीगढ़ लोकसभा सीट पर निर्वाचित हुए थे।
7. भाऊराव कृष्णजी 'दादासाहेब' गायकवाड़ (1902-1971) महाराष्ट्र के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता तथा डॉ. भीमराव अंबेडकर के क़रीबी सहयोगी थे। इन्हें संसद् के दोनों सदनों में सदस्य बनने का अवसर प्राप्त हुआ था। इन्होंने दलित उत्थान के लिए अनेक आंदोलन किए थे।

श्री रामसेवक यादव,[8] श्री जगदेव सिंह सिद्धांती[9] और श्री गौरीशंकर कक्कड़[10] ने भी संबोधित किया। सबने कच्छ समझौते[11] की निंदा तथा प्रदर्शनकारियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कांग्रेस के भी अनेक सदस्य मंच पर आए और उन्होंने प्रदर्शन की सराहना की। श्री माणिक्यलाल वर्मा,[12] श्री जसवंतराय मेहता, श्री टीकाराम पालीवाल[13] तथा श्री राधेलाल के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र के कलापथक ने जो वीर रसपूर्ण, देश भक्तिमय एवं समयोचित कार्यक्रम किया, वह भी अत्यंत प्रभावी था।

दिल्ली के कार्यकर्ताओं ने प्रदर्शनकारियों के संगठन तथा अन्य सभी व्यवस्था अत्यंत कुशलतापूर्वक की। राजधानी के संगठन के अनुरूप जो दायित्व उनके ऊपर आया, उसका उन्होंने भली-भाँति निर्वाह किया।

16 अगस्त के प्रदर्शन के पूर्व ही पाकिस्तानी घुसपैठियों की गड़बड़ आरंभ हो गई थी। जनसंघ ने शासन से माँग की कि वह व्यामोह छोड़कर पाकिस्तान की चुनौती का सामना करे। उन्हें विश्वास दिलाया कि यदि वे पाकिस्तान के आक्रमण का मुक़ाबला करेंगे तो देश उनका साथ देगा और नहीं करेंगे तो देश उनको एक ओर छोड़कर अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता की रक्षा के लिए आगे बढ़ेगा।

प्रदर्शन का शासन की नीतियों पर अवश्य प्रभाव हुआ। दिनांक 19 अगस्त, 1965 को पाकिस्तान के विदेशमंत्री नई दिल्ली आनेवाले थे। भारत शासन ने उनको आने से मना कर दिया। पाकिस्तान के प्रति नीति में भी कुछ कड़ाई आई।

---

8. राम सेवक यादव (1926-1974) उत्तर प्रदेश के समाजवादी नेता थे। इन्होंने दूसरी, तीसरी तथा चौथी लोकसभा में बाराबंकी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया था।
9. जगदेव सिंह सिद्धांती (1900-1979) हरियाणा के प्रमुख आर्य समाजी नेता थे, बाद में गुरुकुल काँगड़ी के कुलपति रहे। इन्होंने पंजाब हिंदी रक्षा आंदोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया था। तीसरी लोकसभा में हरियाणा लोक समिति पार्टी के झज्जर से सांसद थे।
10. गौरीशंकर कक्कड़ ने 1962 के लोकसभा चुनाव में फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) से कांग्रेस उम्मीदवार तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री बी.वी. केशकर को बतौर निर्दलीय पराजित किया था।
11. कच्छ के रण में युद्ध को रोकने के लिए 30 जून, 1965 को संयुक्त राष्ट्र के तत्त्वावधान में भारत और पाकिस्तान के मध्य एक संधि पर हस्ताक्षर हुए थे। इस समझौते के तहत कच्छ के रण की 330 वर्ग मील ज़मीन पाकिस्तान को हस्तांतरण करने की बात कही गई थी।
12. माणिक्यलाल वर्मा (1888-1969) भारतीय संविधान सभा के सदस्य थे। 1952 में टोंक से तथा 1957 में चित्तौड़गढ़ से लोकसभा सदस्य रहे। राजस्थान में 1920 के दशक में हुए बिजौलिया किसान आंदोलन में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।
13. टीकाराम पालीवाल (1909-1995) राजस्थान के 1952 में मुख्यमंत्री रहे। तीसरी लोकसभा में हिंडोन सीट से निर्वाचित हुए थे।

प्रदर्शन के साथ ही इस बात की घोषणा की गई कि भारतीय सेनाओं ने कारगिल की चोटी पर स्थित चौकियों पर फिर से अधिकार कर लिया है।

दिनांक 17 और 18 अगस्त, 1965 को भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक दिल्ली में हुई। सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा शासन से माँग की कि वह पाकिस्तानी घुसपैठियों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए तथा कश्मीर के शेष भाग को मुक्त करने के लिए युद्धविराम रेखा, जिसे पाकिस्तान ने बेमानी बना दिया है, के पार सेना को जाने का आदेश दे। दिनांक 25 अगस्त को भारतीय सेनाओं ने युद्धविराम रेखा को पार कर पाक घुसपैठियों के आने के दो ठिकानों पर क़ब्ज़ा कर लिया। दिनांक 30 अगस्त को हाजी पीर दर्रे पर अधिकार किया गया।

प्रतिनिधि सभा की बैठक के बाद जनसंघ का एक शिष्टमंडल कश्मीर के सीमांत क्षेत्रों का दौरा करने के लिए गया। इसमें श्री बलराज मधोक के अतिरिक्त संसद् सदस्य श्री अटलबिहारी वाजपेयी, श्री बृजराज सिंह और श्री हुकुम चंद कछवाय तथा जम्मू कश्मीर जनसंघ के मंत्री और वहाँ के विधानसभा के सदस्य श्री ऋषिकुमार कौशल थे। वे छंब राजौरी तथा अखनूर के क्षेत्र में गए। वहाँ की जनता के मनोबल को बनाए रखने तथा संगठित होकर दृढता से आक्रमणकारियों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार करने में इस प्रवास का बहुत उपयोग हुआ। पुंछ और राजौरी के क्षेत्रों में भी वे जाना चाहते थे किंतु शासन की अनुमति नहीं मिल सकी।

उन्होंने अपने दौरे में अनुभव किया कि पाकिस्तान भारी आक्रमण की तैयारी कर रहा है तथा समय रहते भारत की सेना ने यदि प्रत्याक्रमण नहीं किया तो कश्मीर को बचाना मुश्किल हो जाएगा। तदनुसार उन्होंने भारत शासन से पग उठाने का आग्रह किया।

1 सितंबर, 1965 को पाकिस्तान ने छंब सीमा पर टैंकों और तोपों के साथ भारी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। अब यह स्पष्ट हो गया था कि पाकिस्तान बड़ी लड़ाई की तैयारी कर रहा था। छंब के क्षेत्र से नागरिकों को पीछे हटाया गया। जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने वहाँ काफ़ी सहयोग किया।

5 सितंबर, 1965 को पाकिस्तान ने अमृतसर पर हवाई हमला किया। एक नया मोरचा खुला। 6 सितंबर को भारतीय सेनाएँ लाहौर और स्यालकोट की ओर बढ़ीं। जनसंघ जिस रणनीति की माँग कर रहा था, उसका उस दिन आरंभ हुआ।

दिनांक 6 सितंबर को प्रधानमंत्री ने सर्वदलीय बैठक बुलाई। जनसंघ की ओर से श्री बच्छराज व्यास, श्री दीनदयाल उपाध्याय, श्री अटलबिहारी वाजपेयी

तथा श्री उमाशंकर त्रिवेदी आमंत्रित थे।[14] जनसंघ ने युद्ध प्रयासों में पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

संपूर्ण देश में भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ता युद्ध और नागरिक सुरक्षा के सभी प्रकार के कामों में आगे रहे। इन कार्यों का प्रतिवेदन काफ़ी लंबा होगा। निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

1. जम्मू और पंजाब के मोरचे पर सैनिकों को खाना पहुँचाना तथा कैंटीन चलाना।
2. पाक घुसपैठियों के छाताधारी सैनिकों को पकड़ने में पुलिस की सहायता करना।
3. रक्तदान के लिए स्वयंसेवक भेजना।
4. घायलों की शुश्रूषा के लिए महिलाओं को नर्सिंग के लिए जुटाना।
5. अस्पतालों को आवश्यक सामान इकट्ठा करके पहुँचाना।
6. दिल्ली में ट्रैफिक पुलिस का काम सँभालना।
7. स्थान-स्थान पर जवानों के लिए कैंटीन की व्यवस्था करना।
8. फौजी परिवारों की देखभाल करना तथा शहीदों के परिजनों का सार्वजनिक सम्मान करना।

जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने नागरिक सुरक्षा के कार्यों में पूरा हाथ बँटाया। गाँवों और मुहल्लों में सुरक्षा समितियों का गठन किया तथा रात्रि को पहरे की व्यवस्था की।

सुरक्षा सम्मेलन

देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जनता की संकल्प शक्ति को बनाए रखने और बढ़ाने तथा विभिन्न-सुरक्षा कार्यों के प्रति उसके उत्तरदायित्व की जानकारी देने के उद्देश्य से जनसंघ ने देश भर में सुरक्षा सम्मेलनों का आयोजन किया। यह प्रयत्न किया गया कि प्रत्येक विकास खंड के मुख्य केंद्रों पर इस प्रकार के सम्मेलन हों।

युद्धक्षेत्र से लगभग दो लाख लोग विस्थापित हुए थे। उनकी सहायता का

14. जनवरी 1965 में हुए जनसंघ के विजयवाड़ा अधिवेशन में बच्छराज व्यास को राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया गया था, जबकि दीनदयालजी पार्टी के महामंत्री थे, वहीं अटलजी तथा उमाशंकर त्रिवेदीजी संसद् सदस्य थे।

काम भी जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने किया। पंजाब, जम्मू, दिल्ली तथा देश के दूसरे भागों से कपड़े, रजाइयाँ, दवाइयाँ, दूध आदि इकट्ठा करके इन विस्थापितों के लिए भेजे गए।

जम्मू और कश्मीर में वहाँ की राज्य सरकार ने जम्मू क्षेत्र के विस्थापितों की किसी भी प्रकार की सहायता करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उनके प्रश्न को लेकर पं. प्रेमनाथजी डोगरा तथा दूसरे अन्य कार्यकर्ता कई बार केंद्रीय पुनर्वास मंत्री से मिले तथा उन्हें सरकारी सहायता भी दिलाई। अभी भी उनके पुनर्वास का प्रश्न बचा है।

श्री भैरों सिंह शेखावत ने बाड़मेर और जैसलमेर के मोरचे का व्यापक दौरा किया तथा वहाँ की समस्याओं को राज्य सरकार के सामने रखा। श्री नानाजी देशमुख ने असम का तथा श्रीरामप्रसाद दास ने पश्चिमी बंगाल के सीमांत क्षेत्रों का दौरा किया। श्री उमाशंकर त्रिवेदी, श्री स्वामी रामेश्वरानंद[15] और श्री अटलबिहारी वाजपेयी पंजाब के अग्रिम मोर्चों पर गए। श्री त्रिवेदी वहाँ सैनिकों के लिए दिल्ली के नागरिकों की ओर से भेंट भी ले गए। फिरोजपुर क्षेत्र में पंजाब के विधानसभा सदस्य श्री कुलबीर सिंह ने बहुत काम किया। अमृतसर में डॉ. बलदेव प्रकाश[16] तथा श्री बलरामजी टंडन[17] सभी नागरिक युद्ध प्रयासों के केंद्र थे।

जब संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव के युद्धबंदी के प्रयत्न प्रारंभ हुए तो उनके प्रत्येक प्रस्ताव की संभावनाओं को जनसंघ शासन और जनता के सामने रखता गया। प्रधानमंत्री द्वारा समय-समय पर आहूत विरोधी दलों के नेताओं की बैठकों में श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने उन सभी सुझावों का विरोध किया, जो केवल शांति के नाम पर युद्धबंदी की माँग करते थे। उन्होंने श्री शास्त्री से आश्वासन लिया कि भारत जम्मू और कश्मीर राज्य में किसी भी परिस्थिति में उन क्षेत्रों से नहीं हटेगा, जो उसने हाल के संघर्ष में पाकिस्तान से मुक्त किए।

भारतीय कार्यसमिति ने 27-28 सितंबर, 1965 को इस विषय में एक प्रस्ताव

---

15. स्वामी रामेश्वरानंद, भारतीय जनसंघ के करनाल (तब पंजाब) से तीसरी लोकसभा में सदस्य थे।
16. डॉ. बलदेव प्रकाश (1922-1992), पंजाब जनसंघ के 1964 से 74 तक अध्यक्ष थे। ये पंजाब विधानसभा के सदस्य (1957-69 और 1974-77) तथा 1967 में पंजाब सरकार में वित्त मंत्री रहे। बाद में छठे लोकसभा चुनाव (1977) में अमृतसर से चुने गए। 1992 में ये पंजाब से राज्यसभा सदस्य बने।
17. बलराम दास टंडन (जन्म 1927) भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य, पंजाब जनसंघ के कई वर्षों तक सचिव रहे। पंजाब विधानसभा में अमृतसर से पाँच बार सदस्य रहे एवं 1969-70 में राज्य के उपमुख्यमंत्री रहे। वर्तमान में छत्तीसगढ के राज्यपाल हैं।

द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि कश्मीर का सवाल किसी भी स्थिति में अमरीका अथवा रूस के दबाव में आकर भी पुनः न खोला जाए। पाकिस्तान की स्थिति एक आक्रमणकारी की है, उसके साथ उसी रूप में व्यवहार किया जाए तथा जो क्षेत्र अभी उसके ग़ैर-क़ानूनी अधिकार में है, उसे मुक्त कराने का प्रयत्न किया जाए।

ताशकंद वार्ता

भारत पाक संघर्ष के दिनों में ही 17 सितंबर, 1965 को रूस के प्रधानमंत्री ने यह प्रस्ताव रखा कि भारत और पाकिस्तान युद्ध बंद कर दें तथा रूस की भूमि में कहीं शीर्ष वार्त्ता करें। जनसंघ का अभिमत है कि किसी भी तीसरी शक्ति के हस्तक्षेप अथवा प्रभाव में भारत-पाक संबंध सामान्य नहीं हो सकते। अतः हमने इस प्रस्ताव को अमान्य करने की सलाह दी किंतु शासन ने उसे मान्य कर लिया। पाकिस्तान ने प्रारंभ में तो उसे नहीं माना पर बाद में वह भी मान गया। 3 और 4 दिसंबर, 1965 को बिहार प्रदेश जनसंघ द्वारा आयोजित सुरक्षा सम्मेलन के अवसर पर यह स्पष्ट कहा गया कि ताशकंद निमंत्रण स्वीकार कर एक भूल की थी तथा यह सुझाया गया कि पाकिस्तान के दृष्टिकोण में परिवर्तन न होने के कारण तथा उसके द्वारा अयुद्ध संधि का प्रस्ताव ठुकरा देने के कारण अभी बातचीत नहीं करनी चाहिए। शास्त्रीजी जाने से इनकार नहीं कर पाए। किंतु वे देश को यह स्पष्ट वचन दे गए थे कि वहाँ कश्मीर पर कोई बात नहीं होगी, भारत कश्मीर से पीछे नहीं हटेगा। वे अयुद्ध संधि पर ही बात करना चाहते थे।

ताशकंद समझौते की सूचना दिल्ली में आते ही श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने उसके विरोध में वक्तव्य दिया। दूसरे दिन प्रातः ही श्री शास्त्री के निधन का भी समाचार आ गया। फलतः ताशकंद समझौते का जनमानस में तथ्यगत विश्लेषण कठिन हो गया। भारतीय कार्यसमिति की दिनांक 15 और 16 जनवरी, 1966 को कानपुर में बैठक हुई। वहाँ ताशकंद घोषणा के विरोध में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दिनांक 6 फरवरी को हाजीपीर दिवस तथा दिनांक 5 से 11 फरवरी, 1966 तक ताशकंद घोषणा विरोधी सप्ताह मनाया गया। देश भर में सभाओं और प्रदर्शनों के कार्यक्रम हुए। संसद् भवन के समक्ष दिनांक 15 फरवरी को दिल्ली प्रदेश जनसंघ की ओर से एक प्रदर्शन का आयोजन किया गया।

चीन का मोरचा

भारत-पाक संघर्ष के दिनों में कम्युनिस्ट चीन ने भी दिनांक 16 सितंबर को भारत को अंतिमेत्थम दे दिया। यद्यपि यह कोरी धमकी थी, फिर भी दूसरा मोरचा खुलने की संभावनाएँ पैदा हो गई थीं। संघर्ष के विस्तार से कुछ लोग चिंतित भी थे। पाक और चीन समर्थक तत्त्वों ने इनका लाभ उठाने की कोशिश की। भारतीय जनसंघ ने इस भाव का निराकरण किया। श्री सुंदर सिंह भंडारी ने जयपुर से वक्तव्य देकर दोनों ही शत्रुओं का सफलतापूर्वक सामना करने का आत्मविश्वास प्रकट किया।

युद्धविराम के उपरांत भी कुछ तत्त्व चीन के साथ बातचीत द्वारा और समझौते की हवा पैदा करने की कोशिश करते रहे। जब तक चीन आक्रमणकारी के रूप में विद्यमान है यह नीति ठीक नहीं। श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने दिनांक 20 अक्तूबर, 1965 को 'एकता दिवस' पर नई दिल्ली में भाषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि न तो हमको चीन के साथ कोई बातचीत करनी चाहिए और न उसके राष्ट्र संघ में प्रवेश का समर्थन करना चाहिए। श्री बलराज मधोक ने एक पत्रकार सम्मेलन में तिब्बत की स्वतंत्रता तथा दलाई लामा की सरकार को मान्यता देने की माँग की।

खाद्य समस्या

खाद्य समस्या पिछले कुछ वर्षों से विषम है। वर्षा की कमी के कारण पिछली खरीफ की फ़सल बहुत जगह मारी गई। पैदावार की कमी के साथ-साथ पाकिस्तान के साथ संघर्ष के दिनों में पाश्चात्य देशों द्वारा आर्थिक सहायता बंद कर देने के कारण आयात भी संदेहास्पद हो गया। विभिन्न राज्यों की क्षेत्रीय व्यवस्था, दूसरे नियंत्रण तथा लेवी की पद्धतियों ने वितरण व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। फलतः सभी ओर समस्या बढ़ गई। विजयवाड़ा अधिवेशन में पारित अर्थ-नीति के प्रस्ताव में खाद्य नीति के संबंध में माँग की थी कि जोन (क्षेत्र) तोड़ दिए जाएँ। खाद्य निगम एक प्रतिस्पर्धी व्यापारी के नाते सभी राज्यों में काम करे, एकाधिकार किसी का न हो, लेवी प्रथा ख़त्म की जाए। किसान को प्रोत्साहक मूल्य दिए जाएँ तथा सरकारी कर्मचारियों और मज़दूरों को सस्ते भाव पर जीवनोपयोगी वस्तुएँ देने की व्यवस्था हो। संपूर्ण देश में एक ही खाद्य नीति की भी माँग की गई। इन सामान्य नीतियों के अंतर्गत स्थान-स्थान पर जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने विभिन्न प्रकार के आंदोलन किए। इनमें सभा, प्रदर्शन, उपोषण, सत्याग्रह आदि सभी का समावेश है। लेवी समाप्त करने के लिए भी किसानों के सम्मेलन अनेक राज्यों में किए गए।

युद्ध के दिनों में जनसंघ ने सप्ताह में एक विजय व्रत का सुझाव रखा, जिसका बहुत लोगों ने पालन किया। किसानों को युद्ध प्रयास के अंग के रूप में बाज़ारों में अनाज लाने के लिए प्रेरित किया गया। इस धान्य प्रदान कार्यक्रम की भी अच्छी प्रतिक्रिया हुई। इसी प्रकार अधिक अन्न उपजाऊ आंदोलन में भी जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने पूरा सहयोग दिया।

पंजाबी सूबा

पंजाबी सूबे की माँग विभिन्न रूपों में बहुत दिनों से चल रही थी। भारतीय जनसंघ का मत रहा है कि सन् 1947 में बँटवारे के बाद पंजाब पहले ही छोटा हो गया है, उसका बँटवारा वहाँ की जनता के हित में नहीं होगा। विभिन्न आयोग भी इसी मत के रहे। पिछले वर्ष शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंध कमेटी के चुनावों को लेकर यह माँग फिर से बल पकड़ गई। कांग्रेस ने भी अपने राजनीतिक स्वार्थों को ध्यान में रखकर उसको सहारा दिया। संत फतेह सिंह ने अनशन तथा आत्माहुति की धमकी दी। यह वही काल था जब पाकिस्तान के साथ संघर्ष प्रारंभ हुआ था। भारत शासन ने हिम्मत से काम लेने के स्थान पर संतुष्टीकरण से काम लिया। प्रतीत होता है कि केंद्रीय नेताओं ने संत फतेह सिंह[18] को कोई गुप्त आश्वासन दिए, कारण उन्होंने अपना अनशन का विचार त्याग दिया। वैसे पाकिस्तान के साथ संघर्ष की स्थिति में सिख जनता ने संतजी के विचार को कतई पसंद नहीं किया। युद्धबंदी के साथ ही गृहमंत्री ने पंजाबी सूबे का विचार करने के लिए एक कमेटी लोकसभा के अध्यक्ष सरदार हुक्म सिंह की अध्यक्षता में बनाने की घोषणा कर दी। कमेटी जैसी बनी उसका श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने विरोध किया। पंजाब जनसंघ ने पंजाब की एकता का समर्थन किया। राज्य सरकार और पंजाब कांग्रेस भी इस मत की थी। दिनांक 9 मार्च, 1966 से श्री यज्ञदत्त शर्मा पंजाब की एकता के लिए अमृतसर में अनशन पर बैठ गए। उसी दिन रात्रि को कांग्रेस कार्यसमिति ने पंजाबी भाषा के आधार पर पंजाब के पुनर्गठन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलत: पंजाब में भारी प्रतिक्रिया हुई। जगह-जगह हड़ताल और प्रदर्शन हुए। पुलिस का दमनचक्र शुरू हुआ। अनेक लोग गोली के शिकार हुए। लगभग तीन हज़ार लोग बंदी बनाए गए।

---

18. संत फतेह सिंह (1911-1972) सिख धार्मिक और राजनीतिक नेता, जिन्होंने अलग पंजाबी सूबा के लिए आंदोलन किया था। इन्होंने 1960, 1965 तथा 1966 में कई दिनों तक आमरण अनशन के जरिए भयादोहन कर केंद्र सरकार को अपनी माँगें मनवाने पर मजबूर किया था।

पंजाब के आसपास के क्षेत्रों में भी यह आंदोलन फैला। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक नगरों में हड़ताल रही, दिल्ली में भी हड़ताल हुई।

संपूर्ण आंदोलन में कहीं भी सांप्रदायिक घटना नहीं हुई। फिर भी कुछ तत्त्व सक्रिय थे। वे आंदोलन को ग़लत दिशा देना चाहते थे। पंजाब के राष्ट्रीय नेता इस दृष्टि से विशेष बधाई के पात्र हैं कि जनभावनाओं के इतना प्रक्षुब्ध होने पर भी उन्होंने इतना नियंत्रण रखा कि इसमें कोई अप्रिय सांप्रदायिक घटना नहीं हो पाई।

श्री यज्ञदत्तजी शर्मा की चिरायु की प्रार्थना के लिए दिनांक 16 मार्च को देश भर में प्रार्थना दिवस का आयोजन किया गया।

पंजाब जनसंघ के नेताओं तथा एकता समिति के नेताओं के साथ केंद्रीय शासन की जो बातचीत हुई, उसमें सरकार ने यह आश्वासन दिया कि—

1. पंजाब का पुनर्गठन केवल भाषाई आधार पर ही होगा, उसमें कोई भी मजहबी अथवा सांप्रदायिक हेतु नहीं रहेगा।
2. पुनर्गठित राज्यों के बीच ज़्यादा-से-ज़्यादा एकता के सूत्र रखे जाएँगे।
3. भाषाई या अन्य अल्पमतों को सभी संवैधानिक संरक्षण प्राप्त होंगे।

इन आश्वासनों के बाद श्री यज्ञदत्त शर्मा ने अपना अनशन छोड़ दिया। अनशन समाप्ति के बाद पंजाब के विभिन्न नगरों की हड़ताल भी समाप्त हो गई। किंतु सरकारी दमनचक्र अभी बंद नहीं हुआ है। यद्यपि अधिकांश नज़रबंद छोड़ दिए गए हैं, किंतु फिर भी स्थान-स्थान के प्रमुख समाजसेवी कार्यकर्ताओं और गणमान्य व्यक्तियों को पुलिस विभिन्न मुक़दमों में फँसाने के चक्कर में है। वे अभी ज़ेल में ही हैं। पुलिस अत्याचारों की जाँच की माँग शासन ने नहीं मानी है। केंद्रीय बार एसोसिएशन ने तीन भूतपूर्व न्यायाधीशों का एक स्वतंत्र जाँच कमीशन नियुक्त किया है। इसमें इलाहाबाद हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री सी.बी. अग्रवाल (प्रधान), राजस्थान हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री सरजू प्रसाद तथा असम हाईकोर्ट के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रामलुभाया हैं।

पाक घुसपैठियों की समस्या

पाकिस्तान से योजनापूर्वक भेजे गए घुसपैठियों का प्रश्न भारत की सुरक्षा तथा शांति और व्यवस्था के लिए संकट और चिंता का कारण है। लड़ाई के दिनों में कश्मीर में उनके द्वारा की गई कार्रवाई से देश परिचित हो चुका है। किंतु उनका संकट अभी समाप्त नहीं हुआ, वे सभी सीमांत क्षेत्रों में न्यूनाधिक मात्रा में सक्रिय

हैं। असम, त्रिपुरा और बंगाल में उनकी संख्या बहुत ज़्यादा है। जनसंघ ने इस प्रश्न को सबसे पहले उठाया। फरवरी, 1965 में असम जनसंघ ने 'असम बचाओ' आंदोलन करके इन तत्त्वों की ओर शासन और जनता का ध्यान खींचा। शायद इसी कारण युद्ध के समय वे कोई बड़े पैमाने पर गड़बड़ नहीं कर पाए।

युद्धबंदी के बाद कश्मीर सरकार ने उन लोगों को मुक्त रूप से भारत में प्रवेश करने दिया, जो युद्धकाल में पाकिस्तान से मिल गए थे तथा वहाँ चले गए थे। जिन्होंने घुसपैठियों के साथ मिलकर काम किया, उनको भी बढ़ावा दिया जा रहा है। भारतीय जनसंघ ने इस नीति के विरुद्ध आवाज उठाई है तथा केंद्र शासन को इस विषय में एक ज्ञापन भी दिया है।

राजस्थान की सीमा पर भी पीरपगारों के शिष्यों तथा अन्य पाकिस्तानी तत्त्वों के विरुद्ध जनसंघ के प्रदेश कार्यकर्ताओं ने शासन से सुरक्षात्मक कार्रवाई की माँग की है।

हिंदू विश्वविद्यालय विधेयक

राज्यसभा में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय विधेयक पर विचार करते समय शासन द्वारा एक संशोधन स्वीकार कर विश्वविद्यालय के नाम से 'हिंदू' शब्द हटाने का निर्णय ले लिया गया। स्वाभाविकतः इसकी देशव्यापी प्रतिक्रिया हुई। बनारस तथा उत्तर प्रदेश के दूसरे नगरों में तो विद्यार्थी आंदोलन अत्यधिक उग्र रूप धारण कर गया। जनसंघ की विभिन्न शाखाओं ने सभाओं का आयोजन करके शासन के इस निर्णय का विरोध किया।

काशी विश्वविद्यालय में पुलिस कांड

3 फरवरी, 1966 को काशी विश्वविद्यालय में एक अप्रिय घटना हो गई। एक पुलिस ट्रक दो छात्रों से टकरा गया, जिनमें एक की तुरंत मृत्यु हो गई। इससे छात्रों में कुछ उत्तेजना आई किंतु विश्वविद्यालय अधिकारियों ने शांत कर दिया। पर कुछ देर बाद पुलिस ने भारी संख्या में विश्वविद्यालय में प्रवेश कर छात्रों तथा अन्य व्यक्तियों पर अंधाधुंध तथा अमानुषिक रूप से लाठी चार्ज किया। इस समाचार से संपूर्ण प्रदेश में रोष की लहर दौड़ गई। स्थान-स्थान पर विरोध प्रदर्शन हुए। उत्तर प्रदेश जनसंघ के विधानसभा के सदस्य काशी गए। उन्होंने स्थिति की जाँच की तथा इस प्रश्न को प्रभावी रूप से विधानसभा में रखा।

वनवासियों की दुर्दशा

वनवासियों के लिए संविधान में विशेष व्यवस्था होने के उपरांत भी शासन की जंगल क़ानून, भूमि तथा अन्य नीतियों के परिणामस्वरूप उनकी हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। उनकी रोजी छिनती जा रही है तथा वे अधिकाधिक शोषण का शिकार बनते जा रहे हैं। भारतीय जनसंघ उनकी अवस्था सुधारने के लिए प्रयत्नशील है। महाराष्ट्र में ठाणे, धूले और चंद्रपुर ज़िलों में वनवासी सम्मेलनों का आयोजन कर उनकी माँगों को शासन के सम्मुख रखा। मध्य प्रदेश में जनसंघ संसद् सदस्य श्री रामचंद्र विट्ठल बड़े वनवासी आंदोलन के केंद्र हैं। इस वर्ष वहाँ के शासन ने वन विधान में संशोधन कर वनवासियों के अधिकार और सुविधाओं को समाप्त करने का निर्णय लिया। जनसंघ ने उनके विरुद्ध आंदोलन किया। लगभग पचास हज़ार वनवासियों के हस्ताक्षर से याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं। श्री बड़े तथा खरगोन ज़िले के जनसंघ के विधायकों के नेतृत्व में वनवासियों ने भोपाल में विधानसभा के समक्ष सत्याग्रह भी किया। 13 अप्रैल, 1965 को प्रदेश भर में किसानों और वनवासियों के सम्मेलनों एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया गया।

बस्तर कांड

26 मार्च, 1966 को मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री द्वारका प्रसाद मिश्र ने विधानसभा को सूचित किया कि जगदलपुर में बस्तर के भूतपूर्व महाराज श्री प्रवीरचंद्र भंजदेव और दूसरे बारह व्यक्ति महल में मरे हुए पाए गए। उन्होंने संपूर्ण स्थिति की जाँच करने के लिए मध्य प्रदेश हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री कन्हैयालाल पांडे का एक सदस्यीय कमीशन नियुक्त करने की भी घोषणा की। वक्तव्य के कारण संपूर्ण स्थिति पर एक रहस्य का परदा पड़ गया। किंतु ज्यों-ज्यों समाचार बाहर आए, उनमें पता चला कि श्री भंजदेव और उनके साथी पुलिस की गोलियों का शिकार हुए। बस्तर में महाराजा के कारण कांग्रेस की तथा ईसाई मिशनरियों की दाल नहीं गल पाती थी। जनमत का संदेह है कि बस्तर कांड इन दो शक्तियों के सम्मिलित षड्यंत्र का परिणाम है, बस्तरवासियों की समस्याओं की ओर भारतीय जनसंघ बराबर शासन का ध्यान आकृष्ट करता रहा है। मई 1965 में जनसंघ के सदस्य श्री रामचंद्र विट्ठल बड़े ने बस्तर का दौरा किया। वहाँ की हालत के बारे में उन्होंने प्रदेश और केंद्र सरकारों को सूचित किया, किंतु वनवासियों की समस्याओं का समाधान करने के स्थान पर शासन का दमनदुधारा ही चलाया गया। सरकार

द्वारा लेवी की वसूली में ज्यादती, दुर्भिक्ष में अन्न की कमी, दंडकारण्य योजना के कारण वनवासियों से ज़मीन लेकर विस्थापितों को देने से उत्पन्न भेदभाव, वनवासियों की धार्मिक विधि में पुलिस का हस्तक्षेप, महाराजा प्रवीरचंद्र के प्रति शासन का अन्याय, कांग्रेस तथा शासकीय कर्मचारियों का भ्रष्टाचार एवं असहानुभूति पूर्ण बरताव वे प्रमुख कारण हैं, जिनसे वनवासियों का असंतोष दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। शासन ने असंतोष का जो इलाज किया, वह सबके सामने है।

बस्तर कांड के बाद मध्य प्रदेश जनसंघ ने संपूर्ण प्रदेश में 1 अप्रैल को बस्तर दिवस मनाया। श्री रामचंद्र विट्ठल बड़े ने जगदलपुर का दौरा किया तथा संपूर्ण जानकारी लोकसभा को दी। श्री वीरेंद्र कुमार सक्लेचा[19] के संयोजकत्व में विरोधी दलों के नेताओं के साथ राष्ट्रपति से भी मिले तथा उन्हें ज्ञापन दिया। अखिल भारतीय संगठन मंत्री श्री सुंदर सिंह भंडारी[20] भी बस्तर का दौरा करके अभी आए हैं।

झुग्गी-झोंपड़ी सम्मेलन

झुग्गी-झोंपड़ी की समस्या सभी बड़े शहरों की समस्या है। इन बस्तियों में रहनेवाले सभी सामान्य सुविधाओं से वंचित नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं।

इन्हें सुविधा देने अथवा इनको ढंग के मकानों और बस्तियों में बसाने के स्थान पर शासन 'स्लम क्लीयरेंस' के नाम पर इन्हें उजाड़ने और सताने की नीति अपनाता रहा है। भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने इन पीड़ित बंधुओं के बीच काम प्रारंभ किया है। जनसंघ का दृष्टिकोण रचनात्मक है। बंबई में दिनांक 30-31 मई, 1965 को एक परिषद् का आयोजन हुआ। सरकारी आधार पर उनके मकान बनाने की भी योजना है। दिल्ली में भी कार्यकर्ता इस क्षेत्र में सक्रिय हैं।

यह वर्ष अत्यंत घटनापूर्ण रहा है। एक के बाद एक महत्त्व के आंदोलनों और कार्यक्रमों का ताँता लगा रहा है। अतः संपूर्ण देश में एक निश्चित अवधि में अभियान लेकर संगठन का काम संभव नहीं हुआ है। फिर भी प्रत्येक कार्यक्रम में कार्यकर्ताओं ने संगठन के विस्तार और दृढीकरण का ध्यान रखा है और इसलिए कुल मिलाकर वर्ष में संगठन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बड़ी प्रगति हुई है। जनसंघ की रीति, नीति

19. वीरेंद्र कुमार सक्लेचा (1930-1999) मध्य प्रदेश जनसंघ के नेता तथा विधानसभा सदस्य थे, बाद में राज्य के मुख्यमंत्री (1978-80) रहे।
20. सुंदर सिंह भंडारी (1921-2005) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक तथा भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य। राज्यसभा के तीन बार सदस्य रहे (1966 में राजस्थान से तथा 1976 और 1992 में उत्तर प्रदेश से)। बाद में बिहार व गुजरात के राज्यपाल रहे।

और परिस्थिति, सबका हमारे इस विस्तार में अनुकूल योगदान हुआ है।

इस वर्ष जनसंघ के प्राथमिक सदस्यों की संख्या बारह लाख छियासी हज़ार तीन सौ चौदह है। पिछले वर्ष यह चार लाख नौ सौ नब्बे थी। कुछ क्षेत्रों में सदस्य भरती बहुत व्यापक पैमाने पर की गई। देवरिया ज़िले के अध्यक्ष श्री मंगल मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने स्वयं अपने प्रयास से चार हज़ार पाँच सौ सदस्यों की भरती की। ऐसा कोई दिन नहीं गया, जिस दिन उन्होंने सदस्य भरती का कार्यक्रम न किया हो। बंबई के डॉ. अग्रवाल ने भी दो हज़ार पाँच सौ के ऊपर सदस्य बनाए, यदि उनके प्रयास का अन्य कार्यकर्ता अनुकरण करें तो हमारी सदस्यता सहज ही दस गुनी हो सकती है।

स्थानीय समितियों की संख्या पिछले वर्ष की पाँच हज़ार पाँच सौ सोलह से बढ़कर बारह हज़ार दो सौ तैंतीस हो गई है। सघन मंडलों में कम-से-कम 75 प्रतिशत केंद्रों पर स्थानीय समितियाँ बनाने का लक्ष्य रखा था। कुछ मंडलों ने यह पूरा कर लिया है। शेष को अभी पूरा करना है।

पिछले वर्ष आठ सौ नब्बे समितियाँ बनी थीं। इस वर्ष एक हज़ार पाँच सौ छब्बीस मंडल बन चुके हैं। छह सौ इकतीस मंडल ऐसे हैं, जहाँ जनसंघ का काम है तथा स्थानीय समितियाँ हैं, किंतु मंडल समिति का गठन नहीं हुआ। देश में कुल तीन सौ उनतालीस ज़िले हैं। जनसंघ का काम दो सौ चौंसठ ज़िलों में है, दो सौ एक में विधिवत् समितियाँ गठित हो चुकी हैं।

इस वर्ष हिमाचल प्रदेश का अलग से संगठन किया गया।

पिछले वर्ष के निर्णयानुसार इस वर्ष प्रदेश तथा ज़िला स्तर पर बड़े-बड़े अधिवेशनों की योजना थी। प्राय: सभी प्रदेशों में अधिवेशन हुए हैं। महाराष्ट्र में ज़िला अधिवेशन भी बड़े आधार पर किए गए।

दिल्ली और बंबई में चार-चार दिनों की व्याख्यानमाला 'एकात्म मानववाद' पर आयोजित हुई।

महाराष्ट्र प्रदेश जनसंघ ने संशोधन एवं अध्ययन की दृष्टि से एक 'राज्यशास्त्र एवं अर्थशास्त्र विभाग' की भी स्थापना की है।

महाराष्ट्र का कलापथक प्रत्येक ज़िले में इकाइयाँ बनाने के लिए प्रत्यनशील है।

महिलाओं में भी इस कार्य का काफ़ी विस्तार हुआ है। प्रत्येक प्रांत में एक महिला कार्यकर्ता को इस मोरचे का दायित्व सौंपने का प्रयास किया जा रहा है।

इस अवधि में प्रधान मा. बच्छराजी व्यास, संगठन मंत्री श्री सुंदर सिंह भंडारी तथा मंत्री श्री जगन्नाथराव जोशी[21] ने व्यापक रूप से अधिकांश प्रांतों का दौरा किया। अन्य व्यक्ति प्रांत केंद्रों का दौरा कर चुके हैं। श्री नानाजी देशमुख को चुनाव योजना का दायित्व सौंपा गया है। वे भी इस निमित्त विभिन्न प्रांतों का दौरा करके कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श कर चुके हैं।

निधि संग्रह

निधि संग्रह के अभियान न्यूनाधिक मात्रा में सभी प्रांतों में लिए गए, कुछ प्रदेशों में थैली भेंट के कार्यक्रम हुए। संगृहीत राशि का विनियोग प्रदेश कार्य समितियों की व्यवस्था अनुसार स्थानीय आधार पर हुआ है।

चुनाव

इस अवधि में पाकिस्तान के साथ युद्ध के कारण विशेष उपचुनाव नहीं हुए। युद्ध के पूर्व हुए उपचुनावों में हमने बाँसी (उत्तर प्रदेश) तथा जबलपुर (मध्य प्रदेश)के विधानसभा के उपचुनाव लड़े। बाँसी में हम विजयी हुए। यह स्थान हमने कांग्रेस से जीता। जबलपुर का स्थान कांग्रेस का था। वहाँ हम विजयी तो नहीं हुए, किंतु सन् 1962 की तुलना में इस बार हमें सात हज़ार वोट अधिक मिले। अब वहाँ जनसंघ और कांग्रेस की ही टक्कर रह गई है।

केरल के मध्यावधि चुनाव में जनसंघ ने सोलह स्थानों पर चुनाव लड़ा। मतों की दृष्टि से काफ़ी बढ़ने पर भी हम कोई स्थान नहीं ले सके।

राज्यसभा के द्विवर्षीय चुनावों में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान से सर्वश्री निरंजन वर्मा, कुंजबिहारी लाल राठी तथा सुंदर सिंह भंडारी चुनकर आए। राजस्थान में स्वतंत्र दल के साथ दो वर्ष पूर्व हुए चुनाव समझौते के अनुसार, जिसका उन्होंने पूरी तरह पालन किया, सफलता मिली।

विधान परिषद् के द्विवर्षीय चुनावों में उत्तर प्रदेश में श्री शिवप्रसाद सिंह एवं डॉ. पुरुषोत्तमदास कपूर विधानसभा क्षेत्र से चुने गए हैं। पंजाब के श्री धर्म सिंह भी पंजाब विधानसभा क्षेत्र से निर्वाचित हुए हैं। पंजाब के उत्तरी स्नातक क्षेत्र से श्री मुरारीलाल कपूर भी भारी बहुमत से जीते हैं।

---

21. जगन्नाथ राव जोशी 'कर्नाटक केसरी' (1920-1991) ने गोवा को पुर्तगालियों के चंगुल से मुक्त कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, दक्षिण भारत में जनसंघ के विस्तार में इनका योगदान अभूतपूर्व था। 1967 में भोपाल से तथा 1971 में शाजापुर से जीत दर्ज कर लोकसभा सदस्य बने थे।

अभी कई क्षेत्रों में चुनाव होने हैं। इनमें कुछ स्थानों पर जनसंघ के प्रत्याशी चुनाव लड़ रहे हैं।

विधानमंडल दल

इस वर्ष राज्यसभा के सदस्य श्री गिरिराज किशोर कपूर का निधन हो गया। श्री अजीत प्रताप सिंह (उत्तर प्रदेश) तथा श्री लहरी सिंह (पंजाब) ने त्यागपत्र दे दिया। राज्यसभा में तीन नए सदस्य चुनकर आए। अत: जनसंघ के लोकसभा में ग्यारह तथा राज्यसभा में छह सदस्य हैं।

उत्तर प्रदेश विधान सभा में तीन हिंदू सभाई सदस्यों ने पिछले वर्ष विधानमंडल दल की सहयोगी सदस्यता स्वीकार की थी। इस वर्ष उन्होंने स्वतंत्र रूप से विधान सभा में बैठने का निर्णय किया है।

विधान परिषद् की संख्या पाँच हो गई है।

मध्य प्रदेश में हिंदू सभा के दो तथा बस्तर से स्वतंत्र छह निर्वाचित सदस्य जनसंघ में सम्मिलित हो गए हैं। अत: वहाँ के विधानसभा दल की संख्या चवालीस है। पंजाब विधानसभा में सात सदस्य हैं। विधान परिषद् की संख्या तीन से बढ़कर पाँच हो गई है।

महाराष्ट्र विधान परिषद् में जनसंघ के टिकट पर चुने पाँच सदस्य हैं। अन्य पाँच सदस्य जनसंघ के समर्थन से स्वतंत्र रूप से चुने आए हैं। दोनों को मिलाकर दस सदस्य वहाँ राष्ट्रीय लोकतंत्र मोरचे के नाम से काम कर रहे हैं।

आंध्र में विधान परिषद् में दो सदस्य हैं।

बिहार में विधानसभा की सदस्य संख्या पूर्ववत् चार है।

संसद् और राज्य विधानमंडलों में जनसंघ के सदस्य बराबर सभी जन महत्त्व के प्रश्नों को उठाते तथा जनसंघ के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते रहे हैं। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में विरोध पक्ष का भार भलीभाँति निबाहा है।

इस वर्ष मध्य प्रदेश विधान सभा में श्री पंढरीराव कृदंत द्वारा उपाध्यक्ष की ओर जूता फेंकने की अशोभनीय घटना हुई। किसी भी शांत एवं संयमशील व्यक्ति को उत्तेजित और क्षुब्ध हो जाने के लिए पर्याप्त कारण होते हुए भी यह काम नहीं करना चाहिए, जो संसदीय परंपरा तथा जनसंघ द्वारा निर्णीत आचार संहिता के प्रतिकूल है।

स्थानीय निकाय

स्थानीय निकायों के चुनाव भी पाकिस्तान के साथ संघर्ष के कारण स्थगित कर दिए गए। संघर्ष के पूर्व कलकत्ता कॉरपोरेशन के चुनाव में जनसंघ को दो स्थान प्राप्त हुए। कलकत्ता में डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद यह जनसंघ की पहली विजय है। पश्चिमी बंगाल में बुरहामपुर (7), काँदी (2), सिलीगुड़ी (1) तथा कूच बिहार में भी (1) जनसंघ के प्रत्याशियों की विजय हुई।

उड़ीसा में झारसूगड़ा में तीन स्थानों पर जनसंघ ने विजय प्राप्त की।

बिहार में कटिहार में (5), फॉरबिसगंज में (3), भागलपुर में (1) और राँची में (4) तथा जमालपुर में (5) स्थान मिले।

गुजरात में लींबड़ी में (5) जनसंघ तथा (5) जनसंघ समर्थित स्वतंत्र, बढ़वान में (2), सिद्धपुर में (4), काडी में (1), बीरसद में (2), दमोई में (2) तथा विसनगर में (3) स्थानों पर जनसंघ की विजय हुई। मध्य प्रदेश में सीहोर में (9) तथा महाराजपुर में (9) स्थान मिले। इसी प्रकार नलखेड़ा में (3) और देवालपुर में (4) स्थान जीतकर नगरपालिकाओं में बहुमत प्राप्त किया। जावद और सुसनेर में हमारा बहुमत जाता रहा। पालघाट (केरल) में एक उपचुनाव में हमारी विजय हुई। उत्तर प्रदेश में नगरपालिकाओं के चुनाव नामांकन के बाद स्थगित कर दिए। इसी प्रकार महानगरपालिकाओं में भी चुनाव बार-बार टाले गए और अंत में सबको भंग करके प्रशासक के अधीन कर दिया है। इस सब में कांग्रेस को नगर प्रमुख के चुनाव में हार खानी पड़ी थी।

आगामी चुनाव

आगामी चुनाव की तैयारी सभी प्रदेशों में हो रही है। दिनांक 17-18 अगस्त, 1965 को नई दिल्ली में हुई प्रतिनिधि सभा की बैठक में ज़िला मंत्रियों ने इस विषय में जो विचार दिया, उसके अनुसार उस समय तक लोकसभा के दो सौ बारह तथा विधान सभा के एक हज़ार चार सौ चौरासी स्थानों पर लड़ने का निर्णय ज़िला स्तर पर हो चुका था। अब तक इस संख्या में और वृद्धि हुई है।

राजनीति की दिशा

पाकिस्तान के साथ युद्ध का बाईस दिन का स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास में एक गौरवपूर्ण अध्याय है। भारत शासन ने एक साहसपूर्ण पग का निर्णय लिया।

सेना और जनता सबने कार्यान्वित किया। इस अवसर पर देश को अपनी शक्ति और कमजोरियों का ज्ञान हुआ। शत्रु और मित्र का पता चला। स्वाभिमान और स्वावलंबन जागा। स्वप्नलोक में उतरकर ठोस ज़मीन पर चलने और दूर की मंज़िल तय करने की महत्त्वाकांक्षा जागी। भारतीय जनसंघ की विचारधारा देश की विचारधारा बन गई।

युद्धबंदी, ताशकंद समझौता तथा श्री लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद स्थिति में परिवर्तन हुआ है। हमारी विजयी सेना हाजीपीर और कारगिल की चोटियों से पीछे तो हट गई है, किंतु देश दु:खी है। पराक्रम पर पानी फिर जाने से मन में कुंठा घर कर गई है। अर्थ-व्यवस्था में उत्पन्न तनाव तथा खाद्य समस्या के विफलता ने जले पर नमक छिड़कने का काम किया है। शासन की गुटबंदी, कमजोरी और विभ्रम के कारण नेतृत्व पर से विश्वास उठ गया है। विश्वास शून्यता और हताशा की अँधियारी में कम्युनिस्ट पार्टी जनविक्षोभ उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही है। दूसरे वामपंथी दल भी, उनके पास अपनी कोई नीति या सिद्धांत संबंधी श्रद्धा न होने के कारण कम्युनिस्टों की चाल में फँस रहे हैं। केरल, बंगाल में जो कुछ बड़े पैमाने पर हुआ है, वह सभी जगह दुहराने की योजना है। संकटकाल के नाम पर उपचुनावों तथा दूसरे चुनावों को टालने के कारण जनमत के प्रकटीकरण का प्रजातांत्रिक मार्ग बंद हो गया। शासन की हठधर्मी ने विधानमंडलों को भी आंदोलन का अखाड़ा बना दिया है। हिंसा के सामने झुकने और शांतिपूर्ण प्रयत्नों की अवहेलना और उपहास करने से जनमत में हिंसा और तोड़फोड़ के मार्ग की प्रभावशीलता के बारे में विश्वास जम गया है। यह प्रजातंत्र के लिए अत्यंत ही चिंता का कारण है।

मैंने सुझाव रखा कि प्रधानमंत्री सभी दलों की एक बैठक बुलाएँ तथा राष्ट्रीय एकता के समान ही एक परिषद् बनाकर प्रजातंत्र की परंपरा को बनाए रखने और दृढ करने के लिए प्रयत्न करें। शासन, राजनीतिक दल तथा समाचार-पत्र सबके लिए एक आचार संहिता बनाई जाए। शासन को ऐसी किसी प्रक्रिया का बंधन स्वीकार करना होगा, जिससे एक आम चुनाव और दूसरे आम चुनाव के बीच जनमत के परिवर्तन के आधार पर वह अपनी नीतियाँ बदले। प्रजातंत्र और हठधर्मी दोनों साथ ही नहीं चल सकते।

प्रधानमंत्री ने इस प्रस्ताव पर कोई विचार नहीं किया। संभवत: आज उनके हाथ में इतनी शक्ति नहीं कि वे इस प्रकार की किसी व्यवस्था की नींव रख सकें।

यह भी हो सकता है कि दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई अलोकप्रियता के कारण चुनावों में विजय संदेहास्पद होने से कांग्रेस का भी अप्रजातंत्रीय मार्गों में एक निहित स्वार्थ विकसित हो रहा है। इस बात के भी संकेत हैं कि केंद्र पर दबाव डालने के लिए प्रांतीय सरकारें इन हिंसात्मक आंदोलनों को दबाना तो दूर, उल्टे कुछ अंश तक आँख बंद करके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहायता ही करती हैं। यह अवस्था प्रजातंत्र और राष्ट्रीय एकता दोनों के लिए घातक है।

राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र में श्रद्धा रखनेवालों के लिए चुनौती है। उन्हें संगठित होकर इसका मुक़ाबला करना होगा। भारतीय जनसंघ इन आधारभूत मान्यताओं का प्रतिनिधि संगठन है। हमें इस संघर्ष के हरावल में रहना होगा। जनसंघ आगे बढ़ा है। अच्छे-अच्छे विचारवान और प्रतिष्ठित व्यक्ति इस संगठन के अंग बने हैं। अनेकों हमारी बाट जोह रहे हैं। आवश्यकता है कार्यकर्ता उनके पास जाएँ और उन्हें साथ लेकर विराट् को जाग्रत् करें। इस वर्ष कई प्रांतों में विशेषकर महाराष्ट्र में काफ़ी कार्यकर्ता निकले हैं, जो कम-से-कम एक से लेकर दो वर्ष तक अपने घर-बार की चिंता न करते हुए जनसंघ के माध्यम से ही अलख जगाएँगे। एक पखवाड़ा या महीना देनेवाले कार्यकर्ताओं की संख्या तो सहस्रों में पहुँच रही है। हर रोज अपना काम काज करके जनसंघ का काम भी अधिक समय लगाकर लोग कर रहे हैं। इस अध्यवसायी एवं त्यागी कार्यकर्ताओं की पंक्ति में अधिकाधिक कार्यकर्ताओं को आकर खड़ा होना होगा।

'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्मयाचरेत' के नीतिवाक्य का अनुसरण कर हम धर्माचरण करें। आज का अँधियारा निश्चित ही रात्रि के आख़िरी प्रहर का अंधकार सिद्ध होगा, भारतीय राष्ट्रीयता का सूर्योदय सन्निकट है।

—जय भारत—

— अप्रैल 30, 1-2 मई, 1966



16

भारतीय जनसंघ के सत्र में विचार-विमर्श, उपाध्याय ने प्रस्ताव बढ़ाया

प्रस्ताव की महत्ता इस बात से भी समझ में आती है कि प्रस्ताव महामंत्री दीनदयालजी ने खुद पेश किया और इसका अनुमोदन वीर यज्ञ दत्त शर्माजी ने दि्ज्या किया, जो कि पंजाब जनसंघ के मंत्री और हाल के आंदोलन के मुखिया थे। प्रस्ताव में कहा गया।

भागीरथी प्रयासों का स्वागत है

पंजाब को विभाजित करने का निर्णय 'बहुत दुर्भाग्यपूर्ण' था, और यह 'सरकार के द्वारा निर्धारित नीति, उसके वादों, विशेषज्ञों की राय और जनता की इच्छा के ख़िलाफ़' जाता था।

जनसंघ ने पंजाब की जनता को सरकारी निर्णय के ख़िलाफ़ उनके बहादुरी भरे प्रयासों के लिए बधाई दी। इस संघर्ष ने सिद्ध कर दिया कि जनता ने तमाम विषमताओं और मुश्किलों के बाद भी सम्मान से जीने के अपने अधिकार को नहीं छोड़ा! पंजाब के नेतृत्व की तारीफ करते हुए उन्होंने कहा कि तनाव और दबाव को झेलते हुए भी उन्होंने अपना संयम बनाए रखा। हालाँकि कई शरारती तत्त्वों की मंशा थी कि इस आंदोलन को सांप्रदायिक रंग दिया जाए, लेकिन नेतृत्व की कुशलता से ऐसा होने नहीं दिया गया।

इस आंदोलन के कारण केंद्र सरकार को यह समझ आ गया कि अकालियों

के अलावा भी राजनीतिक शक्तियाँ हैं, जिन्हें अब और नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

प्रधानमंत्री और गृहमंत्री द्वारा दी गई तिहरी सांत्वना ने साफ़ कर दिया कि ये मामला सीधे-सीधे भाषा का है, और जब भाषा और अल्पसंख्यक समुदाय के मुद्दों में समान कड़ियाँ ढूँढ़ी जाएँगी तो इस मुद्दे का हल सबके हक़ में, वादों को शत-प्रतिशत पूरा करते हुए किया जा सकेगा।

कमीशन के फ़ैसले को 'बाध्य करने वाला फ़ैसला' बनाया जाए

केवल पंजाब में ही नहीं बल्कि पूरे देश के राजनीतिज्ञों का आह्वान करते हुए इस प्रस्ताव में कहा गया कि 'कमीशन द्वारा तय सीमाओं को बाध्य करनेवाली मानिए'। इस प्रस्ताव में कहा गया कि जो भी सीमा संबंधी विवाद हैं, उन्हें आंदोलन का मुद्दा नहीं बनाया जाना चाहिए।

वीर नगर

अपनी अलगाव की नीतियों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से कांग्रेस ने हमेशा सांप्रदायिक तनाव फैलाया है। अगर सीमाओं के पुनः निर्धारण के बाद भी पंजाब के इलाके से सांप्रदायिकता ख़त्म नहीं हुई तो यह पूरे देश की सुरक्षा के लिए एक ख़तरा होगी। इसलिए पंजाब के राष्ट्रवादियों के कंधों पर एक और भी ज़िम्मेदारी है, जो उन्हें राज्य की राजनीति की दिशा मोड़ने का मौक़ा देती है। भारतीय जनसंघ ने अपनी स्थापना के समय से ही इस दिशा में प्रयास किए हैं। अब ज़रूरत है कि इन प्रयासों को तेज किया जाए।

जनसंघ ने हमेशा सिखों को हिंदू समाज का एक हिस्सा माना है; और उनकी राष्ट्रभक्ति में हमें कभी कोई संशय नहीं रहा। हमें उम्मीद है कि जो नेतृत्व अलगाववाद के बीज बोता हो, वे उससे दूर रहेंगे। श्री उपाध्याय और श्री यज्ञदत्त दोनों ने पंजाब की राजनीति को सांप्रदायिकता के वायरस से बचाने की बात की।

—ऑर्गनाइज़र, मई 8, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



17

वामपंथी लतीफे

जनसंघ के शत्रुओं ने पार्टी के संगठन में फूट डालने के लिए अब भेद नीति अपनाई है। इन प्रयासों के नतीज़े अकसर मजेदार रहे। उपाध्यायजी ने अंग्रेज़ी साप्ताहिक (दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले लिंक पर इशारा था) का जिक्र करते हुए कहा कि हर हफ्ते वह 'मधोक और मेरे बीच, मधोक और वाजपेयी के बीच तथा वाजपेयी और मेरे बीच के मतभेदों' पर लिखता रहा।

'जो लोग इन लेखों को गंभीरता से लेते हैं, मेरा विश्वास है कि अब तक वे काफ़ी भ्रांत हो गए होंगे। मेरे स्कूल के दिनों में एक मेरा छोटा भाई एक बार मेरे साथ सहगल की फिल्म देखने गया, उस फिल्म में सहगल की मौत हो गई। कुछ दिन बाद जब हम दोनों दूसरी फिल्म देखने गए तो उसमें भी सहगल था, उसे देखते ही हैरान होते हुए उसने पूछा, 'अरे, ये तो पिछले ही दिनों मर गया था न?'

इन लेखों को अगर आप उपन्यास के रूप में लेते हैं तो आपको पढ़कर मज़ा आएगा। आप इन्हें गंभीरता से लेंगे तो आप भ्रम का शिकार हो जाएँगे। एक हफ्ते मधोकजी आर.एस.एस. के आदमी होते हैं और बाक़ी लोग आर.एस.एस. विरोधी होते हैं, अगले हफ्ते वाजपेयीजी आर.एस.एस. के हो जाते हैं और उसके अगले हफ्ते मुझे वह रोल मिल जाता है।

—ऑर्गनाइज़र, मई 8, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



18

ज्यामितीय तरीक़े से जीत हासिल करें

अपने भाषण के दौरान महामंत्री श्री दीनदयालजी उपाध्याय ने कहा कि भारतीय जनसंघ की इकाइयों को अपनी चुनावी योजनाएँ तैयार कर लेनी चाहिए। उन्हें अपने लक्ष्य भी तय कर लेने चाहिए, क्योंकि 1962 और 1967 के बाद से बहुत कुछ बदल चुका है। इस दौर की बड़ी घटनाओं, जैसे चीनी आक्रमण, सरकारी योजना की विफलता, कच्छ पर आक्रमण और उसके बाद के समझौते, अगस्त-सितंबर के पाकिस्तान युद्ध, ताशकंद और उसके बाद के समझौते, पंजाब का असंतोष जैसे मुद्दों ने कई बार जनसंघ की नीतियों को सही ठहराया है। यह अब स्पष्ट है कि जनसंघ ही एक ऐसी पार्टी है, जिसके पास राष्ट्र की समस्याओं से निपटने की दूरदृष्टि है और सही उपाय हैं।

जो हमारे साथ हैं और वो भी जो हमारे विरोध में हैं, जिन्हें शंका थी कि चीज़ें जनसंघ के पक्ष में 1962 के बाद से बदलेंगी या नहीं, उन्हें मैं बता दूँ कि जनसंघ युवाओं की पार्टी है। अगर और कुछ भी नहीं हुआ तो भी आज का सोलह वर्षीय कल 21 वर्षीय युवा होगा और वो मुख्यत: जनसंघ को वोट देनेवाला युवा होगा। वहीं दूसरी तरफ़ कांग्रेस को वोट देनेवाले कई बुजुर्ग वोटर तब तक गुजर चुके होंगे! यह क्या निस्संदेह हमारे पक्ष में नहीं जाता!'

श्री उपाध्याय ने अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा कि हर कहीं जनसंघ कार्यकर्ताओं को आगामी चुनावों में महान् उपलब्धियाँ अर्जित करने की योजना बनानी चाहिए। अब हमें अंकगणितीय प्रगति से नहीं बल्कि ज्यामितीय तरीक़े से जीत हासिल करनी होगी।

—ऑर्गनाइज़र, मई 8, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



19

अवमूल्यन : एक बड़ा पतन

फ़ैसला

देर रात गए क़रीब 11 बजे 5 जून, 1966 को जल्दबाज़ी में बुलाई गई एक प्रेस वार्त्ता में भारत सरकार के फ़ैसले को बतानेवाला एक नोट बाँटा गया। उसमें बताया गया है कि भारतीय रुपए का मूल्य अब 0.186621 ग्राम सोने के मूल्य से गिरकर 0.118516 ग्राम सोने के बराबर हो गया है। इस हिसाब से अवमूल्यन क़रीब 36.5 प्रतिशत का हुआ है। अगर अमरीकी डॉलर और ब्रिटिश स्टर्लिंग के भाव के हिसाब से देखेंगे तो यह अवमूल्यन क़रीब 57.5 प्रतिशत का है। एक अमरीकी डॉलर की क़ीमत अब 7.5 रुपए के बराबर होगी, वहीं एक ब्रिटिश पौंड भी अब पिछले 13.33 रुपए का नहीं बल्कि 21 रुपए का हो जाएगा। ये नई दरें 6 जून, 1966 की सुबह 2 बजे से लागू होंगी। नई दरों पर विनिमय सुचारू रूप से चलने के लिए छह और सात जून को सार्वजनिक छुट्टी की घोषणा नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट एक्ट के तहत की गई।

एक हार दरशाता क़दम

संसद् के बाहर वित्त मंत्री और योजना मंत्री के स्पष्ट इनकार के बावजूद सरकार के इस फ़ैसले ने विश्व को आश्चर्यचकित और पूरे भारत को सदमे में डाल दिया। जल्दी सोने और जल्दी जागने के सिद्धांत में विश्वास रखनेवाले कुछ ही लोगों ने वित्त मंत्री श्री सचिंद्र चौधरी का रेडियो पर बयान भी कुसमय ही सुना। जब अगली सुबह अख़बारों में देशवासियों ने बड़े-बड़े अक्षरों में सरकारी फ़ैसला पढ़ा तो उनको थोड़ा ज्ञान हुआ, लेकिन उनकी संपदा कम हो गई। हर कोई मुद्रा का

इस्तेमाल तो करता है, लेकिन कम ही लोग समझते हैं कि यह चलती कैसे है। विदेशी मुद्रा के साथ मुद्रा के संबंध तो और भी जटिल हैं। ये कई बार अभ्यस्त लोगों को भी परेशान कर देती है। आम आदमी अवमूल्यन के सिद्धांतों को नहीं समझ पाया होगा, लेकिन उसकी समझ में एक बात तो आ गई होगी कि आर्थिक मोरचे पर यह एक असामान्य क़दम है, जो राष्ट्र की हार और असम्मान भी है। दूसरा यह कि वित्त मंत्री ने बाज़ार जानेवाले ग़रीब की जेब से पैसे निकाल लिए हैं। सरकारी प्रवक्ताओं के बड़े-बड़े दावों ने उसे भ्रमित ही किया है, आश्वस्त नहीं। आम आदमी दिग्भ्रमित और खीजा हुआ है। अपनी डूबती हिम्मत के सहारे वह देश की अर्थव्यवस्था को मज़बूत नहीं कर सकता। एक ऐसे मौक़े पर जब बीमारी का ग़लत इलाज बताकर कोई फर्जी दवा दे दी गई है, तो हालात जानलेवा हो सकते हैं। इस भाव को दूर करके देश को बचाना ज़रूरी है। किसी भी भावना को परे रखते हुए हम लोगों को अपने डॉक्टर को बदलना ही होगा।

वैभव और संपदा कहीं नज़र नहीं आ रही

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारी वित्त व्यवस्था संकट में है। अवमूल्यन इस बात का सरकारी कबूलनामा है। उनकी योजनाएँ निष्फल हो चुकी हैं और नीतियों से लाभ नहीं हुआ। जिस वैभव और संपदा (एल डोराडो)[1] का उन्होंने वादा किया था, वह कहीं दिखाई नहीं देती।

इसके उलट जिन ऊँचाइयों का वादा योजना के शुरू होने से पहले किया गया था, उसकी जगह हम अपने को एक खाई में पाते हैं। योजनाओं को कामयाब करने के लिए लोगों ने वह सब किया, जो उनसे कहा गया। उसके ऊपर से प्रधानमंत्री महोदया कहती हैं कि इतने सालों से हम सुख में जी रहे थे। जिस श्रेणी से वे आती हैं, हो सकता है उसके लोग बहुत सुख से रहे हों। लेकिन आम लोगों ने बहुत कठिनाइयाँ उठाई हैं और कई कष्टसाध्य काम किए हैं। उन्होंने कुर्बानियाँ दी हैं, उन्होंने तकलीफ झेली हैं। अपने और अपने बच्चों को भूखा रखने तक की क़ीमत पर उन्होंने सरकार की महती योजनाओं में सहयोग किया है। उन्होंने समृद्धि के लिए श्रम किया है, उन्होंने समाजवाद लाने के लिए अपना पसीना बहाया है। अब यह सब मृगतृष्णा निकला, लक्ष्य तो अब भी कहीं नज़र नहीं आता।

---

1. एल डोराडो : पश्चिमी पौराणिक कहानियों में काल्पनिक सोने का शहर।

घाटे की वित्त व्यवस्था का जाल

देश ने अपनी तीन योजनाओं में 20000 करोड़ रुपए फूँक दिए हैं। ये सारा पैसा गया कहाँ? यह वह सवाल है, जो एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू से पूछा गया। वे इसका कोई संतोषजनक जवाब नहीं दे पाए। इस सवाल का जवाब देने के लिए उन्होंने पी.सी. महालनोबिस[2] की अध्यक्षता में एक समिति बनाई और राष्ट्रीय संपदा के विभाजन में पिछले 15 वर्षों में आए बदलाव का अध्ययन करने को कहा। काफ़ी मशक्कत के बाद कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट का नतीज़ा यह निकला था कि आय और संपत्ति पर एकाधिकार बाधा है तथा मध्यम वर्ग और ज़्यादा बुरी हालत में आ गया है।

सरकारी योजनाओं का ख़र्चा उठाने के अलावा उन्हें चलाने के लिए एक बड़ा सरकारी अमला भी चाहिए। इस सरकारी अमले को पालने के लिए फिर जनता की जेब से ही टैक्स जाता है। वर्ष 1951-52 की शुरुआत में पहली योजना के दौरान राजस्व से कुल आय 638 करोड़ रुपया (केंद्र के 357 करोड़ और राज्य से आया 281 करोड़) वर्ष 1965-66 में बढ़कर 2722.66 करोड़ (केंद्र से 1682.76 करोड़ और राज्यों से 1039.90 करोड़) हो गई। साथ ही, हमारा सार्वजनिक ऋण भी बढ़कर 1950-51 के 2054.33 करोड़ से सन् 1965-66 में 7837.49 करोड़ तक जा पहुँचा। इसमें विदेशी ऋण 1965-66 में 2763.80 करोड़ रहा, जबकि साल 1950-51 में यह 32.03 करोड़ रुपए ही था।

आम आदमी की जेब से पूँजी की आख़िरी चवन्नी तक निकाल लेने के लिए सरकार ने हर तरह की ज़रूरी निवेश योजना शुरू की। हर मौक़े का पैसे की उगाही के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। जब चीनियों ने नेफा पर हमला किया, तो घुसपैठ रोकने के लिए भले ही कुछ न किया गया हो, लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा फंड के नाम पर चंदा वसूलने के हर संभव प्रयास किए गए। और अब रिपोर्ट आ रही है कि इस नाम पर भी कई कांग्रेसियों ने घपला किया है। इन सब के बावजूद सरकार घाटे की अर्थव्यवस्था को चलाने की कवायद में जुटी रही। एक के बाद एक

---

2. प्रशांत चंद्र महालनोबिस (1893-1972) प्रसिद्ध भारतीय सांख्यिकीविद थे। उन्हें दूसरी पंचवर्षीय योजना के अपने मसौदे के कारण जाना जाता है। स्वत्रंता के पश्चात् नवगठित मंत्रिमंडल के सांख्यिकी सलाहकार बने, इन्होंने भारतीय सांख्यिकीय संस्थान की स्थापना की। आर्थिक योजना और सांख्यिकी विकास के क्षेत्र में प्रशांत चंद्र महालनोबिस के उल्लेखनीय योगदान के सम्मान में भारत सरकार उनके जन्मदिन 29 जून को हर वर्ष 'सांख्यिकी दिवस' के रूप में मनाती है।

योजना के निष्फल होने पर और महँगाई के लगातार बढ़ते रहने पर वित्त मंत्री ने वायदे तो किए मगर वायदे पूरे नहीं किए गए। राजकोषीय घाटा पहली योजना के वक्त 420 करोड़ रुपए था, जो दूसरी योजना के समय 1391.6 और तृतीय योजना में 1225.4 में हो गया। पंद्रह वर्षों में यह कुल 3037 करोड़ रुपए पर पहुँच गया। इन सब का नतीज़ा यह हुआ कि क़ीमतें बढ़कर आसमान छूने लगीं। वित्त मंत्री खुद कबूल चुके हैं कि पिछले एक दशक के दौरान क़ीमतों में 80 प्रतिशत तक का इजाफा हो गया है।

वर्तमान नियोजन आगे भी अवमूल्यन की ओर ले जाता है

अवमूल्यन के समर्थक इस यथार्थ को पहचानना कहेंगे, वे कहेंगे कि इस सुधार से उत्पादन में बढ़ोतरी होगी, हमारे निर्यात को बढ़ावा मिलेगा, आयात घटेगा और स्थिरता आएगी। ये सब वे बातें हैं, जो किसी भी अर्थव्यवस्था की किताब में मिल जाएँगी। लेकिन ये सभी तभी काम करती हैं जब कुछ स्थितियाँ स्थायी मान ली जाती हैं। सरकार और योजना आयोग में बैठे किताबी लोग अब एक राजनीतिक फ़ैसले को सही ठहराने के लिए बुलाए जाएँगे, और वे आराम से स्थिर रहनेवाली चीज़ों को भुलाकर बात करेंगे। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने हैदराबाद में कहा था कि सरकार अपनी पुरानी नीतियों से नहीं हटेगी। श्री अशोक मेहता ने कहा था कि चौथी योजना का स्वरूप मेमोरैंडम से अलग नहीं होगा और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम ही अर्थव्यवस्था को मज़बूती देंगे। अगर पुरानी नीतियाँ जारी रहती हैं या सिर्फ़ थोड़ा-बहुत बदलाव होता है तो हम सरकार को याद दिलाना चाहेंगे कि उन्होंने किताब का ग़लत पन्ना पलट लिया है। अभी की अव्यवस्था पुरानी नीतियों का ही नतीज़ा है। अगर पिछली नीतियों का नतीज़ा रुपए का अवमूल्यन है तो उन्हीं नीतियों के परिणामस्वरूप भविष्य में फिर से यह नहीं होगा, ऐसा क्यों न मान लिया जाए? हम बरबादी की उसी राह पर हैं, जिस राह पर सुकर्णो के नेतृत्व में इंडोनेशिया गया था।

विदेशी मुद्रा की कालाबाज़ारी

अवमूल्यन के यथार्थ को पहचानना इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि रुपए के सरकारी और ग़ैर-सरकारी बाज़ार भाव में अंतर था। अवमूल्यन से पहले

अमरीकी डॉलर का सरकारी भाव 4.76 रुपए था जबकि ग़ैर-सरकारी दर अवमूल्यन से ठीक पहले 9.20 रुपए की थी। इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि ज़्यादा मूल्य पर भी ग़ैर सरकारी कारोबार चल रहा था। जाहिर है कि सरकारी दर सही मूल्य से क़रीब आधी थी। चूँकि ग़ैर-सरकारी काम आसान था, इसलिए विदेशी मुद्रा का व्यापार का एक बड़ा हिस्सा बाहर से ही होता था। इस रिक्ति को भरकर सरकार चाहती थी कि सारा कारोबार बैंक के जरिए हो। लेकिन जैसे ही अवमूल्यन हुआ है, वैसे ही ग़ैर-सरकारी बाज़ार भाव भी बढ़कर 14 रुपए पर पहुँच गया है। जाहिर है, सरकार को इस क़दम से ज़्यादा फ़ायदा नहीं होगा।

मनमाने ढंग से मुद्रा विनिमय का नियंत्रण

दरअसल ग़ैर-सरकारी व्यापार बाज़ार में रुपए का मूल्य कम होने के कारण नहीं है। दरअसल ऐसे व्यापार की वजह से ही रुपए का मूल्य कम हुआ है। सरकारी तंत्र की जाँच ने नतीज़ों को पलट दिया है। मनमाने ढंग से विनिमय को नियंत्रित करने के कारण ही लोगों ने इन ग़ैर-सरकारी तरीक़ों से मुद्रा की ख़रीद-बिक्री के तरीक़े अपनाए हैं। जब लोग विदेश जाते हैं तो उन्हें विदेशी मुद्रा की ज़रूरत होती है। ऐसे में कई बाक़ी मामलों में क़ानून का पालन करनेवाले नागरिक भी ये ग़ैर-क़ानूनी काम करते हैं। रिज़र्व बैंक जो रकम आपको विदेश यात्रा के लिए देता है, वो तो दाल-रोटी का गुजारा चलाने भर को भी विदेश में काफ़ी नहीं होती। उतनी कम रकम में कैसे कोई अपना विदेश यात्रा का काम पूरा करेगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। ज़्यादातर लोग वहाँ उधार नहीं ले सकते, इसलिए ऐसे में ग़ैर-क़ानूनी मुद्रा बाज़ार काम आता है। अगर लोगों की ज़रूरतें सरकारी माध्यमों से ही पूरी हो जाएँ तो भला कोई क्यों काले बाज़ार का रुख़ करेगा। हम सबको पता है कि कालाबाज़ारी में साधारण बाज़ार भाव नहीं बल्कि उस से भी कहीं ऊँचे भाव पर ख़रीदारी करनी होती है।

विनिमय मानकों का युक्तिकरण

विनिमय पर अवरोधों को हटाने का सुझाव ही अभी के हालत से निपटने का कारगर तरीक़ा है। मुद्रा का खुला आबंटन कालाबाज़ारी को रोक देगा। आयात पर कोई शुल्क नहीं होने चाहिए। बाज़ार की व्यवस्था को खुला छोड़ दो और अपने आप सबकुछ करने दो। इसका मतलब रुपए की भी आज़ादी होगी। प्रख्यात

अर्थशास्त्री डॉ. बी.आर. शेनॉय[3] के द्वारा यही मत प्रस्तुत किया गया है। उनका मानना है कि रुपए के अभी के मूल्यांकन में भी गड़बड़ी है, इसे ज़्यादा आँका जा रहा है। उनके अनुसार रुपए का ज़्यादा मूल्यांकन ज़्यादा दिन तक काम नहीं करेगा। उनके अनुसार बढ़े हुए मूल्य के रुपए से हमारी आर्थिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार का अंत नहीं होगा। डॉ. शेनॉय की बातों में कई तथ्य हैं, लेकिन ये कुछ वैसा ही हैं जैसे किसी बूढ़े और रक्त-अल्पता के रोगी को वैसे जीवन की सलाह देना जैसा एक स्वस्थ व्यक्ति कर सकता है। हमारी अर्थव्यवस्था इसे झेल नहीं पाएगी।

डॉलर के मुक़ाबले रुपया इसलिए गिरा है, क्योंकि डॉलर की माँग ज़्यादा है। डॉलर को महँगा कर के इस माँग को कम किया जा सकता है, लेकिन उससे जहाँ अमीर को फ़ायदा होगा, वहीं ग़रीब का नुक़सान हो जाएगा। यह तो किसी भी योजना का अभाव होगा, और नीति न निर्धारित करने को नीति नहीं कहा जा सकता।

इनके अलावा विदेशी मुद्रा के मामले में हमारी माँग इतनी ज़्यादा और भूख इतनी बढ़ी हुई है कि बिना किसी ठोस कारगर योजना के अगर मुद्रा विनिमय पर से नियंत्रण हटाया गया तो हम निस्संदेह दिवालिया हो जाएँगे। इसलिए हमारी ज़रूरत न तो नियंत्रण को पूरी तरह हटाना है और न ही संपूर्ण उदारीकरण से ही हमारी समस्या मिटेगी। हमारा उद्‌देश्य युक्तिकरण होना चाहिए।

स्वदेशी की भावना का पुनः जागरण और आत्मनिर्भरता

विदेशी मुद्रा विनिमय में युक्तिकरण के साथ-साथ ही हमारे जीवन के प्रति नजरिए और हमारी नीतियों में भी बदलाव आना चाहिए। हमें स्वदेशी की भावना को फिर से जगाना होगा। उन ग़लत ख़यालों को, जो कि हमारे मन में घर कर गए हैं, उन्हें हटाना होगा। प्रगति सिर्फ़ किन्ही विदेशी वस्तुओं, पश्चिमी देशों से आई चीज़ों के भरोसे नहीं होती। आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का भाव जैसे ही जागेगा, वैसे ही डॉलर की ज़रूरत कम पड़ने लगेगी। 'सफ़र तभी कीजिए जब वह ज़रूरी हो', यह युद्ध के दौरान का रेलवे का वह नारा था, जो उसने भीड़ कम करने के लिए चलाया था। 'विदेशी मुद्रा तभी लें जब बहुत आवश्यक हो' और 'विदेश यात्रा तभी,

---

3. बेल्लिकोथ रघुनाथ शेनॉय (1905-1978) भारत में परंपरागत उदारवाद के एक अत्यंत प्रभावशाली समर्थक अर्थशास्त्री थे, साथ ही भारतीय आर्थिक संघ के अध्यक्ष और अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्रियों की संस्था 'मोंट पेलेरिन सोसाइटी' के सदस्य थे।

जब बहुत आवश्यक हो' के नारे अब हमारी ज़रूरत हैं। हमारी योजनाएँ अब उपलब्ध विदेशी मदद पर नहीं, हमारी आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए। जब हम खुद के स्रोत न जुटा पाएँ, केवल तभी किसी भी विदेशी मदद पर निर्भर हों। आख़िर क्यों हम डॉलर का इस्तेमाल करें, जब हम रुपए से काम कर सकते हैं!

आयात के विकल्पों का निर्माण करना होगा

कुछ दिन पहले जब पाकिस्तान से संघर्ष के दौरान सारी विदेशी मदद बंद हो गई थी, उस दौरान आयात की जानेवाली कई चीजों के स्थानीय विकल्प बनाने का काम शुरू हुआ था। उसी दौरान हमें पता चला कि हम विदेशी चीज़ों पर कितने ज़्यादा निर्भर हैं, और योजनाओं को विदेशी निवेश के आधार पर बनाते जाने का क्या नतीज़ा होता है। इस कार्यक्रम को आगे के लिए जारी रखना ही आत्मनिर्भरता और आज़ादी का सही उपाय है। बीच के कुछ समय में, जब तक देशी उत्पाद पूरी तरह विदेशी की जगह नहीं ले लेते, तब तक हमें कुछ दिक्कतें ज़रूर झेलनी पड़ सकती हैं। लेकिन जैसे जैसे स्वदेशी उत्पाद विदेशी की जगह लेते जाएँगे, वैसे वैसे अर्थव्यवस्था की हालत भी सुधरेगी। दुर्भाग्य से सरकार इस काम के लिए न तो इच्छाशक्ति प्रदर्शित करती है, न ही उसका दृढ निश्चय है, इस कार्य के लिए उसमें देशभक्ति की भावना ही नहीं है। इसकी जगह उसने 675 करोड़ रुपए का ग़ैर-परियोजना ऋण लेने का निर्णय किया है, जो कि विदेशों पर और ज़्यादा निर्भर होने का फ़िसलन भरा रास्ता है। इस तरह उधार पर सामान लाने का नतीज़ा यह होगा कि कल जब आयातित वस्तुएँ नहीं होंगी तो हमारे पास ज़रूरी साधनों का अभाव हो जाएगा। 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है', इस पुरानी कहावत को सभी जानते हैं। अब जब विदेशी माल बाज़ार में मौजूद ही होगा तो फिर क्यों कोई उन्हें देश में ही विकसित करने का प्रयास करेगा? जो क़ीमतों का फर्क होगा, उसकी वजह से विदेशी मुद्रा पर और ज़्यादा असर होगा, क्योंकि स्थानीय बाज़ार में यह माल बेचने के लिए हमें ख़रीदना तो विदेशी मुद्रा के जरिये पड़ेगा। अगर इस तरह आयात आधारित उद्योगों की गिनती बढती है, और कल फिर रुपए के अवमूल्यन के कारण वे नुक़सान में आकर बंद होने लगें, तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

क्या यह व्यापार घाटे को कम करेगा?

इस अवमूल्यन का हमारे कुल विदेश व्यापार पर क्या असर होगा? क्या यह

हमारे निर्यात को बढ़ावा देगा और आयात को कम करेगा? क्या इससे व्यापार घाटा कम होगा? जो लोग विदेश व्यापार से जुड़े हैं, उनका नजरिया इस बारे में ज़्यादा सकारात्मक नहीं है। सरकारी प्रवक्ता कहते हैं ऐसा होगा, लेकिन यह नहीं बताते कि ऐसा कैसे होगा। हमें स्थिति को पास से देखना चाहिए।

अवमूल्यन से भारतीय सामान विदेशों में सस्ता हो जाता है। अमरीका में एक डॉलर ख़र्च करनेवाला व्यक्ति, 4.76 रुपए का सामान अवमूल्यन से पहले ख़रीदता था। लेकिन अब वो 7.50 रुपए का सामान ख़रीद पाएगा। इसका नतीज़ा यह होगा कि किसी और देश का माल लेने के बदले वह ज़्यादा भारतीय सामान लेने की सोचेगा। लेकिन ऐसा तभी संभव है, जब (i) उसकी ज़रूरत पहले से ज़्यादा हो गई हो, और (ii) हम नए माल को पुरानी ही दर पर बेचते रह सकें। अगर ग्राहक को ज़्यादा सामान की ज़रूरत ही नहीं तो वह ज़्यादा ख़रीदेगा क्यों? वो पहले जितनी ही ख़रीदारी करेगा और हमें कम पैसे देगा। इस तरह देश को विदेशी मुद्रा का नुक़सान होगा। अगर हमारा माल ज़रूरी सामान की लिस्ट में आता है तो व्यापारी अपनी मर्ज़ी से क़ीमत तय कर सकता है। ऐसे में अवमूल्यन का फ़ायदा ग्राहक को देने के बदले वो क़ीमतें बढ़ा लेगा और इस तरह से ज़्यादा मुनाफा खुद रख लेगा। यही वजह थी कि सरकार ने अवमूल्यन के साथ ही कई चीज़ों पर निर्यात कर भी बढ़ा दिया था। इस तरह अधिक आय सरकार के पास आएगी और व्यापारी ज़्यादा मुनाफा नहीं बचा पाएगा।

जाहिर है, ऐसे में मुद्रा अवमूल्यन के जरिए विदेश व्यापार से ज़्यादा फ़ायदा होनेवाला नहीं है। विदेशी व्यापार से आय का स्तर लगभग वही रहेगा। साथ ही व्यापार की मात्रा पर भी कोई ख़ास असर नहीं पड़नेवाला, क्योंकि माँग तो इससे बढ़ेगी नहीं।

व्यापार मंत्रालय भी अवमूल्यन के ख़िलाफ़ है

जैसा कि 1965-66 की व्यापार मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट से पता चलता है, हमारा अस्सी प्रतिशत से ज़्यादा निर्यात का काम इसी किस्म के व्यापार पर निर्भर है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह भी इसके ख़िलाफ़ हैं। उनकी रिपोर्ट के पृष्ठ 37 पर लिखा है :

'हाल में रुपए के अवमूल्यन की कुछ चर्चाएँ सुनाई दे रही हैं। हमारे निर्यात का करीब 80 से 82 प्रतिशत हिस्सा अंतरराष्ट्रीय मूल्यों पर ही चलता है। इसलिए

सालाना निर्यात का सिर्फ़ 18 से 20 हिस्सा ही ऐसा हुआ, जिसे नक़द सब्सिडी या अन्य तरीक़ों से किसी सहयोग की ज़रूरत पड़ती है। ये स्थिति अनुबंध XX(b) और (d) में उल्लेख किए गए उत्पादों पर लागू होती है, जो अंतरराष्ट्रीय मूल्यों पर ही चलते हैं और जैसा कि स्पष्ट है, उन्हें कोई वित्तीय सहायता या बदले में आयात की सुविधाएँ नहीं दी गई हैं। स्थानीय और केंद्रीय करों के अलावा कोई भी मुख्य समस्याएँ ऐसी नहीं हैं, जिसके लिए इस व्यापार को सब्सिडी की ज़रूरत हो या दी गई हो। एक साल में इनका निर्यात में योगदान 666.6 करोड़ का था (1965 में) जब की कुल निर्यात 807.5 करोड़ रुपए का हुआ था। इस तरह हमारे निर्यात का क़रीब 82.2 प्रतिशत लगभग अंतरराष्ट्रीय मूल्य पर ही क्रय-विक्रय होता है।'

अनुबंध XX(c) दरशाता है कि आयात पात्रता या नक़द सब्सिडी किन वस्तुओं के निर्यात पर मिल रही है। पूरे तौर पर देखें तो इनकी स्थानीय क़ीमतें अंतरराष्ट्रीय बाज़ार से बहुत अलग हैं। ये अंतर अलग-अलग निर्यातित वस्तुओं पर अलग-अलग है। उदाहरण के लिए, अगर खाद्य तेलों और रेशमी कलाकारी की वस्तुओं में देखेंगे तो यह अंतर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार भाव का लगभग 200 प्रतिशत तक का है। कुछ दूसरे मामलों में क़ीमतों का अंतर तीस से अस्सी प्रतिशत तक है। इन उत्पादों का कुल निर्यात (वर्ष 1965 में) 140.9 करोड़ रुपए रहा, यानि हमारे कुल निर्यात के क़रीब 17.2 प्रतिशत पर हमें किसी न किसी किस्म की सब्सिडी देनी पड़ती है। स्थानीय क़ीमतों और अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों का फर्क कुछ ऐसा है कि सबके लिए एक जैसा मूल्यांकन या एक जैसी व्यवस्था संभव नहीं है। हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था में इससे कोई मदद मिल पाना संभव नहीं है।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हमारी ओर से मुद्रा के अवमूल्यन से हमें क़रीब 82 प्रतिशत निर्यात, जो कि अनुबंध XX(b) और (d) में है, पर नुक़सान झेलना पड़ेगा। हमारे विदेश व्यापार पर असर न पड़े, इसके लिए ऐसी वस्तुओं के आयात पर हमें भारी कर भी लगाना होगा। ऐसे भारी करों से व्यापार को क्षति ही नहीं पहुँचेगी, बल्कि विश्व बाज़ार में भारत की छवि भी खराब होगी।

हमारा सकल घरेलू उत्पाद क़रीब 15,000 करोड़ रुपए सालाना का है। इसमें से विदेश व्यापार क़रीब पंद्रह प्रतिशत का यानी 2250 करोड़ रुपए का है। इस 2250 में से 1425 करोड़ रुपए निर्यात से आते हैं। मुद्रा के अवमूल्यन से ऐसे सभी उत्पादों के आंतरिक ख़र्चे में काफ़ी वृद्धि हो जाएगी। इसका सीधा असर उन

मज़दूरों पर पड़ेगा, जो इन्हें बनाते हैं। इसके अलावा इन उद्योगों को निर्यात करने के लिए जो ख़र्च सरकारी सब्सिडी की वजह से होगा वह अलग।

निर्यात के बढ़ावे पर प्रतिकूल प्रभाव

इस तरह से हमारे निर्यात के सिर्फ़ 18 से 20 प्रतिशत पर मुद्रा के अवमूल्यन का सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इस श्रेणी में सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, अभियंत्रण के सामान, रसायन और मिलते-जुलते उत्पाद, चमड़े और उसके उत्पाद, प्लास्टिक और नारियल के रेशे के उत्पाद आते हैं। इनका कुल मूल्य साल 1965 में क़रीब 140.90 करोड़ रुपए था और उसमें से 72.86 करोड़ रुपए सिर्फ़ सूती वस्त्रों से आय हुई। निर्यात को बढ़ावा देने की कई योजनाओं के कारण ये सारे उत्पाद पहले ही सस्ते और प्रतियोगी मूल्य पर बेचे जा रहे थे। रुपए के अवमूल्यन के साथ ही ऐसी सारी योजनाएँ भी वापस ले ली गई हैं। वाणिज्य मंत्री ने कहा है कि वह ऐसी और योजनाओं पर विचार करेंगे। मंत्रालय अभी ऐसी योजनाएँ तैयार कर रहा है। लेकिन दो महीने से ज़्यादा बीत चुके हैं और ऐसी कोई भी योजना नज़र नहीं आती, जबकि ऐसे उत्पादों का निर्यात लगभग रुका हुआ है। एक बार यह बाज़ार अगर प्रतिद्वंद्वियों के हाथ में चला गया, तो इन्हें वापस पाना बहुत कठिन होगा। सरकारी लालफीताशाही और रुपए के अवमूल्यन से हम कुछ ही समय में वे सारी बनी बनाई बाज़ार की जगह खो देंगे, जो हमने बरसों में बनाई है।

आयातित पुर्जों के मूल्यों की वृद्धि

यहाँ एक और भी कारण से निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। कई उत्पाद ऐसे हैं, जिन्हें बनाने के लिए, कुछ हिस्से विदेशों से आयातित होते हैं। अवमूल्यन के चलते आयातित चीज़ों का मूल्य ज़्यादा होगा, इससे संबंधित चीज़ों की उत्पादन लागत में वृद्धि होगी। कुछ लोग शायद कहेंगे कि ऐसा कम ही उत्पादों के साथ होनेवाला है, क्योंकि इन वस्तुओं के उत्पादक पहले से ही आयातित वस्तुओं को बढ़ी हुई क़ीमतों पर ख़रीद रहे थे, इसलिए उत्पादकों पर ज़्यादा असर नहीं पड़ेगा। इसके अलावा काला बाज़ारी कम होने के कारण भी चीज़ें सस्ती हो जाएँगी। इसलिए अवमूल्यन से पहले की तुलना में इन आयातित वस्तुओं का वास्तविक मूल्य कम हो जाएगा। यह तर्क सामान्यीकरण पर आधारित है और विशेष मामलों को संज्ञान में नहीं लेता। जिन निर्यातकों को निर्यात के बदले आयात

की कुछ छूट मिली होती है, वे आयात के एक हिस्से को घरेलू बाज़ार में महँगे मूल्यों में बेच देते हैं। इस कारण ही विदेशों में निर्यात होनेवाली निर्यातकों की चीज़ें सस्ती हो पाती हैं। इसके अलावा आयात पर उदारीकरण ग़ैर-परियोजना सहायता की उपलब्धता पर निर्भर करता है। यह मदद हमेशा मिलेगी इसकी संभावना कम ही है।

विभिन्न देशों को होनेवाले निर्यात के विश्लेषण से इस बात की बहुत कम उम्मीद जगती है कि अवमूल्यन से हमारे निर्यात में कोई बढ़ोतरी संभव हो सकेगी। अलग-अलग इलाकों के हिसाब से निर्यात का ब्योरा निम्नलिखित है :

देश	निर्यात	लाख रुपए में
	1965	1964
1. पश्चिम यूरोप	22,379	25,051
(i) यूरोप सामान्य बाज़ार	5,522	6,022
(ii) यूनाइटेड किंगडम	15,075	17,099
(iii) अन्य पश्चिमी यूरोप देश	1,782	1,930
2. एशिया	18,688	20,367
(i) ई.सी.ए.एफ.ई. (चीन)	15,897	17,642
(ii) बाक़ी एशियाई देश	2,791	2,725
3. अफ्रीका	5,659	4,508
4. अमरीका	18,457	17,757
(i) कनाडा	2,177	1,764
(ii) यू.एस.ए.	14,932	14,111
(iii) लातीनी अमरीका	1,385	1,764
(iv) अन्य	163	163
5. पूर्वी यूरोपीय देश	15,365	13,299
यू.एस.एस.आर.	8,944	7,227
कुल योग	**80,748**	**80,982**

पिछले कुछ वर्षों का हिसाब देखें, तो पिछले बारह वर्षों में हमारा व्यापार पूर्वी यूरोपीय देशों और यू.एस.एस.आर. से कई गुना बढ़ा है। वर्ष 1953 में जहाँ यह सिर्फ़ 3.3 करोड़ रुपए का था, वहीं साल 1965 में यह बढ़कर 153.59 करोड़ रुपए पर पहुँच गया। इन देशों के साथ रुपए में भुगतान के कई समझौते हुए हैं। रुपए के अवमूल्यन के बाद ये सारे समझौते दोबारा करने पड़ेंगे। अगर भारतीय सामान को पुरानी क़ीमतों पर ही निर्यात किया गया तो भारतीय व्यापारियों को भारी-भरकम नुक़सान का सामना करना पड़ेगा। वाणिज्य मंत्री ने विदेशी ग्राहकों का मुद्दा उठाया है, लेकिन उन्होंने भारतीय निर्यातकों को होनेवाले भारी नुक़सान की चर्चा नहीं की है। सुनने में आ रहा है कि सोवियत रूस अब रूबल में भुगतान देने की बात कर रहा है।

व्यापार के संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव

रुपए का अवमूल्यन निस्संदेह आयात को महँगा बना देगा। अगर हम लोग आयात कम नहीं करते हैं तो हमारा आयात का ख़र्च और बढ़ता ही जाएगा। आयात पर नियंत्रण या उसमें कमी योजना के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है। योजनाओं के कारण हमारे आयात का स्वरूप लचीला नहीं है। इसके अलावा आयातों का एक बड़ा हिस्सा सीधा सरकार आयातित करती है। इसका कारण हमारी विनिमय नियंत्रण और आयात लाइसेंस की प्रक्रिया है। ग्राहकों के चुनने की क्षमता को पहले ही इन चीज़ों से प्रतिबंधित कर रखा गया है। जब तक सरकार यह तय न कर ले कि आयात पर और कड़े प्रतिबंध लगाए जाएँगे, और साथ ही सरकारी नीतियाँ बदलेंगी, तब तक आयात के कम होने की संभावना कम है। लेकिन सरकार ऐसा नहीं कर सकती। उसने पहले ही आयात को और खुला बनाने की और विदेशी व्यापारियों को जगह देने की बात कर रखी है। हमारी भविष्य की औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी आयातित तकनीक पर निर्भर होगी। यानी की निकट भविष्य में इससे मुक्ति की संभावना नहीं है।

विदेशी कंपनियों को अपने निवेश की योजना बनाने और अपनी व्यापार नीतियों को बनाने की छूट होगी। प्रधानमंत्री के वादे के मुताबिक बदनाम खाद समझौते को लागू नहीं किया जाएगा। श्री एस.के.डे. केंद्रीय खनन मंत्री ने कहा है कि अमरीकी सहयोगियों को आंध्र का पूरा प्रोजेक्ट दे दिया जाएगा, लेकिन सरकार कंपनी में बहुमत के शेयर रखेगी। इन सब से रख-रखाव के लिए होनेवाले आयात

में बढ़ोतरी होगी। अभी के हालत में विपरीत व्यापार संतुलन होना अवश्यंभावी है। हो सकता है, वायदे के मुताबिक विदेशी मदद आते रहने से हम इस स्थिति का सामना कर पाएँ।

स्थानीय निवेशकों को कोई मदद नहीं

न सिर्फ़ उत्पाद बनानेवाले बल्कि अन्य लोग भी इससे प्रभावित होंगे। इससे हमारी विदेश यात्रा का ख़र्च बढ़ जाएगा, विदेशों से आनेवाले सैलानियों से हमें कम आय होगी। विदेशी निवेशक भी इससे फायदे की स्थिति में पहुँच जाएँगे। अब एक ही डॉलर या पौंड में ज़्यादा रुपए होने के कारण उनका हिस्सा हर साझा व्यापार में काफ़ी बढ़ जाएगा। मान लीजिए कि पहले कोई अमरीकी निवेशक एक मिलियन डॉलर देकर 47.5 प्रतिशत की हिस्सेदारी ले रहा था तो अब अचानक उसे 75 प्रतिशत का हिस्सा मिल जाएगा। अब या तो भारतीय साझेदार को और रुपए जुटाने पड़ेंगे या आसानी से कंपनी की हिस्सेदारी विदेशी निवेशकों के हाथ में फ़िसल जाएगी। रुपए का अवमूल्यन करके हमने स्थानीय निवेशकों की कोई मदद नहीं की है।

अतिरिक्त भार सिर्फ़ काल्पनिक नहीं है

अवमूल्यन के कारण विदेशी क़र्ज़ और अन्य जवाबदेहियों में 57.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी होगी। बजट में इस आशय का जो मेमोरैंडम 1966-67 के लिए जोड़ा गया है, उसमें भारत में बाहर से आये क़र्ज़ जो कि अभी 2629.10 करोड़ रुपए का है, उसमें इजाफा हो जाएगा। यानी अब यह क़र्ज़ बढ़कर 4100 करोड़ पर जा पहुँचा। वित्त मंत्री का कहना है कि यह बढ़ोतरी केवल आभासी है। वो ग़लत समझ रहे हैं। ये क़र्ज़ विदेशी मुद्रा में ही चुकाने होंगे, जो कि ज़्यादा से ज़्यादा माल विदेशों में बेचकर कमाया जाएगा। इस माल को अब कम क़ीमत पर विदेशों में बेचना पड़ रहा है, क्योंकि अवमूल्यन से रुपए की क़ीमत गिर गई है। यानि असलियत में इस क़र्ज़ का बढ़ना किसी भी तरह आभासी नहीं है।

इसके अलावा सिर्फ़ सरकारी क्षेत्र में ही नहीं बल्कि निजी क्षेत्र के उपक्रमों पर भी क़र्ज़ होगा। कुछ ने अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से मशीनरी की ख़रीद के लिए क़र्ज़ लिया है या कच्चे माल की क़ीमतों का उन्हें किस्तों में भुगतान करना है। अब इन सब की भविष्य की किस्तों में इजाफ़ा हो जाएगा। ऐसे ही जिन पेटेंट के लिए विदेशी कंपनियों को रॉयल्टी देनी पड़ती है, वो भी अब ज़्यादा होगी।

भारतीय उपभोक्ता पर अधिभार

सिर्फ़ बाहर की ओर जानेवाली पूँजी में ही नहीं बल्कि भारत में होनेवाली ख़रीद-फरोख्त पर भी असर पड़ेगा। जो विदेशी कंपनियाँ भारत में होनेवाले फायदे को पहले अपने देश में भेज रही होती थीं, अब वे उसे यहीं वापस निवेश करने का प्रयास करेंगी। लेकिन पूँजी बाज़ार से घोषित मुनाफों को ध्यान में रखकर ही निवेश के फ़ैसले किए जाते हैं। कई बार जब कम मुनाफा घोषित करना संभव नहीं होता तो कंपनी विदेशी शेयर धारक को मुनाफा देने के लिए उनके मुनाफे में हुए नुक़सान को ज़्यादा रुपए में ब्याज घोषित करके चुकता करने की कोशिश करेगी। इनमें से ज़्यादातर कंपनियाँ ऐसी हैं, जिनका या तो पूर्ण या फिर आंशिक रूप से पूरे-पूरे इलाके के बाज़ार पर कब्ज़ा है। अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए वे क़ीमतें बढ़ा देंगी। इस तरह रुपए के अवमूल्यन से हुआ उनका नुक़सान तो पूरा हो जाएगा, लेकिन भारतीय उपभोक्ता को ज़्यादा क़ीमत चुकानी होगी।

योजना पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव

देखा जाए तो ये अवमूल्यन उस वक्त किया गया था, जब विदेशी मदद आई नहीं थी। मदद जब आगे आएगी, उस वक्त योजना को फ़ायदा नहीं होगा। योजना में वित्तीय लक्ष्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। इसकी वजह से अब उन्हीं वित्तीय लक्ष्यों को अगर पूरा किया जाए तो वो पिछले असली लक्ष्य की तुलना में क़रीब आधा ही होगा। हमें हर लक्ष्य की पूर्ति के लिए अब ज़्यादा रुपए ख़र्च करने पड़ेंगे। इस तरह हमारे श्रम का मूल्य घट गया है, मगर अब हमें रुपए ज़्यादा ख़र्च करने होंगे। अगर क़ीमतों का बढ़ना रोकना है तो मुद्रास्फीति की दर नियंत्रित करनी होगी, ज़्यादा रोजगार उत्पन्न करने होंगे, और कर्जे की मियाद या तो कम करनी पड़ेगी या दरें बढ़ानी होंगी। लेकिन किसी भी हाल में अवमूल्यन उलटी दिशा में ही काम करेगा। पूँजी की कमी वाले देश में यह किसी भी तरह वरदान तो नहीं है। आश्चर्यजनक ही है कि योजना मंत्री ने एक ऐसा फ़ैसला लिया है।

उपभोक्ता को कुचलता एक बोझ

क़ीमतों का बढ़ना, भारतीय अर्थव्यवस्था के पाँवों की बेड़ी है। पिछले एक दशक के दौरान खुदरा मूल्यों के सूचकांक में अस्सी प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अगर खुदरा ख़रीद की वस्तुओं का मूल्य देखें तो असली वृद्धि कई गुना ज़्यादा है।

सूचकांक की गणना में केवल नियंत्रित मूल्य को ही देखा जाता है। लेकिन हमें पता है कि काला बाज़ार की क़ीमत नियंत्रित सरकारी मूल्य से कहीं ज़्यादा है। इसके अतिरिक्त थोक और खुदरा मूल्य के बीच भारत में अंतर लगातार बढ़ रहा है। ज़्यादातर टैक्स आख़िरी बिंदु पर जोड़े जाते हैं और ग्राहक से वसूल लिये जाते हैं। इन सब का बोझ उपभोक्ता पर बढ़ता जा रहा है और सरकार है कि बस क़ीमतों की वृद्धि रोकने के वादे में लगी है। सरकारी प्रयासों के वादे के बावजूद सिर्फ़ पिछले एक साल में क़ीमतों में 25 प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। वेतनभोगी, रोज़ की कमाई पर निर्भर और कम आय वाले समूह पर इसका गंभीर दुष्प्रभाव पड़ा है। ऐसे समय में जब क़ीमतों के बढ़ने से पहले ही उपभोक्ता की कमर टूट रही थी, उस वक्त सरकार ने उपभोक्ता पर अवमूल्यन का एक और गट्ठर डाल दिया है। सरकार इतनी असंवेदनशील क्यों है, यह समझ से परे है।

क़ीमतों का बढ़ना एक सच्चाई है

जब 5 जून को वित्त मंत्री महोदय ने अपने भाषण में माना कि क़ीमतों में अवमूल्यन से हल्की वृद्धि होगी, प्रधानमंत्री दावा कर रही हैं कि कोई 'वृद्धि नहीं होगी'। क़ीमतों का बढ़ना आज कोई बहस का मुद्दा नहीं रह गया है। यह एक सत्य है, हमें इसे स्वीकारना ही होगा। इसके अपने कारण भी होते हैं, जो अर्थव्यवस्था में पढ़े-पढ़ाए भी जाते हैं। सरकार का प्रिय बलि का बकरा ऐसे मामलों में व्यापारी को बनाया जाता है।

कोई भी आसानी से समझ सकता है कि आयातित वस्तुओं की क़ीमतें बढेंगी। जिन चीज़ों में किसी भी किस्म की आयातित वस्तुओं का इस्तेमाल कच्चे माल के रूप में होता है, उनकी क़ीमतें बढ़ना भी स्वाभाविक है। जिन चीज़ों को निर्यात के उद्देश्य से बनाया गया है, ऐसे में उनकी क़ीमतें भी बढ़नी चाहिए। तभी पुरानी दरों पर व्यापार करने पर इनमें कोई मुनाफा होगा। इसके अलावा अगर घरेलू उत्पादन में तत्काल वृद्धि नहीं की गई तो भी भारतीय बाज़ार के लिए माल बचेगा ही नहीं। आपूर्ति के कम होने पर क़ीमतों का ऊपर जाना तय है, इसके अलावा विदेशी मदद और बाज़ार में ज़्यादा रुपए के होने के कारण भी मूल्यों में वृद्धि होने की संभावना है। ऐसा रोकने का एक ही उपाय है कि सरकार अपने ख़र्चों में बड़े पैमाने पर कटौती करे। हर रोज इस आशय की अपीलें प्रधानमंत्री द्वारा की जाती हैं। लेकिन वास्तविकता में इसके लिए कोई ठोस क़दम उठाए जाते नहीं दिखते। किसी भी नियंत्रण के क़ानून

बनाना आसान है। लेकिन उस क़ानून को अमली जामा पहनाने के लिए ज़्यादा लोग चाहिए होंगे, अगर कहीं ये लोग भ्रष्ट हुए तो ख़र्च फिर से बढ़ता है। अंत में इसका बोझ फिर से उपभोक्ता पर ही आएगा।

सुपर बाज़ार या सुपर छलावा

सरकार ने खाद्य आयात और अन्य ज़रूरी संसाधनों पर सब्सिडी देने की घोषणा की है। इस योजना के तहत सुपर बाज़ार, उपभोक्ता सहकारिता संस्थाएँ भी बनाने की योजना है। एक ऐसा ही सुपर बाज़ार नई दिल्ली में खुल भी चुका है। इस मुद्दे का अवमूल्यन से कोई लेना-देना नहीं है। भुवनेश्वर के प्रस्ताव में कांग्रेस ने खाद्यान्न और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं को राष्ट्रीकृत व्यापार के अंतर्गत लाने का निश्चय किया था। क्या इन क़दमों से क़ीमतों में गिरावट आएगी? बिल्कुल नहीं। जैसा कि हम जानते हैं कि निजी क्षेत्र में सेवा मूल्य कभी भी सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा मूल्य से कम होता है। सरकार कृत्रिम तरीक़ों से क़ीमतों को नियंत्रण में रखने के प्रयास कर सकती है। लेकिन ये सब्सिडी भी तो जनता के पैसे से टैक्स के रूप में वसूले गए पैसे से ही दी जाएगी। आयात को सहारा देने के लिए वित्त मंत्री जिस 165 करोड़ रुपए के आबंटन की बात कर रहे हैं वह हाल में ही लगाए गए निर्यात करों से ही आएगा। अगर इन सब्सिडियों को कारगर और असरदार होना है तो फिर उन्हें मात्रा में भी ज़्यादा होना होगा और इसके लिए और ज़्यादा टैक्स की ज़रूरत होगी।

करोड़ों उपभोक्ताओं और उत्पादकों के हितों पर अवमूल्यन से चोट हुई है। दिल्ली में एक प्रतीकात्मक बाज़ार के बनने से बहुसंख्यक को कोई फ़ायदा हो, न हो राजधानी में प्रचार का एक अच्छा मौक़ा तो मिल ही गया है। वित्त मंत्रालय ने सांसदों को जो नोट बाँटा है, उसके मुताबिक क़ीमतों की वृद्धि के कारण अवमूल्यन नहीं बल्कि कुछ और हैं। अवमूल्यन के क्या नतीज़े होंगे, उन सबको जोड़ना अभी बाक़ी है। क्या इसका अर्थ पिछले वादों से मुकरना नहीं होगा, क्या इसका मतलब और ज़्यादा नुक़सान की अर्थनीति बनाना नहीं होगा? इन सबसे तो मूल्यों में और ज़्यादा वृद्धि होगी।

सुपर बाज़ार बनाने की योजना एक और छलावा ही सिद्ध होगी। इस योजना पर श्री वेंकटरमण, जो कि मद्रास के उद्योग मंत्री हैं, उनका बयान ध्यान देने लायक है, 'जिन देशों में ज़रूरत से ज़्यादा सामान हो, वहाँ मैंने डिपार्टमेंटल स्टोर का

खुलना सुना है। जहाँ कमी होती है वहाँ तो केवल उचित मूल्य की दुकानें होती हैं। जो देश पहले ही कमियों से जूझ रहा हो, वहाँ पर सुपर बाज़ार का खुलना तो खुद में ही एक मजाक है।'

क़ीमतों की वृद्धि रोके बिना तनख्वाह की वृद्धि को रोकना

क़ीमतें बढ़ती जा रही हैं और ऐसे में जब कर्मचारी अपने भत्ते में वृद्धि चाहता है तो वह उचित ही है। वे लोग जो व्यापारियों की नज़र से चीज़ों को देखते हैं, कहते हैं कि मज़दूरी में वृद्धि से उत्पादन का ख़र्चा बढ़ेगा। ये मज़दूरी और क़ीमत की खींचतान दस साल से चल रही है। इस दुश्चक्र को तोड़ना पड़ेगा। लेकिन इसके लिए मज़दूरी का बढ़ना रोक देना कोई उपाय नहीं है। जब तक क़ीमतों का बढ़ना और मुनाफे का बढ़ना रोका नहीं जाता है, तब तक मज़दूरी का बढ़ना रोकने का कोई अर्थ नहीं है। इसके अलावा यह भी गौर करना चाहिए कि क़ीमतों में इतना तेज इजाफ़ा हुआ है कि मज़दूरी का बढ़ना रोकना बिल्कुल अमानवीय होगा। यह मज़दूर के काम करने की क्षमता को घटा देगा, जिससे उत्पादन कम होगा। कामगार के रहन-सहन का स्तर घटेगा, जिससे असंतोष होगा। उत्पादकता को बढ़ाना इस घड़ी की ज़रूरत है। ये तब तक पाई नहीं जा सकती जब तक कामगार भूखा और असंतुष्ट है। सरकार अपनी ग़लत नीतियों का दुष्प्रभाव मज़दूरों पर नहीं डाल सकती।

भत्तों का पूरा मुआवजा दिया जाए और आंशिक भुगतान अन्य तरीक़े से हमारी माँग है कि भत्तों पर पड़नेवाले महँगाई के बोझ का पूरा मुआवजा देने की बात सरकार स्वीकार करे। हरेक भुगतान अभी पैसे के रूप में ही नहीं किया जा सकता है। इसका एक हिस्सा अन्य तरीक़ों से भी भरा जा सकता है। ज़रूरी वस्तुओं को संगठित क्षेत्रों के मज़दूरों को और सरकारी कर्मचारियों को सस्ती दरों पर दिया जा सकता है। इस तरह से ये कर्मचारियों के लिए ज़्यादा फायदेमंद होगा। कई कामगारों ने पहले ही यह माँग सामने रख दी है।

अवमूल्यन रोका जा सकता था

यह आसानी से समझा जा सकता है कि अवमूल्यन के छोटे और लंबे समय के प्रभाव भारत के लिए फायदेमंद नहीं होनेवाले। यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे रोका नहीं जा सकता था। हाँ, ये सच है कि, 'सभी विदेशी मदद संबंधी समझौते इस फ़ैसले पर टिके थे।' हम अगर रुपए का अवमूल्यन करने से इनकार

कर देते तो ऐड इंडिया कंसोर्टियम हमें और सहायता नहीं देता। ऐसे में हम विदेशी मदद के बिना ही काम चलाते। यह आर्थिक रूप से भी फायदेमंद होता और राजनीतिक रूप से ज़्यादा सम्मानजनक होता। हाँ, इसके कारण हमें अपनी नीतियों और योजनाओं में कई बदलाव करने पड़ते। अभी भी हमें वो बदलाव करने ही होंगे, उनके बिना हमारी अर्थव्यवस्था घुटनों पर आ जाएगी। अवमूल्यन ने हमारी समस्याओं को और बढ़ा दिया है बस। इन विदेशी सहायता योजनाओं के दोबारा शुरू हो जाने से सरकार को ये बदलाव लाने के लिए थोड़ा समय मिल गया है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि सरकारी रवैया बड़ा ढुलमुल और धीमा है। योजना आयोग अपनी ही सोच का शिकार हो गया लगता है। लगता नहीं कि वह हालात से निपटने के लिए क्रांतिकारी क़दम उठा सकता है।

राजनीतिक दबाव के आगे झुकना

इस फ़ैसले के पीछे राजनीतिक दबाव ही कारण था, इस बात से तो सरकार इनकार नहीं कर सकती। कोई भी सरकारी इनकार को माननेवाला नहीं है। ये ज़्यादा ईमानदार और कहीं ज़्यादा लोकतांत्रिक प्रक्रिया होती, अगर लोगों को इस मुद्दे पर भरोसे में लिया गया होता। पूर्व वित्त मंत्री श्री टी.टी. कृष्णामचारी[4] ने भी पोल खोल दी है। उन्होंने कथित रूप से कांग्रेस कार्य समिति को बताया है कि विश्व बैंक और अमरीकी सरकार पिछले दो वर्षों से इस अवमूल्यन के लिए दबाव बना रही थी और उन्होंने इसे रोक रखा था। हमें यह भी पता है कि मौजूदा सरकार अवमूल्यन के बिना ही मदद लेने के प्रयासों में जुटी हुई थी। शायद वह ताशकंद में सोवियत दबाव में झुकने का दर्द इधर कम करना चाहते थे। लेकिन अमरीकी सरकार अड़ गई। ये दुःखदायी और शर्मनाक है, लेकिन हमें मानना होगा कि हम दबावों में झुक गए। अमरीकी सरकार ने मदद दोबारा जारी करते हुए कहा कि इसका भारत सरकार के रुपए के अवमूल्यन के फ़ैसले से कोई लेना-देना नहीं है। ये सिर्फ़ एक बयानों की लीपापोती है। इस मामले में 'न्यूयॉर्क टाइम्स' की रिपोर्ट से ज़्यादा पता चलता है, उसने लिखा है :

'भारत की आर्थिक नीतियों में ज़्यादातर बदलाव लगातार अमरीकी और

4. टी.टी. कृष्णामचारी (1899-1974) नेहरू कैबिनेट में वित्त मंत्री थे, इन्हें 1957-58 में हुए मुंधरा घोटाले में लिप्त होने के आरोप में 18 फरवरी, 1958 को इस्तीफ़ा देना पड़ा था। ये स्वतंत्र भारत के पहले मंत्री थे, जिन्हें भ्रष्टाचार के आरोप के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा था।

विश्व बैंक के दबाव बनाए रखने से संभव हुआ है। अमरीकी दबाव इसलिए भी कामयाब हुआ, क्योंकि ज़्यादातर उसने ही भारत के विकास के लिए विदेशी मुद्रा दी है और भारतीय कारख़ानों को चालू हालत में रखा। चाहे फिर इन्हें मदद से जुड़े 'धागे' कहें या फिर 'शर्तें', भारत के पास विश्व बैंक की मदद पाने के लिए इन्हें मानना ज़रूरी था। भारत के पास जाने के लिए कोई और जगह नहीं थी।'

जिस तरीक़े से सरकार ने यह फ़ैसला लिया, वह भी ग़लत है। हम एक लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं। ऐसे अहम फ़ैसले लेने से पहले सरकार को कम-से-कम सदन और संसद् की सलाह लेनी चाहिए। फ़ैसला सुनाने से पहले कैबिनेट की एक बैठक हुई थी, जिसमें औपचारिक रूप से यह फ़ैसला लिया गया। लेकिन उससे पहले ही प्रधानमंत्री यह फ़ैसला ले चुकी थीं और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को इस बारे में सूचित भी कर दिया था।

राष्ट्र को स्वयं को स्थापित करना होगा

कई कारणों से यह माना जा सकता है कि जब प्रधानमंत्री अमरीका की यात्रा पर थीं, तभी इस संबंध में उन्होंने वादा कर दिया था। उनके फ़ैसले ने हमें बता दिया है कि विदेशी स्रोतों पर हम कितने निर्भर हैं, और हमारी ग़ुलामी की जंजीरें कितनी मज़बूत हैं। हमने रुपए का ही अवमूल्यन नहीं किया, यह अवमूल्यन लोकतंत्र और देश का भी है। हमारी संप्रभुता को एक झटका लगा है।

सरकार आगे के रोकथाम के क़दम उठाने में धीमी है। हमारी ओर से आगे इसकी रोकथाम के लिए लोगों की शक्तियों को एक दिशा में लगाना होगा। हमें उनकी लोकतांत्रिक भावनाओं को जगाकर उन्हें शृंखलाबद्ध करना होगा। कांग्रेस सरकार द्वारा पूरे राष्ट्र को शर्मिंदा किए जाने का प्रतिकार होना चाहिए। यही एकमात्र उपाय है, राष्ट्र की संप्रभुता और प्रतिष्ठा को वापस पाने का। भारत के देशभक्त पुत्रों और पुत्रियों को देश का झुकता हुआ झंडा पुनः उठाना ही होगा। हमें देश की राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता का पुनर्स्थापन करना होगा। यही शांति, समृद्धि और सम्मान का मार्ग है।

—*वंदेमातरम्*—

परिशिष्ट-ए

स्वतंत्रता ख़तरे में है

देर रात गए 5 जून को वित्त मंत्री सचिन चौधरी ने सरकारी फ़ैसले से देश को अवगत करवाया। रुपए का सोने की तुलना में 36.5 प्रतिशत और डॉलर, पौंड स्टर्लिंग और रूबल की तुलना में 57.5 प्रतिशत अवमूल्यन हो गया। यह फ़ैसला अप्रत्याशित था, सिवाए हम पर दबाव बना रही शक्तियों के, किसी को इस फ़ैसले का अंदाज़ा नहीं था। भारतीय लोगों के लिए यह सदमे से कम नहीं था। इस आघात से सोमवार को धरती माता भी हिल गई, 6 जून को राजधानी में झटके महसूस किए गए। जनता की दृष्टि में सरकार के वादे अपनी साख पूरी तरह से गँवा चुके हैं।

सभी लोग अवमूल्यन के फ़ैसले का विरोध करते रहे हैं। सभी प्रकार के तर्क, जिनमें से ज़्यादातर समझदारी भरे थे, ऐसे क़दम के ख़िलाफ़ दिए गए। फिर क्या हुआ, जो कुछ ही दिनों में सरकार को पलटना पड़ा? यह सत्य है कि अर्थव्यवस्था गंभीर संकटों से जूझ रही है। लेकिन जब बजट पेश किया गया था, तब भी हालात कुछ अलग नहीं थे। यह अवमूल्यन का फ़ैसला तब क्यों नहीं लिया गया, जब संसद् सत्र में था? यह सिर्फ़ सरकार की संसद् से ऊपर जाकर फ़ैसले लेने की मंशा को दिखाता है। जिन मामलों में राष्ट्र की संप्रभुता का सवाल हो, उन सभी में संसद् को फ़ैसला लेने की आज़ादी दी गई है। इस मामले में उसे सिर्फ़ पहले से लिये जा चुके फ़ैसले का अनुमोदन मात्र कर देने को कहा जा रहा है।

सरकारी प्रवक्ता चाहे जो भी कह लें, यह फ़ैसला आई.एम.एफ., आई.बी.आर.डी. और पश्चिमी देशों के दबाव में लिया गया है। इतने सालों से वे जो आर्थिक मदद दे रहे हैं, उसके साथ कोई शर्तें नहीं जुड़ी होंगी, हमने मूर्खतापूर्वक ऐसा मान भी लिया। वे जंजीरें तब नज़र आने लगीं, जब इन सभी स्रोतों से आनेवाली मदद पकिस्तान युद्ध के दौरान बंद हो गई। उस समय से धीरे-धीरे यह

फंदा कसता ही गया। जब लोग राष्ट्रप्रेम का परिचय देते हुए इन दबावों से लड़ने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय सरकार ने इनके सामने घुटने टेक दिए। युद्ध विराम से लेकर ताशकंद के शांति समझौते तक, फिर उसके बाद हाजी पीर और अन्य क्षेत्रों से हमारी सेनाएँ हटाने पर, खाद व्यापार समझौते से फिर रुपए के अवमूल्यन तक बार-बार हमारे राष्ट्रीय हितों की अनदेखी की जाती रही है। दुबारा हम पर ईस्ट इंडिया कंपनी और मुग़ल शासन दोहराया जा रहा है।

जनता को सचेत होना ही होगा। बाघ के मुँह ख़ून लग चुका है। आदमखोर को चैन नहीं आएगा। मदद इस वजह से आती रहेगी, क्योंकि रुपए का अवमूल्यन हो गया है। जनता को सचेत होना होगा, वे चाहते हैं कि पाकिस्तान के साथ हमारा अमन चैन बना रहे। उधर पकिस्तान जानता है कि उसकी हरकतों की तरफ़ से आँख मूँद ली जाएगी, इसलिए वह हमसे अपनी शर्तें मनवाने की कोशिश करेगा। कश्मीर मुद्दे का हल हर मदद की शर्त बना दी जाएगी।

पाकिस्तान के कम्युनिस्ट चीन के साथ बढ़ते संबंधों के बाद भी हमें अपने रक्षा बजट में कटौती करने को कहा जा रहा है। जबकि ऐसे हाल में परमाणु हथियार बनाना ही सुरक्षा का भरोसा दिला सकता है। हमें भरोसा दिलाया जा रहा है कि हम बुरे हाल में भी इनकी मदद के भरोसे बैठ सकते हैं। लेकिन ऐसे ही मौक़ों पर घेरने की कोशिश की जाती है। हमारा हाल वेलेजली समझौते के तहत आए कंपनी राज के दौर के राजपरिवारों जैसा हो गया है। यह कोई रुपए का नहीं, बल्कि हमारी आज़ादी का ही प्रश्न है।

इस फ़ैसले के दूरगामी नतीज़ों पर भी विचार करना होगा। जो क़दम उठाए गए हैं उन्हें सुधार की दिशा में उठाए गए क़दम कहा जा रहा है। निस्संदेह यह सरकार का कबूलनामा है, जो कहता है कि सरकार की आर्थिक नीतियाँ और योजनाएँ नाकामयाब रहीं। जिन्हें कल तक भेड़िया आया का शोर मचानेवाला कहा जा रहा था, आज उनके दावे सच साबित हुए। यह सच है कि अर्थव्यवस्था में सुधार की ज़रूरत है। लेकिन सरकार ने फिर से कंपनी के मुलाजिम की सलाह पर बिना बीमारी की जाँच करवाए कंपनी की दवा ख़रीद ली है। अवमूल्यन से कुछ निर्यातों में फ़ायदा होता है, लेकिन सभी पर उसका असर नहीं होगा।

वित्त मंत्रालय के 1955-66 के लिए संसद् में दी गई रिपोर्ट से ये साफ़ पता चलता है कि इससे निर्यात बढ़ेंगे नहीं, आयात महँगा हो जाएगा और क़ीमतें बढेंगी।

रुपए के अवमूल्यन से निर्यात का व्यापार नहीं बढ़ेगा। इसके विपरीत, निर्यात कर लगने से 12 चीज़ें महँगी होंगी और हमें ज़्यादा निर्यात करके उस नुक़सान की भरपाई करनी होगी। जिन चीज़ों के लिए माँग लचीली नहीं है, वहाँ निर्यात बढ़ाना भी संभव नहीं है।

इसके अलावा हमारी कृषि पहले ही कृषि आधारित वस्तुओं का सीमित निर्यात कर पाती है। ज़्यादा हिस्सा विदेशों में भेजकर कम-से-कम स्थानीय ख़रीद के लिए बचता है। इसकी वजह से कमी होती है और क़ीमतें बढ़ती हैं। सरकार सब्सिडी देकर क़ीमतों पर नियंत्रण रखने का प्रस्ताव दे रही है। अंदाज़ा लगाया जा रहा है कि 165 करोड़ रुपए की आय जो निर्यात कर और अभी मिलनेवाली छूटों के बंद होने से आएगी, उस मदद से सहायता हो जाएगी। लेकिन ये अंदाज़े कम करके आँके जा रहे हैं, असलियत में यह ख़र्च और ज़्यादा होगा। राजस्व विभाग नुक़सान में चल रही अर्थव्यवस्था के लिए क्या करेगा और कैसे यह बोझ उठाएगा, इस बारे में सरकार के पास कोई उत्तर नहीं है। मंत्रालय अपने ख़र्चों में कटौती के लिए तैयार नहीं।

सरकार आयात में भी छूट देने की बात कर रही है। लेकिन उसका महँगी क़ीमतों पर नपा-तुला असर होगा। जाहिर है कि अभी के व्यापक भ्रष्टाचार और लाइसेंस परमिट राज पर इससे अच्छा असर होगा। लेकिन साथ ही असली उपभोक्ता और छोटे तथा मध्यम उद्योग इससे बहुत अधिक प्रभावित होंगे।

आयात में छूट से बड़ी और आर्थिक रूप से सबल इकाइयों को तो फ़ायदा होगा, लेकिन छोटे व्यापारियों को किसी लाभ की संभावना कम है। उत्पादन बढ़ने के सपने हकीकत में उतने अच्छे नहीं भी हो सकते हैं। जैसे-जैसे निर्यात महँगा हो रहा है, वैसे-वैसे विदेशी मुद्रा पर नियंत्रण भी बढ़ेगा। सरकार इसे रोक नहीं सकती, क्योंकि मदद देनेवाले संगठनों की यह माँग है। इससे उन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था में ज़्यादा छूट मिलती है।

अभी की विनिमय दरों पर हमें क़रीब 1100 करोड़ रुपए की ज़रूरत है, जिससे रखरखाव की चीज़ों का आयात चले। उदारीकरण की नीतियों के कारण विदेशी व्यापारी अपना ज़्यादा बचा माल भारत में खपाने की कोशिश करेंगे। इससे हमारे आयात के विकल्प बनानेवाली योजनाओं पर असर पड़ेगा। इस तरह अवमूल्यन से हमारे स्वदेशी कार्यक्रम पर असर पड़ेगा, थोड़े ही समय में विदेशी उत्पादक

भारतीय बाज़ार पर कब्ज़ा जमा चुका होगा। यह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का तरीक़ा नहीं है। हमें अपने व्यापार घाटे से निपटना होगा।

किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर इस क़दम के फायदे नहीं दिखते। न तो यह अच्छी आर्थिक नीति है, न ही इसमें कोई सम्मानजनक राजनीति नज़र आती है। यह दुनिया की नज़रों में भारत का स्थान नीचा करता है। जो शक्तियाँ हमें एक कोने की तरफ़ धकेलना चाहती हैं, वो ऐसा करना जारी रखेंगी, क्योंकि इसमें उनका फ़ायदा है। हमारा ऐसी मदद का अभ्यस्त बन जाने का ख़तरा है। इंडोनेशिया इस मामले में एक अच्छा उदाहरण है। जब तक सरकार चौथी योजना को पूरी तरह नहीं बदल देती, तब तक इस चुनौती से निपटना संभव नहीं है। चौथी योजना अगर ऐसी ही रही और सरकार ऐसे ही ख़र्च करती रही तो अवमूल्यन आत्मघाती क़दम सिद्ध होगा। भारत सरकार की उपलब्धियों के नाम पर हमारे पास सन् 1962 में सैन्य हार, कूटनीतिक मोरचे पर ताशकंद की हार, और अब आर्थिक मोरचे पर जून 1966 का रुपए का अवमूल्यन है। यह सब कांग्रेस के ग़लत शासन के कारण ही हुआ है। अब समय आ गया है कि हम कमर कसकर देश को भविष्य की शर्मिंदगी और हार से बचाने के लिए मैदान में उतर जाएँ।

—ऑर्गनाइज़र, जून 12, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

परिशिष्ट-बी

जनसंघ की भारतीय कार्य समिति द्वारा 12 और 13 जुलाई, 1966 को पारित प्रस्ताव

भारतीय जनसंघ भारत सरकार के रुपए के अवमूल्यन के फ़ैसले का विरोध करता है। यह फ़ैसला आर्थिक रूप से नासमझी भरा और राजनीतिक रूप से शर्मिंदा करनेवाला है। यह देश के हितों और जन भावनाओं के ख़िलाफ़ लिया गया फ़ैसला है। इसे पूरी तरह से संसद् की अवमानना करते हुए विदेशी दबाव में लिया गया है। सरकार का कहना है कि यह क़दम सुधारों की दिशा में डूबती अर्थव्यवस्था को सहारा देने के लिए उठाया गया क़दम है। हम देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अवमूल्यन को कोई उपाय नहीं मानते। हाँ, यह ज़रूर है कि इतने सालों से बनाई और चलाई जा रही ग़लत नीतियों का पता इससे चल जाता है। अगर इसके साथ ही कुछ नीतिगत बदलाव लाए जाएँ तो हो सकता है कि अर्थव्यवस्था के कुछ हिस्सों पर इसका फ़ायदा दिखे, लेकिन समग्र तौर पर इसका असर नकारात्मक ही रहेगा।

इसके साथ जो मुख्य तर्क दिया जाता है, वह यह है कि इससे भुगतान संतुलन में सहायता होगी और निर्यात को बढ़ाने तथा आयात को कम करने में मदद मिलेगी। इस तर्क की कमज़ोरी यह है कि यह किताबी स्थितियों पर आधारित है, ज़मीनी सच्चाइयों पर नहीं। अगर निर्यात मूल्यों के प्रति लचीले हैं और लगातार एक ही क़ीमत पर उपलब्ध हैं, तभी यह काम करेगा। आयात की माँग को भी इसके लिए सतत रखना होगा। हमारे अस्सी प्रतिशत विदेश व्यापार के लिए यह स्थिति नहीं है। इसके अलावा सरकार ने कई वस्तुओं पर और ज़्यादा निर्यात कर लगा दिया है। आयात कर, उदारीकृत निर्यात, सब्सिडी और योजनाओं के अभाव को इनके साथ मिलाकर देखा जाना चाहिए। इसकी वजह से विदेशों से लिया गया

और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का क़र्ज़ बढ़ेगा।

अगर ग़ैर-परंपरागत उत्पादों को सस्ते में बनाया जा सका तो उनके निर्यात बढ़ने की संभावना बनेगी। हाल में ही हमने पूर्वी यूरोपीय देशों में अपने सामान के लिए बाज़ार बनाया है। उनके साथ व्यापार ज़्यादातर, अदला-बदली या रुपए में चलता था, इसलिए अब अवमूल्यन के बाद कई व्यापारिक समझौते फिर से करने पड़ेंगे। इसके अलावा ज़्यादातर निर्यात इस मार्ग पर बिना सब्सिडी और बिना सरकारी मदद के संभव नहीं है। क़ीमतों का फर्क इस व्यापार को बिना मुनाफे का व्यापार बना देता है।

अवमूल्यन से हमारे विदेशी कर्जों पर लगनेवाले ब्याज पर भी असर पड़ेगा। जिन्होंने विदेशों से सामान या किसी किस्म के कल-पुर्जे मँगवा रखे हैं, उनकी किस्तें अब महँगी हो जाएँगी। भारतीय निवेशक को अब अपने विदेशी साझीदार की तुलना में ज़्यादा ख़र्च करना होगा।

अलग-अलग व्यापारों पर होनेवाले इसके असर को मापने के कोई प्रयास नहीं किए गए। उनके सामने आनेवाली स्थितियों से निपटने की भी कोई योजना नहीं है। जैसे-तैसे होनेवाले उदारीकरण का बोझ अब आयात की वैकल्पिक व्यवस्था से सुलझाने की तैयारी है।

सरकार के दावों के बावजूद रुपए के अवमूल्यन के साथ ही क़ीमतों का बढ़ना एक सच्चाई है। सरकारी वादे अब किसी को दिलासा देने के काम भी नहीं आते। उनकी सहकारिता और सुपर बाज़ार की योजनाएँ समाजवाद के सिद्धांतों को दिखाने के लिए तो काम आएँगी, लेकिन उनसे जनता को शायद ही कोई मदद मिले। जब तक उत्पादन और उत्पादकता तेज गति से नहीं बढ़ती, अवमूल्यन के बाद क़ीमतें बढ़ती रहेंगी। पूँजी और उत्पादन ख़र्च में वृद्धि, कच्चे माल की कमी और घरेलू स्तर पर संसाधनों का अभाव इन समस्याओं को और बढ़ा देता है। मुद्रास्फीति संबंधी नीतियों के कारण ऐसा लगता है कि आसमान छूती क़ीमतों में कोई अंतर नहीं आनेवाला। निस्संदेह यह विनाश का मार्ग है।

यह स्पष्ट है कि रुपए के अवमूल्यन का फ़ैसला इसलिए लिया गया, क्योंकि राजनीतिक दबावों के कारण सारे फ़ैसले यानी 'सारी मदद इसी पर टिकी थी'। कहा जा रहा है कि इस मदद के साथ जो परतंत्रता की बेड़ियाँ हैं, उन्हें हमने स्वीकारने से इनकार कर दिया है। लेकिन पुराने अनुभव से पता चलता है कि

विदेशी मदद से बहुत कम फ़ायदा होता है। इससे हमारी अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास नहीं होता। सबके विकास के बदले जहाँ-तहाँ, कुछ ख़ास लोगों पर विकास के कुछ प्रारूप थोप दिए जाते हैं। इसमें कोई एकीकरण, कोई योजना नज़र नहीं आती। अगर यह मान भी लें कि पंद्रह साल पहले विदेशी पूँजी और तकनीकी की ज़रूरत थी तो आज भी हमें वही करने की ज़रूरत नहीं है। जनसंघ मानता है कि हम विदेशी मदद के बिना भी जी सकते हैं। जो भी हमारी ज़रूरत है, उसे हमें कमाना चाहिए, मदद नहीं माँगनी चाहिए। भारतीय जनसंघ जिन स्वदेशी के मूल्यों की बात शुरू से ही करता आ रहा है, उनके पुनः जागरण की आवश्यकता है।

ऐसे हाल में जनसंघ की सलाह है कि

1. सरकारी ख़र्च में कटौती की जाए;
2. नुक़सान की आर्थिक नीतियाँ बनानी बंद की जाएँ;
3. हमारी योजनाओं पर पुनः विचार हो और विदेशी मदद पर निर्भर होना बंद किया जाए;
4. स्वदेशी उत्पादन में जो भी बाधाएँ हैं, उन्हें दूर किया जाए;
5. उचित मूल्य पर ज़रूरी वस्तुएँ उपभोक्ता तक पहुँचाने की व्यवस्था की जाए : सरकारी कर्मचारियों और संगठित क्षेत्र के कामगारों को सब्सिडी वाली दरों पर सामान मुहैया करवाया जाए;
6. कृषि और खुदरा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को उच्च प्राथमिकता दी जाए।

परिशिष्ठ-सी

बिना किसी विशेष मदद के निर्यात की जा रही वस्तुओं की सूची

(मूल्य लाख में)

अनुक्रम वस्तु	1965	1964
1. जूट उत्पाद	18,400	16,100
(a) जूट टाट व बोरी का कपड़ा	11,000	10,188
(b) जूट की बोरी	6,505	5,267
(c) जूट डोरी और धागा	195	132
2. चाय	11,476	12,345
3. मसाले	2,069	1,610
(i) कालीमिर्च	980	558
(ii) इलायची	368	307
(iii) मिर्च	172	330
(iv) अदरक	148	133
(v) अन्य	401	282
4. कॉफ़ी	1,141	1,363
5. धातु कबाड़	625	508
लोहे और स्टील का कबाड़	614	486
7. कपड़े का रेशा		
(जिनसे अभी वस्त्र निर्माण नहीं हुआ)	2,634	3,243
(A) कपास	1,386	1,506
(a) कच्चा कपास	1,013	1,145
(b) कपास की रद्दी	367	351

(B)	ऊन और अन्य जानवरों के बाल	695	973
	कच्चा ऊन	628	935
(C)	कपास और जूट को छोड़कर वेजिटेबल फाइबर	165	294
	(i) ताड़ के रेशे	55	127
	(ii) भाँग के रेशे और कबाड़	80	132
(D)	कच्चा जूट	300	392
(E)	कपड़े के रेशे का बेकार पदार्थ	88	78
7.	काजू	2,900	2,656
8.	अन्य फल (अखरोट सहित)	260	279
9.	सब्जियाँ (सूखी और ताजी)	370	562
(i)	प्याज	237	328
(ii)	दाल	50	89
(iii)	अन्य सब्जियाँ	72	143
10.	विनिर्माण हेतु पशु एवं सब्जियों के अपरिष्कृत पदार्थ, (हड्डियाँ तथा अखाद्य पदार्थों को छोड़कर)	1,550	1,634
(A)	गोंद, रेजिन और लाख	734	747
	लाख	402	425
(B)	अशोधित अफ़ीम	232	264
(C)	दवाओं या इत्र में इस्तेमाल होने वाले पौधे, बीज और फूल सामग्री	385	392
	बीड़ी पत्ता	95	102
(D)	चमड़ा शोधन एवं रँगाई में इस्तेमाल होनेवाले पौधे व उनके हिस्से	80	99
(E)	कूची के रेशे	119	132
11.	पशु खाद्य	118	89
12.	चीनी और संबंधित उत्पाद	1,220	1,957
(a)	चीनी	1,211	1,952
(b)	गुड़-चीनी मिश्रित पदार्थ	1,185	1,933

(c) गुड़	25	18
13. चमड़े का कच्चा माल और तैयार सामान	3,506	3,261
14. खनिज, ईंधन, स्नेहक और संबंधित उत्पाद	968	1,106
(a) पेट्रोलियम उत्पाद	525	746
(i) मोटर स्पिरिट	385	529
(ii) पेट्रो मोम	40	79
(b) कोयला और ब्रिकेट	375	404
कोयला	372	395
15. तिलहन और उनके उत्पाद	23	424
बादाम, मूँगफली	2	393
16. लकड़ी और कॉर्क के उत्पाद		
या उससे संबंधित	232	254
रोज वुड	158	178
17. चूना, सीमेंट तथा गढ़ी हुई निर्माण सामग्री		
(काँच और मिट्टी रहित)	42	77
18. मांस और उससे बनी वस्तुएँ	45	207
19. एनिमल केसिंग्स	131	99
20. खाने हेतु ज़िंदा जीव	59	61
वन्य जीव नहीं	42	44
21. धातु अयस्क	5,617	5,720
(a) लौह अयस्क	3920	3582
(b) मैगनीज अयस्क	920	1,328
(c) अन्य अयस्क	777	810
22. निर्माण हेतु हड्डियाँ	285	265
23. तंबाकू	2,338	2,382
24. अभ्रक	1,072	969
25. कायनाइट अयस्क	68	69
26. अन्य खनिज	288	137
27. लौह-मैगनीज	482	702

28.	नमक	62	58
29.	खली	3,618	3,779
30.	अन्य उत्पाद पुनर्नियात	2,458	1,465
	कुल योग	**64,099**	**63,381**

परिशिष्ट डी

अनुबंध-XX C

विशेष निर्यात विकास योजना के तहत आनेवाली वस्तुओं की सूची (कच्चे माल का आयात और पुर्जों या संबंधित कच्चे माल का आयात)

(मूल्य लाख में)

अनुक्रमांक	वस्तु	1965	1964
1. सूती कपड़े और धागे		6,325	6,436
(a)	सूती कपड़े	5,670	5,812
(i)	मिल निर्मित सूती कपड़े	4,738	5,042
(ii)	सूती वस्त्र, हथकरघा	932	770
(b)	सूती धागे और रेशे	655	624
2. अन्य सूती वस्त्र		800	815
(i)	घरेलू उपयोग संबंधी चादरें	330	400
(ii)	तौलिए	195	204
(iii)	परिधान	280	286
(iv)	कंबल, सफ़र उपयोगी और खोल (ऊन के अलावा अन्य से निर्मित)	140	129
3. ऊनी उत्पाद (दरी और कालीन के अलावा)		215	97
4. अभियंत्रण सामग्री		1975	1315
(i)	पाइप और फिटिंग	110	39
(ii)	स्टील ट्यूब और फिटिंग	110	48

(iii) साँचे और ढाले हुए	8	8
(iv) एंगल और अन्य उत्पाद	202	145
(v) धातु निर्मित उत्पाद	470	407
(vi) मशीनरी एवं माल ढुलाई उपकरण	887	797
(vii) स्टील फर्नीचर	13	15
(viii) छाते	30	33
5. रसायन और इससे संबंधित उत्पाद	891	829
(i) इत्र, सौंदर्य और प्रसाधन संबंधी	71	71
(ii) काँच और संबंधित उत्पाद	52	51
(iii) रासायनिक अवयव और यौगिक	185	183
(iv) दवाएँ और औषधि सामग्री	178	183
(v) रबर निर्मित	210	131
(vi) जूते (चमड़े के अलावा)	195	210
6. चमड़ा और उससे निर्मित वस्तुएँ	521	676
(i) तैयार चमड़ा	122	319
(ii) चमड़े से निर्मित वस्तुएँ	22	18
(iii) जूते-चप्पल हेतु चमड़ा	305	295
(iv) यात्रा संबंधित उत्पाद	72	44
7. कागज़ और संबंधित उत्पाद	200	208
(i) क़िताबें और छपी सामग्री	92	117
(ii) काग़ज़ और पेपर बोर्ड	108	91
8. प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद	115	58
(i) चीनी कन्फ़ेक्शनरी	6	5
(ii) स्टार्च और उससे संबंधित पदार्थ	75	19
(iii) बिस्कुट	17	17
(iv) अन्य खाद्य सामग्री	17	17
9. मछली और संबंधित उत्पाद	675	653
(i) ताजी और संरक्षित मछलियाँ	590	583
(ii) मछली उत्पाद	85	70

10. हस्तशिल्प (क़ीमती पत्थरों के अलावा)		883	1167
11. अगरबत्ती		24	29
12. खेल सामग्री		72	60
13. प्लास्टिक उत्पाद		70	37
14. नारियल रेशे व उससे निर्मित उत्पाद		1051	1149
(i)	नारियल रेशा	675	742
(ii)	नारियल रेशे की दरी व चटाई	365	371
15. ज़रूरी तेल		273	299
कुल		14090	13828

* जनवरी-नवंबर 1965 के वास्तविक तथा दिसंबर 1965 के अनुमान पर आधारित

परिशिष्ट-ई

परिशिष्ट-XX D

निर्यात में सहयोगी आयात के लिए अधिकृत वस्तुओं की सूची

(क़ीमत लाख रुपए में)

क्रम संख्या वस्तु	1965*	1964
1. वनस्पति तेल (ग़ैर-सुगंधित) और हाइड्रोजिनेटेड वनस्पति तेल	453	1430
(i) अरंडी का तेल	220	380
(ii) मूँगफली का तेल	नगण्य	771
(iii) अन्य वनस्पति तेल	210	246
(iv) हाइड्रोजनीकृत वनस्पति तेल	23	33
2. एक्स्पोज्ड सिने फिल्में (चाहे वह डेवलप हुई हैं या नहीं)	185	220
3. बहुमूल्य और अर्धबहुमूल्य पत्थर (कटे और तराशे हीरे, रत्न)	1480	1302
4. सिंथेटिक फाइबर के कपड़े और		
तंतु गिलास	441	821
आर्क सिल्क और कपड़े	426	809
कुल	**2259**	**3773**

* जनवरी-नवंबर,1965 के वास्तविक और दिसंबर, 1965 के अनुमानों पर आधारित

परिशिष्ट-एफ

भारत में प्रमुख वस्तुओं का आयात

(मूल्य लाख रुपए में)

वस्तु	1965	1964
अनाज	290	266
दुग्ध उत्पाद	7	10
फल एवं सब्जियाँ	25	21
तिलहन इत्यादि	9	8
रबर	6	8
लुगदी और अपशिष्ट	5	9
कच्चा कपास	51	58
कच्ची लकड़ी और खिलौने	8	11
कच्चा जूट	12	4
सिंथेटिक कपड़े	2	3
उर्वरक	49	40
खनिज, ईंधन और लुब्रिकेंट	63	82
रसायन तत्त्व व यौगिक	37	34
डाईंग और टेनिंग पदार्थ	7	9
औषधीय एवं चिकित्सकीय उत्पाद	10	8
काग़ज़, पेपर बोर्ड इत्यादि	14	12
कपड़ा तागा और धागा	7	13
लौह एवं इस्पात	105	105
अलौह धातुएँ	67	58

(i) ताँबा	37	25
(ii) जिंक	15	10
(iii) टिन	7	8
(iv) अल्युमिनियम	7	7
धातु निर्मित उत्पाद	17	15
मशीनरी	419	388
परिवहन उपकरण	67	63
उपकरण, औजार और अनुप्रयोग इत्यादि	14	14
अन्य	92	95
कुल योग	1383	1334

—पुस्तक, जून 5, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



20

भारत अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्रों से सावधान रहे

दिल्ली में आयोजित सुरक्षा सम्मेलन में दीनदयालजी के विचार।

यद्यपि पहले की अपेक्षा अब चीन और पाकिस्तान की ओर से हमारी भौगोलिक अखंडता और राजनीतिक स्वतंत्रता को प्रस्तुत संकट के प्रति अधिक जागरूकता है। परंतु सरकार की नीतियाँ अब भी संकट का मुक़ाबला करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। समय पड़ने पर तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ फ़ैसले और प्रबंध किए जाते हैं। अभी तक न तो अनिश्चय और ढीलापन मिटा है और न संभावित संकट की पूरी कल्पना है। आवश्यकता है कि हम पिंडी-पैकिंग गठजोड़ को व्यापक रूप में देखकर संकट की गंभीरता को समझें और तात्कालिक तथा दीर्घकालिक दोनों दृष्टि से उसका मुक़ाबला करने की तैयारी करें।

यह ठीक है कि सन् 1962 की स्थिति की तुलना में आज हमने अपनी सैनिक शक्ति काफ़ी बढ़ाई है। परंतु अपनी सीमा के विस्तार, उसकी बनावट और शत्रु की तैयारियों को देखते हुए वह अब भी अपर्याप्त है। सशस्त्र सेना की संख्या बीस लाख करने के साथ-साथ हमें बीस से बाइस वर्ष तक की आयु के युवकों के लिए अनिवार्य सैनिक शिक्षा देने का शिक्षाक्रम लागू करना चाहिए। इस प्रकार हमारे पास अतिरिक्त शक्ति भी बनी रहेगी और पक्की फौज में भरती के लिए जरिया भी उपलब्ध हो जाएगा।

आत्मघाती दुराग्रह

अणुशस्त्रों के निर्माण न करने का सरकार का दुराग्रह आत्मघाती है। अणुबम

विस्फोट हमारे लिए अनिवार्य हो गया है। आत्म-निषेध की इस नीति का दूसरा पर्याय केवल यह है कि इस सारी सेना को भंग करके आक्रमणकारी चीनियों और पाकिस्तानियों के विरुद्ध शांतिपूर्ण सत्याग्रह की वीरता का उदाहरण प्रस्तुत करें। निसंदेह इससे हमारी स्वतंत्रता तो समाप्त हो ही जाएगी। इस अंतिम महत्त्वपूर्ण विषय में सरकार को और अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए। पहले इस विषय में कम-से-कम तीन वर्ष खोने का अपराध कर चुके हैं। हो सकता है, कल इस नीति को सुधारने का अवसर ही शेष न रह जाए।

आत्मनिर्भरता आवश्यक

आत्मनिर्भरता यशस्वी प्रतिरक्षा की धुरी है। सरकार की आर्थिक नीतियाँ लोगों के मनोबल को सोखती जा रही हैं। चौथी योजना की रचना ही विदेशी सहायता पर आधारित की गई है। खाद्य पदार्थ, उर्वरक और पूँजी तीनों के विषय में विदेशी स्रोतों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। सारा औद्योगिक ढाँचा बुरी तरह विदेशी आयात पर निर्भर बना हुआ है। पाकिस्तान के साथ युद्ध के दौरान के स्वदेशी पर्याय लागू किए जाने की इतनी देशभक्ति से चलाए गए कार्यक्रम का परित्याग कर दिया गया है। ऐसा लगता है कि हम पिछले अनुभवों से कुछ सीखना नहीं चाहते।

अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र

बदली हुई परिस्थितियों में भी यदि हम अपनी आर्थिक योजनाओं के लिए इसी प्रकार विदेशी शक्तियों पर बहुत निर्भर करते रहे तो सैनिक गठबंधनों से बचे रहना हमारे लिए असंभव हो जाएगा। आत्मनिर्भरता के सिद्धांत को हमें आर्थिक क्षेत्रों में भी अपनाना होगा। विदेशों से उधार लेने की भी हमारी सीमा होनी चाहिए। और यह सीमा विदेशी शक्तियों के रुख़ और रवैये के अनुरूप नहीं वरन् विदेशी मुद्रा अर्जित करने की हमारी क्षमता के अनुसार होनी चाहिए। अंधाधुंध विदेशी क़र्ज़ लेने और विदेशी कंपनियों को हर प्रकार की सुविधाएँ देने की वर्तमान नीति हमारी राजनीतिक मेधा और सत्ता के साथ आर्थिक हितों को भी चोट पहुँचाएगी। समय आ गया है कि हमारी स्वतंत्रता और अर्थव्यवस्था को खोखला करने के इस अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र को ध्वस्त करने के लिए हमें खड़े हो जाना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जून 6, 1966



21

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : नई दिल्ली

प्रत्येक प्राणी स्वतंत्रता की आकांक्षा करता है। स्वतंत्रता बिना सुख नहीं। परतंत्रता में प्राप्त सुख से भी, स्वतंत्र रहने में दुःख और कष्ट सहने में अधिक आनंद अनुभव होता है।

पुरुष में विशेषतया स्वतंत्रता का प्रेम होना चाहिए। अन्यथा पुरुष पुरुष नहीं, जिसमें पुरुषार्थ न हो—वह आग क्या जिसमें जलन न हो।

चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से लक्ष्य मोक्ष माना गया है। मोक्ष का अर्थ 'बंधन से मुक्ति' है। कर्म अर्थात् काम करने से छुट्टी नहीं। मोक्ष में जीव ब्रह्मलीन हो जाता है। परंतु भगवान् भी तो कर्म करता है, इसलिए 'कर्म के फल' को समाज को अर्पित करने में ही मोक्ष है।

स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं। जैसे अहिंसा का अर्थ मार-पीट न करना और ख़ून न बहाना इतना ही नहीं, अहिंसा का अर्थ है किसी के मन को दुःखी न करना। इसी प्रकार स्वतंत्रता का अर्थ है 'सत्य का शोध'। मनमानी करना तो स्वच्छंदता है।

भगवान् की सृष्टि का भी अपना एक तंत्र है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति का और इसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र का अस्तित्व किसी योजना को पूर्ण करने के लिए होता है। यूनान आदि राष्ट्र अपने तंत्र को छोड़ देने से ही मरे हुए माने जाते हैं। भगवान् के तंत्र को समझना विज्ञान कहलाता है। जैसे किसान का तंत्र घास-फूस को उखाड़ना और फ़सल की रक्षा करना होता है, ऐसे ही भगवान् के तंत्र में केवल उपयोगी वस्तु को ही रखा जाता है, इसी तरह राष्ट्र की प्रकृति को भी समझना चाहिए।

—सारांश, जून 6, 1966



22

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग : जयपुर

मानवों का वह समूह, जो निश्चित प्रकृति के साथ जन्म लेता है, जाति कहलाता है। जब यह जाति किसी भूखंड को माता के समान प्रेम करती है तो वह राष्ट्र कहलाता है। वह राष्ट्र अपनी प्रकृति के अनुसार अपने जीवनोद्देश्य के अनुसार भावों की सृष्टि करता है। उसके भावात्मक एवं भावनात्मक मूल्यों को संस्कृति तथा उसके भौतिक मूल्यों को सभ्यता कहते हैं, और दूसरे देशों के साथ तथा अपनी प्रकृति विरुद्ध जो-जो विकृति तथा विपत्ति आती है, उसको दूर करने के प्रयत्नों को उस जाति का इतिहास कहते हैं। वह राष्ट्र, संस्कृति के निर्माता एक से महापुरुष, एक जीवन-मूल्य, एक आदर्श की मालिका लेकर चलता है। राष्ट्र के सुख-दुःख, प्रगति-परागति, आकांक्षाएँ, अच्छे-बुरे की धारणा, पाप-पुण्य की मान्यता समान होती है। भारत में हिंदू राष्ट्र है, क्योंकि वह अपनी प्रकृति को लेकर जन्मा है और उसी के अनुसार संघर्ष आदि सभी क्रियाएँ की हैं। राम का रावण के साथ युद्ध, भारत की आध्यात्मिक प्रकृति का आसुरी प्रकृति से युद्ध था। कौरव तथा पांडवों का युद्ध भी धर्ममय तथा आसुरी प्रकृति का युद्ध था।

लोग प्रश्न करते हैं कि यह हिंदू राष्ट्र है तो अहिंदुओं का क्या होगा? तो वास्तव में इस विषय में अपने को विचार करने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि यह बात तो उन लोगों के लिए विचारणीय है, जो अपने को हिंदू नहीं कहते हैं। उन लोगों में कुछ तो बाहर से आए हैं आक्रमणकारी के रूप में, जैसे शक, हूण आदि। उनमें से कुछ का हमने पराभव किया और जो बच गए, वे इस देश के जातीय जीवन में समरस हो गए। सब हिंदू हो गए, कुछ भी अंतर नहीं बचा। भारत में हमेशा मजहब की स्वतंत्रता रही, कभी मत परिवर्तन का आग्रह नहीं रहा। अरब

से मुसलमान दुनिया भर को इसलामी बनाने चले। ईरान के राजा का जब पतन हुआ, तब वहाँ का मजहब माननेवाले कुछ लोग भारत आए, वे लोग यहाँ आनंद से रहते हैं, उनसे मजहब बदलने का आग्रह नहीं किया गया। उन पारसियों ने इस देश के भले-बुरे के तथा आकांक्षाओं के साथ अपने को एक कर दिया।

अरब की आँधी भारत में भी आई। मोहम्मद बिन कासिम सिंध में आया, उसका राज्य कुछ दिन चला, फिर ख़त्म हो गया। महमूद गजनवी आया व चला गया। मोहम्मद गौरी आया, उसने अपना राज्य बनाया और यहाँ के लोगों को इसलाम में दीक्षित किया और वे फिर हिंदू से अलग होकर चले।

मुसलमान समाज का विचार दो प्रकार से करना है।

मजहब के नाते और भारत में पूजा के भिन्न प्रकार होने के कारण भारत में झगड़े नहीं हुए। अन्य मजहबों में झगड़े हुए। ईसा मसीह को फाँसी दी गई, ब्रूनो[1] को जिंदा जला दिया गया। गैलीलियो[2] को ज़ेल में डाल दिया गया। वहाँ सब हुआ, पर हिंदू प्रकृति ने ईश्वर के नाम पर कभी झगड़ा नहीं किया। पेड़, पत्थर, ब्रह्म, निराकार, साकार मानकर ईश्वर की पूजा करने की स्वतंत्रता दी गई। पर झगड़ा नहीं किया। व्यक्तिगत पूजा में कभी बाधक न होने के कारण अल्लाह का नाम हमारे लिए झगड़े का कारण नहीं बना।

लोग कहते हैं कि इसलाम का क्या होगा? तो जब तक हिंदू जीवित है, इसलाम को कोई ख़तरा नहीं। क्योंकि अल्लाह और राम में कोई भेद नहीं है। 'अल्लाह ईश्वर तेरे नाम' महात्मा गांधी की देन नहीं अपितु इसके पूर्व भी इसका प्रचार था। और विष्णु सहस्र नाम में एक नाम अल्लाह का और जुड़ जाने पर अपनी कोई हानि नहीं होती।

अत: झगड़ा मजहब का नहीं, महत्त्वाकांक्षा का है। मजहब की आड़ में

---

1. जियोर्दानो ब्रूनो (1548-1600) इटली के दार्शनिक, गणितज्ञ एवं खगोलवेत्ता थे। इन्होंने देश में पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध आधुनिक वैज्ञानिक विचारों का उद्घोष किया था, कैथोलिक चर्च ने अफवाह फैलाने का आरोप लगाकर इन्हें ज़िंदा जला दिया था।
2. गैलीलियो गैलिली (1564-1642) इटली के खगोलशास्त्री, भौतिक विज्ञानी और गणितज्ञ थे। इन्होंने आधुनिक दूरदर्शी के प्रयोग से निष्कर्ष निकाला कि अरस्तू का वैश्विक मानचित्र, जो अपने समय में व्यापक रूप से विश्वसनीय था, ग़लत है। इसके बजाय उन्होंने कॉपरनिकस के 'सूर्य केंद्रीय सिद्धांत' का समर्थन किया। यह बात तत्कालीन वैज्ञानिक और धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध जाती थी, कैथोलिक चर्चों ने इसे बाइबिल के विरुद्ध माना और इन पर मुक़दमा चलाया गया। इन्हें जीवन के अंतिम आठ वर्ष रोमन साम्राज्य की क़ैद में बिताने पड़े थे।

भारत की प्रकृति, जीवनमूल्य आदर्श तथा राजनीतिक रूप में यहाँ की हर चीज नष्ट कर बाहर की चीज डालने का प्रयत्न हुआ तब युद्ध हुआ, लेकिन फिर भी भारत में शिवाजी ने मसजिद नहीं तोड़ी। भूषण ने कहा है कि 'शिवाजी ने हज जानेवालों को कभी कष्ट नहीं दिया। और मुसलमान सरदार इस बहाने अपने बीबी-बच्चों को मराठा क्षेत्र से सकुशल बाहर भेज देते थे।'

मुग़लों ने गुरु तेग बहादुर,[3] गोविंद सिंह[4] तथा उनके बच्चे को कष्ट दिया तो केवल इसलिए कि वे कलमा पढ़ने को तैयार नहीं हुए। लेकिन जब रणजीत सिंह[5] का राज्य आया तो महाराजा रणजीत सिंह ने कभी धर्म बदलने का आग्रह नहीं किया। इसका उदाहरण भी है कि महाराणा रणजीत सिंह के महल के पास एक मसजिद थी, जिसके कारण महल की शोभा कम होती थी। लोगों ने उसको तोड़ने को, वहाँ से हटाकर दूसरी जगह बनवाने को कहा, पर मौलवी माने नहीं तो महाराजा रणजीत सिंह ने उसको तुड़वाया नहीं। अत: वास्तव में मजहब से झगड़ा नहीं, लेकिन जब मसजिद के अंदर से राजनीति चलाई गई तब झगड़ा हुआ।

मिली-जुली संस्कृति का गान किया गया तो इसका मतलब? वास्तव में मुसलमान की कोई संस्कृति नहीं। यदि इसलाम की एक संस्कृति हो तो ईरान, इराक, इंडोनेशिया की एक संस्कृति होनी चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं, सबकी अपनी-अपनी अलग-अलग संस्कृति है।

अलग जाति की संस्कृति राष्ट्र की संस्कृति होती है। मजहब की संस्कृति नहीं होती। ईसाई संस्कृति भी नहीं बनी। यूरोप के राष्ट्रों की अलग-अलग संस्कृति है, एक-सा कोट पहनने में एक संस्कृति नहीं, ईसाई एक है, अत: एक संस्कृति नहीं। संस्कृति मजहब से नहीं बदलती बल्कि उसका संबंध राष्ट्र से होता है।

---

3. गुरु तेगबहादुर (1621–1675) सिख पंथ के नौवें गुरु, जिन्होंने मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब द्वारा प्रताड़ित कश्मीरी पंडितों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा हेतु आत्मबलिदान दिया था।
4. सिख पंथ के दसवें गुरु गोविंद सिंह के चार पुत्र थे, जिनमें फ़तेह सिंह (7 वर्ष 11 महीने) और ज़ोरावर सिंह (5 वर्ष 10 महीने) द्वारा मुसलिम धर्म अपनाने से इनकार करने पर 1705 ई. में मुगलों द्वारा दीवार में चिनवा दिया गया था। तीसरे व चौथे पुत्र अजित सिंह (17 वर्ष) व जुझार सिंह (15 वर्ष), मुगलों के विरुद्ध चमकौर के युद्ध में शहीद हुए थे।
5. महाराजा रणजीत सिंह 'शेरे-ए-पंजाब' (1780–1839) सिख साम्राज्य के प्रसिद्ध राजा, जिन्होंने पहली भारतीय आधुनिक 'सिख खालसा सेना' गठित की; फ्रांसीसी सैनिकों से प्रशिक्षित करवाया, उनका एकछत्र राज्य पश्तून क्षेत्र (वर्तमान अफ़गान) तथा कश्मीर तक फैला हुआ था, इनके रहते हुए अंग्रेज़ी हुकूमत पंजाब प्रांत पर हस्तक्षेप न कर सकी, प्रसिद्ध 'कोहिनूर' हीरा इन्हीं के राजदरबार में था।

मुसलमान इस देश से अलग होने के कारण, जब विदेशी आए तो उन्होंने उनके राज्य को भी अपना समझा और विदेशियों ने इसका प्रयत्न भी किया कि वे मुसलमान होने के कारण उनको अपना समझें। मुसलमान नेताओं ने मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध सभी उल्टे व्यवहार सिखाएँ। चोटी काटने का कुरान में कोई उल्लेख नहीं, पर मुसलमान बनाने पर पहला काम चोटी काटी गई। सभी व्यवहार हिंदू से उल्टा। एक किस्सा भी है कि एक मुसलमान ने मुँह का कौर गिर जाने पर मौलवी से पूछा कि उसको खाना चाहिए या नहीं, तो मौलवी ने कहा पंडित से पूछो, पंडित ने कहा, नहीं खाना चाहिए तो मौलवी ने कहा कि खा लेना चाहिए। अर्थात् सभी व्यवहार उल्टे सिखाए। मालाबार में लुंगी उल्टी पहनना, पंजाब में अचकन तथा साफा उल्टा पहनना आदि विपरीत व्यवहार सिखाए गए।

साधारणतः मजहब बदलने से अपने पूर्वज नहीं बदलते, पर मुसलमान बनते ही पूर्वज बदल गए। मेरे एक मित्र कुरेशी हैं, वे अपने को मोहम्मद साहब का वंशज मानते हैं, लेकिन जब मैंने पता लगाया तो उनके बाबा मुसलमान बने थे। पाकिस्तान के विदेश मंत्री भुट्टो गुजरात के भाटिया थे। नए पूर्वज स्वीकार किए गए। जो नए पूर्वज होते हैं, वे होते हैं। गोद जाने पर पैत्रिक संपत्ति भी गोद जानेवाले को मिलती है। गोत्र बदल जाता है, श्राद्ध आदि भी बदल जाते हैं। मुसलमान मुग़लों की गोद में बैठ गए। इसलाम स्वीकार करने पर केवल मुसलमान ही नहीं बने, बल्कि अराष्ट्रीय बन गए। तो फिर इनका क्या करें तो हल यह ही है कि अराष्ट्रीय समाज को राष्ट्रीय बनाया जाए। लेकिन गत वर्षों में बड़ी ग़लती हुई। वह यह कि उनको राष्ट्रीय बनाने के स्थान पर स्वयं ही अराष्ट्रीय बन गए। स्वतंत्रता आंदोलन में राष्ट्रीयता घटी, बढ़ी नहीं। आज कहीं प्रांत के नाम पर कहीं भाषा के नाम पर कहीं जाति के नाम पर उबाल है। स्वराज्य की लड़ाई लड़ी गई। पर आज उसी परंपरा में इतने झगड़े क्यों दिखाई देते हैं। अंग्रेज़ों से लड़ाई अवश्य लड़ी गई, पर अपनी राष्ट्रीयता को भुला दिया। वंदेमातरम् भी आधा गाया गया। जय हिंद का नारा लगाया गया। लेकिन मुसलमान संतुष्ट नहीं हुए। वास्तव में उनमें राष्ट्रीयता निर्माण करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

राष्ट्रीयता और सत्य में कोई समझौता नहीं होता। संस्कृति नहीं बन सकती। सत्य में एक प्रतिशत भी झूठ सत्य को झूठ बना देता है। और इसी कारण समझौते से राष्ट्रीयता की क़ीमत घटी। स्वतंत्रता की लड़ाई से केवल विभाजन तथा झगड़े खड़े हुए, अतः शुद्धीकरण आवश्यक। वास्तव में मसजिद में जाने के बाद सोहराब, रुस्तम, ईरान को मानने लग जाएँ और वह ही अपने महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविंद

सिंह के प्रति बेईमान होना आवश्यक नहीं। अगर हिंदू को विचार करना है तो यह करना है कि यह बात कैसे आए। उनकी राजनीतिक आकांक्षा कायम रहेगी तथा विजय होती रहेगी, तब तक कोई हल नहीं है। अत: उनकी राजनीतिक आकांक्षा की समाप्ति आवश्यक है। मुसलमानों से लड़ाई मजहब की नहीं, लेकिन राजनीतिक है। लेकिन इसके हल के लिए तुष्टीकरण की नीति आवश्यक नहीं। अत: असहिष्णु बनकर अपनी प्रकृति को भुलाना नहीं चाहिए। उनका राजनीतिक पराभव चाहिए।

शिवाजी ने मुग़ल तख़्त को तोड़ने का प्रयत्न किया, मसजिद नहीं तोड़ी। सन् 1947 में मुसलमानों को राजनीतिक विजय प्राप्त विजय हुई। आज भी जब तक पाकिस्तान रहेगा तब तक मुसलमानों की महत्त्वाकांक्षा बनी रहेगी। पहले हिंदू-मुसलिम झगड़े गली-गली में थे। अब मुसलिम आकांक्षाओं का प्रतीक राज्य बन गया है। उसकी महत्त्वाकांक्षा को नष्ट कर दें तो उनकी अराष्ट्रीय वृत्ति का नाश हो जाएगा। इसका रास्ता है तात्त्विक दृष्टि से उदार अपनी हिंदू परंपरा को बनाए रखते हुए अपनी प्रकृति के अनुसार राजनीतिक दृष्टि से विजयशाली और सामाजिक दृष्टि से हज़म कर सकें, ऐसा समाज जीवन बनाया जाए। अत: हल यही है कि हिंदू समाज अत्यंत सुदृढ बने, आत्मविश्वासी बने। जब आत्मविश्वास होता है, तभी स्वतंत्रता सार्थक होती है। केवल स्वराज्य से स्वतंत्रता नहीं।

कई बार राज्य व राष्ट्र को समान मानकर लोग विचार करते हैं, पर राज्य व राष्ट्र में बहुत फ़र्क होता है। राज्य राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ भी राष्ट्रों का संघ नहीं है, प्रतिनिधि राष्ट्रों के नहीं, राज्यों के हैं। सामान्य व्यवहार राज्य करता है, राष्ट्र नहीं। राज्य में और लोग भी रहते हैं। राज्यों के नागरिक अलग तथा राष्ट्र के घटक अलग होते हैं। विदेशी सरकारी नौकर हो सकता है, पर वह राष्ट्र का घटक नहीं हो सकता। क़ानून तथा न्यायालय विदेशी के लिए भी ठीक ही न्याय करेगा। नागरिकता का अधिकार भी कुछ शर्तों को पूरा करने पर मिल जाता है। कुछ लोग अमरीका जाते हैं और फिर वे वहाँ के बन जाते हैं। पहले नागरिकता और फिर राष्ट्रीयता।

उसी प्रकार मुसलमान नागरिक हैं। पर पहले वे हिंदू राष्ट्र के लिए काम करें। जैसे किसी फर्म में कोई नौकर हो और यदि वह उसका एक प्रतिशत का हिस्सेदार भी बन जाए तो वह मालिक नहीं बनता। उस फर्म का नाम नहीं बदलता। नौकर से यह आशा की जाती है कि वह अच्छा व्यवहार करे और फर्म की भलाई का कार्य करे।

सन् 1947 में स्वराज्य आया, पर स्वतंत्रता नहीं। इसको स्वतंत्रता में बदलना हो तो वह तब बदलेगा जब तंत्र बदले और वह तंत्र है, हिंदू तंत्र हो। राज्य अपना है, पर तंत्र अपना नहीं है। कंस और कौरव आसुरी तंत्र के थे, रावण का तंत्र भी आसुरी था, पर अपना तंत्र दैवी है। इस प्रकार हमको स्वराज्य से भी बढ़कर रामराज्य चाहिए। धर्मराज्य चाहिए। पांडवों का राज्य धर्म व स्व दोनों का था। स्वतंत्रता के लिए दो बातें आवश्यक हैं—1. अपना तंत्र, 2. स्वावलंबन। अपनी हर चीज हम करेंगे यह स्वावलंबन। स्वावलंबन के सहारे ही राष्ट्र विकास करता है। बच्चा भी अपने पैरों पर खड़ा होता है। धीरे-धीरे स्वावलंबी बनता है। यदि कोई स्वावलंबी नहीं है तो या तो वह बीमार या मन खराब है। परावलंबन व स्वतंत्रता साथ-साथ नहीं चलते।

हमारे यहाँ स्वराज्य आया, पर स्वतंत्रता नहीं आई। लोग कहते हैं, 15 अगस्त को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं। वह मुक्ति दिवस हो सकता है, अंग्रेज़ मुक्ति दिवस उसको कहा जा सकता है, स्वतंत्रता दिवस नहीं। आज भी अंग्रेज़ी है, हम परावलंबी हैं। हर चीज के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। अन्न, कल-कारख़ाने, हथियार, मित्रता सभी पर परावलंबी हैं।

परावलंबन बढ़ने पर स्वराज्य भी चला जाता है। जयचंद व पृथ्वीराज की लड़ाई में जयचंद के स्वावलंबन के ख़त्म होने पर ग़ुलामी आई। आज भी हमारा स्वराज्य बना रहे और पोषक रहे तो हमको स्वावलंबन का अवलंबन करना होगा।

संघ की विशेषता यह ही है, हमने स्वावलंबन पर जोर दिया। आज़ादी अपने बलबूते पर लेंगे। प.पू. डॉक्टरजी ने स्वयमेव मृगेंद्रता का संकल्प रखा। क्योंकि सिंह अपने पराक्रम से ही जंगल का राजा बनता है। यह हिंदू पराक्रम के साथ पैदा हुआ है, वे ही स्वामी बने। इसलिए इसमें आत्मविश्वास जाग्रत् किया जाए और स्वावलंबन के आधार पर संगठित कर शक्तिशाली बनाया जाए। जितना सामर्थ्य तथा आत्मविश्वास बढ़ेगा, स्वावलंबन बढ़ेगा तो परावलंबन कम होगा और आत्मविश्वास जागेगा। स्वावलंबन जागेगा और फिर जो-जो काम हम नहीं कर सके हैं, वे भी कर सकने का सामर्थ्य जगेगा।

—बौद्धिक वर्ग, जून 9, 1966



23

जनसंघ अकेले चुनाव लड़ सकता है

30 जून, 1966 को बंबई से दीनदयाल उपाध्याय का बयान।

बारह जुलाई को लखनऊ में होनेवाली बैठक में जनसंघ की कार्य समिति पार्टी की चुनाव नीति और रणनीति को अंतिम रूप देगी। जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने गुरुवार को बंबई में घोषणा की। साथ ही उन्होंने कहा, पार्टी के केंद्रीय संसदीय बोर्ड की बैठक 14 जुलाई को होगी।

श्री उपाध्याय ने कहा, जनसंघ और अन्य नेशनल डेमोक्रेटिक विपक्षी दलों के प्रतिनिधियों के बीच इस समय राज्य स्तर पर जो वार्त्ता आयोजित की जा रही है, वह कार्य समिति और संसदीय बोर्ड के निर्णयों को प्रभावित करेगी।

उन्होंने संकेत दिया कि जनसंघ 'अब तक तय की गई' नीति के अनुसार 'अपने दम पर' आम चुनाव लड़ेगा। उन्होंने कहा, ''बिना सकारात्मक सामग्री, केवल सत्तारूढ़ पार्टी के विरोध के रवैये पर आधारित संयुक्त मोर्चा लोकतंत्र के लिए हानिकारक है।'' यह अनैतिक गठबंधन होगा और वैकल्पिक सत्तारूढ़ पार्टी के उद्‌भव में देरी का कारण बनेगा।

आपसी समझ

हालाँकि उन्होंने तत्काल यह स्वीकार किया कि गठबंधन या संयुक्त मोरचे के बिना वहाँ दलों के बीच आपसी समझ के लिए गुंजाइश है। चुनावों में 'व्यावहारिक दृष्टिकोण' को ध्यान में रखते हुए स्थानीय और राज्य स्तर पर समायोजन किया जा सकता है। उन्होंने कहा, अन्य विपक्षी दलों के साथ टकराव को कम करते हुए

जनसंघ केवल उन क्षेत्रों में उम्मीदवारों को उतारेगा, जहाँ हमने पिछले पाँच वर्षों के दौरान कुछ काम किया है।

उन्होंने कहा कि जनसंघ राज्य विधानसभाओं के लिए क़रीब 2,000 सीटों और संसद् के लिए 275 सीटों पर लड़ेगा। जनसंघ यू.पी., एम.पी. और दिल्ली में 'बड़े पैमाने' पर चुनाव लड़ेगा। महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार, ए.पी. और मैसूर में जनसंघ ने 50 प्रतिशत से ज़्यादा सीटों पर चुनाव लड़ने का प्रस्ताव रखा है।

उन्होंने कहा कि अक्तूबर में पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र को अंतिम रूप देने के साथ अपनाया जाएगा।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, जुलाई 1, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



24

जनतंत्र-द्रोहियों से देश की रक्षा करें

पिछले वर्ष जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया और उसके साथ संघर्ष हुआ तो देश ने भारी एकता का परिचय दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने जो सर्वदलीय बैठक बुलाई थी, उसमें निरपवाद रूप से शासन को समर्थन का आश्वासन मिला था। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के नेता श्री अन्ना दुरै ने तो यहाँ तक कहा कि 'हमें इस अवसर पर सभी आंदोलन स्थगित कर देने चाहिए तथा मिलकर शत्रु से लड़ना चाहिए।' स्वतंत्र पार्टी जिसका पाकिस्तान के प्रति सदैव नरम रुख़ रहा है और कश्मीर पर समझौते का आग्रह करती रही है, वह भी पूरी तरह शासन के साथ थी। उसने भी यह प्रतिपादन किया कि अब आक्रमण के बाद पाकिस्तान का कश्मीर के मामले में कोई पक्ष नहीं रह जाता। सं.सो.पा. और कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने कुछ शर्तें अवश्य लगाईं, किंतु वह भी दबी जुबान से। वे चाहते थे कि सरकार अपने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करे, दूसरे महायुद्ध में जिस प्रकार मित्र राष्ट्रों ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा की थी। वे शायद उसकी नकल करना चाहते थे, किंतु वह उन्हें मिल नहीं पाया।

अकाली नेता संत फतेह सिंह पहले तो युद्ध के बावजूद आमरण अनशन की धमकी देते रहे किंतु जैसे-जैसे गरमी बढ़ी तथा संपूर्ण जनता (सिखों सहित) सभी प्रश्नों को एक ओर रखकर पाकिस्तान से निपट लेने को उतावली हुई, वैसे ही संत फतेह सिंह ने भी अपने अनशन का इरादा छोड़ दिया। उन्हें लगा कि यदि वे अपनी बात पर अड़े रहे तो निश्चय ही जनता में अलोकप्रिय हो जाएँगे। कुछ लोगों को ऐसा भी संदेह है कि केंद्र सरकार ने उन्हें गुप्त रूप से पंजाबी सूबे का वादा कर

जनसंघ केवल उन क्षेत्रों में उम्मीदवारों को उतारेगा, जहाँ हमने पिछले पाँच वर्षों के दौरान कुछ काम किया है।

उन्होंने कहा कि जनसंघ राज्य विधानसभाओं के लिए क़रीब 2,000 सीटों और संसद् के लिए 275 सीटों पर लड़ेगा। जनसंघ यू.पी., एम.पी. और दिल्ली में 'बड़े पैमाने' पर चुनाव लड़ेगा। महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार, ए.पी. और मैसूर में जनसंघ ने 50 प्रतिशत से ज़्यादा सीटों पर चुनाव लड़ने का प्रस्ताव रखा है।

उन्होंने कहा कि अक्तूबर में पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र को अंतिम रूप देने के साथ अपनाया जाएगा।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, जुलाई 1, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



24

जनतंत्र-द्रोहियों से देश की रक्षा करें

पिछले वर्ष जब पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया और उसके साथ संघर्ष हुआ तो देश ने भारी एकता का परिचय दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने जो सर्वदलीय बैठक बुलाई थी, उसमें निरपवाद रूप से शासन को समर्थन का आश्वासन मिला था। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के नेता श्री अन्ना दुरै ने तो यहाँ तक कहा कि 'हमें इस अवसर पर सभी आंदोलन स्थगित कर देने चाहिए तथा मिलकर शत्रु से लड़ना चाहिए।' स्वतंत्र पार्टी जिसका पाकिस्तान के प्रति सदैव नरम रुख़ रहा है और कश्मीर पर समझौते का आग्रह करती रही है, वह भी पूरी तरह शासन के साथ थी। उसने भी यह प्रतिपादन किया कि अब आक्रमण के बाद पाकिस्तान का कश्मीर के मामले में कोई पक्ष नहीं रह जाता। सं.सो.पा. और कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने कुछ शर्तें अवश्य लगाईं, किंतु वह भी दबी जुबान से। वे चाहते थे कि सरकार अपने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करे, दूसरे महायुद्ध में जिस प्रकार मित्र राष्ट्रों ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा की थी। वे शायद उसकी नकल करना चाहते थे, किंतु वह उन्हें मिल नहीं पाया।

अकाली नेता संत फतेह सिंह पहले तो युद्ध के बावजूद आमरण अनशन की धमकी देते रहे किंतु जैसे-जैसे गरमी बढ़ी तथा संपूर्ण जनता (सिखों सहित) सभी प्रश्नों को एक ओर रखकर पाकिस्तान से निपट लेने को उतावली हुई, वैसे ही संत फतेह सिंह ने भी अपने अनशन का इरादा छोड़ दिया। उन्हें लगा कि यदि वे अपनी बात पर अड़े रहे तो निश्चय ही जनता में अलोकप्रिय हो जाएँगे। कुछ लोगों को ऐसा भी संदेह है कि केंद्र सरकार ने उन्हें गुप्त रूप से पंजाबी सूबे का वादा कर

दिया, जिसके कारण वे चुप हो गए। जो भी हो, पाकिस्तान के ख़िलाफ़ संपूर्ण राष्ट्र एक होकर खड़ा हुआ और बड़े उत्साह के साथ उसने अपने त्याग और पराक्रम का परिचय दिया। जनता के इस उत्साह को संगठित रूप से सक्रिय और रचनात्मक सहयोग का भारतीय जनसंघ किस प्रकार का और कितना प्रभावी माध्यम बना, यह यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं, वह तो आज कहानी बन चुका है।

वर्तमान चित्र

एक ओर तो यह चित्र है—अत्यंत ही गौरवास्पद, आशा भरी और आनंददायी, दूसरी ओर है आज का चित्र—अत्यंत ही दुःख और लज्जा से भरा हुआ। हमने पाकिस्तान के साथ संघर्ष में 'वयं पंञ्चाधिकं शतम्' हम एक सौ पाँच हैं का परिचय दिया। किंतु आज न तो एक ओर सौ हैं और न दूसरी ओर पाँच। आज तो 'वयं' नहीं 'अहं' का ही बोल बाला है। सभी दल आम चुनाव की तैयारियाँ कर रहे हैं, किंतु क्या किसी को यह ध्यान है कि आज वे प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ रही हैं, जो प्रजातंत्र और राष्ट्र दोनों को ही जर्जर कर देंगी। प्रजातंत्र का अर्थ पाँच वर्ष में एक बार जैसे-तैसे चुनाव कर लेना नहीं है, इसे तो अधिक से अधिक 'चुनाव तंत्र' कहा जा सकता है। फिर प्रजातंत्र राष्ट्र के शासन का एक तरीक़ा है। जब राष्ट्र ही नहीं रहा तो शासन के प्रकार का क्या अर्थ रह जाएगा? हमें इन दोनों की रक्षा करनी होगी।

आजकल सं.सो.पा. और कम्युनिस्ट पार्टियाँ, दोनों मिलकर जगह-जगह 'बंद' का आयोजन कर रही हैं। 'बंद' का अर्थ है सब कामकाज बंद। सामान्यतः जनभावनाओं का प्रदर्शन करने के लिए हड़ताल, जुलूस, सभाएँ आदि काफ़ी दिनों से प्रचलित रही हैं। मामला आगे बढ़ा तो धरना और सत्याग्रह भी गांधीजी ने शुरू किए और तब से प्रचलित हो गए। भूख-हड़ताल का भी गांधीजी ने काफ़ी प्रचार किया। किंतु अनशन को वे अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। पर आज वह भी आम हो गया है। ये सब कार्यक्रम शांतिपूर्ण थे। किंतु 'बंद' के प्रवक्ताओं का इतने से समाधान नहीं होता। वे चाहते हैं कि सब कामकाज ही बंद हो जाएँ। रेल, तार, टेलीफोन, बिजली, पानी, अस्पताल सब बंद होने चाहिए। दुकानें, कारख़ानें, रिक्शा, मोटर भी बंद हों। सरकारी, ग़ैर-सरकारी दफ्तर, यहाँ तक कि पुलिस का काम भी बंद रहे, इस 'बंद' का मतलब है पूर्णतः अराजकता। 'बंद' का नारा देने के बाद भी जब ये चीजें बंद नहीं होतीं तो कम्युनिस्ट अपने साथ भीड़ इकट्ठी

करके तोड़-फोड़, आगजनी और विनाश की लीला रचते हैं। इसमें से स्वाभाविक ही हिंसा पैदा होती है। पुलिस गोली चलाती है, लोग मरते हैं तथा चारों ओर विप्लव फैलता है। जनता हा-हाकार करती है, पीड़ित होती है, असामाजिक तत्त्वों की बन आती है।

चुनाव स्टंट नहीं, विद्रोह

कुछ राजनीतिक नेताओं का मत है कि इन कार्यक्रमों का आयोजन एक चुनाव के स्टंट के रूप में किया जा रहा है। चुनाव का वर्ष होने के कारण वे समझते हैं कि इस प्रकार के आंदोलन स्वाभाविक हैं। किंतु यह उनकी भूल है। 'बंद' का संबंध चुनाव से नहीं बल्कि चुनाव में आस्था न होने के कारण है। यह तो सब जानते हैं कि कम्युनिस्ट चुनावों में विश्वास नहीं करते। यह ठीक है कि वे चुनाव लड़ते हैं किंतु वे केवल जनक्रांति के लिए जनता को तैयार करने के लिए साधन मानते हैं। भारत के स्वतंत्र होने के उपरांत उन्होंने सशस्त्र क्रांति और हिंसात्मक उपायों से कुछ क्षेत्रों में अपनी सत्ता प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया था। तेलंगाना और बंगाल में ही उन्होंने काफ़ी मारकाट की। बम फेंके, हथियारों का उपयोग किया तथा जनता को डराकर अपने वश में करने की कोशिश की। उस समय सरदार वल्लभ भाई पटेल गृहमंत्री थे। उन्होंने दृढता से काम करते हुए विद्रोह को कुचल दिया।

पराजित होने के बाद कम्युनिस्टों ने अपनी नीति बदली। चुनावों का सहारा लिया। अमृतसर के अपने अधिवेशन में प्रजातंत्र को नीति के रूप में स्वीकार किया। प्रथम चुनावों में उन्हें अच्छी सफलता मिली। मालाबार व तेलंगाना, बंगाल आदि में वे काफ़ी संख्या में जीतकर आए। उन्हें लगा कि चुनावों से सत्ता ली जा सकती है। आंध्र में सन् 1955 में मध्यावधि चुनाव हुए, कम्युनिस्टों ने डटकर प्रयत्न किया। कांग्रेस ने साझा मोरचा बनाया। कम्युनिस्ट बुरी तरह पिटे। सन् 1957 के चुनावों में भी उन्होंने कोशिश की किंतु कुल मिला करके सन् 1952 से विशेष आगे नहीं बढ़ पाए। मद्रास, आंध्र में पीछे गए; किंतु केरल में वे सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आए। पाँच निर्दलीय सदस्यों को साथ लेकर उन्होंने मंत्रिमंडल बनाया। विश्व में यह पहला उदाहरण था, जहाँ चुनाव के द्वारा कम्युनिस्ट सत्तारूढ़ हुए।

असली रूप सामने आया

प्रजातंत्रीय पद्धति से उन्होंने सत्ता ज़रूर प्राप्त की किंतु प्रजातंत्र में विश्वास न

होने के कारण वे सत्ता का प्रयोग प्रजातंत्रीय पद्धति से नहीं कर पाए। वरन् उन्होंने उन सब हथियारों और तरीक़ों का उपयोग किया, जो कि कम्युनिस्ट शासन का अभिन्न अंग है। शासन के साथ-साथ कम्युनिस्ट पार्टी के 'सेल' भी शासन का काम करने लगे। ग़ैर-कम्युनिस्टों को विभिन्न तरीक़ों से ख़त्म करने की कोशिश की गई। जनता के सामने जैसे ही कम्युनिस्टों का असली स्वरूप आया, वे सतर्क हो गई। केरल में कम्युनिस्ट शासन के विरुद्ध जन-आंदोलन हुआ। फलतः मंत्रिमंडल भंग कर दिया गया।[1]

सन् 1962 में कम्युनिस्टों ने फिर से प्रयास किया, किंतु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। वे बहुत करके 'मार्क टाइम' ही करते रहे। सन् 1962 के नवंबर में कम्युनिस्ट चीन का आक्रमण हुआ। उस समय कम्युनिस्टों की कलई खुल गई। बहुत दिनों तक तो वे यही कहते रहे कि आक्रमण हुआ हीं नहीं। बाद में चीन को आक्रमणकारी कहने के बजाय आक्रांत भू-भाग को विवादास्पद बताकर समझौते की सलाह देने लगे। इसके विपरीत सीमा क्षेत्र की जनता से उन्होंने चीन की सेना को मुक्ति सेना बताकर उसका स्वागत करने को कहा। यह बात अलग है कि कोई भी उनके चक्कर में नहीं आया। कम्युनिस्टों के पंचमांगी स्वरूप के स्पष्ट होने पर देश का वातावरण उनके बहुत प्रतिकूल हो गया। कुछ दिन तो यह हाल रहा कि कोई भी पार्टी उनके साथ बात करने को तैयार नहीं थी। विरोधी दल प्रधानमंत्री की उस बैठक में भी सम्मिलित होने को राजी नहीं थे, जिसमें कम्युनिस्टों को आमंत्रित किया जाता था। राष्ट्रद्रोही पूरी तरह छिप गए थे। इस स्थिति का कम्युनिस्ट दल पर भी प्रभाव पड़ा। उसके अनेक समर्थक दूर हो गए। कई सदस्य पार्टी से त्याग-पत्र देकर दूसरे दल में, विशेषकर कांग्रेस में चले गए। चीन और रूस के बीच खिंचावट होने के कारण कम्युनिस्ट पार्टी की फूट और भी बढ़ गई। उसके वामपंथी और दक्षिणापंथी दो अलग-अलग दल हो गए। अपनी इस गिरी हुई हालत में उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि वे इतना जनसमर्थन कभी प्राप्त नहीं कर सकते कि प्रजातंत्रीय पद्धति से सत्ता ले सकें, फलतः वे हिंसा के मार्ग पर वापस आ गए हैं।

---

1. केरल में 1957 के विधानसभा चुनावों के बाद ई.एम.एस. नंबूदरीपाद के नेतृत्व में भा.क.पा. की सरकार बनी। लेकिन जल्द ही जनता का सरकार से मोहभंग हो गया, जिससे राज्य में कई महीनों तक राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त रही। केंद्र ने 31 जुलाई, 1959 को विधानसभा भंग कर राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया था।

निर्णय के मूल में

उनके इस निर्णय का एक और कारण है। सन् 1962 में जब कम्युनिस्ट चीन ने आक्रमण किया था तो उसको यह आशा थी और विश्वास दिलाया गया था कि देश में कम्युनिस्ट पार्टी जनविद्रोह करेगी, किंतु जनविद्रोह तो एक ओर रहा, भारत की जनता ने तो राष्ट्रीय एकता का इतना जोरदार प्रदर्शन किया कि कम्युनिस्ट कुछ कर नहीं पाए। उनका सीखा हुआ पाठ काम नहीं आया। फलत: चीन की वही दशा हुई, जो पिछले वर्ष कश्मीर में विद्रोह की आशा में आक्रमण करनेवाले पाकिस्तान की हुई। इस धोखे के लिए चीन ने कम्युनिस्टों को लताड़ा भी। अब उसकी योजना है कि वह तब तक कोई कार्रवाई नहीं करेगा, जब तक कम्युनिस्ट आंतरिक गड़बड़ का रिहर्सल न कर लें तथा चीन को इस बात का प्रमाण न दे दें कि उसके आक्रमण करने पर वे भी कुछ कर सकेंगे। कम्युनिस्टों द्वारा विभिन्न 'बंद' के कार्यक्रमों का यह छिपा मंतव्य है।

सं.सो.पा. कम्युनिस्ट पार्टी की गिरफ्त में

कम्युनिस्टों की इस दुरभिसंधि में सं.सो.पा. भी फँस गई है। डॉ. लोहिया सन् 1952 में ही सत्तारूढ़ होने का स्वप्न देखते थे, किंतु उस समय सोशलिस्ट पार्टी बुरी तरह पराजित हुई। तदुपरांत प्रजा सोशलिस्ट पार्टी बनी। किंतु फिर श्री पट्टम थानु पिल्लै[2] के इस्तीफे की माँग को लेकर उसमें फूट पड़ गई। सन् 1955 में डॉ. लोहिया ने सात वर्ष में सत्ता प्राप्ति का कार्यक्रम बनाया। लोगों को बड़ी आशाएँ दिलाईं। सत्याग्रह और 'घेरा डालो आंदोलन' के कई दौर भी हुए। किंतु सन् 1962 में सत्ता हाथ नहीं लगी। इन घटनाओं का उनके मन पर गहरा परिणाम है। सन् 1963 में फर्रुखाबाद से वे एक उपचुनाव में जनसंघ की सहायता से लोकसभा में आ गए। इससे एक ओर उनका हौसला बढ़ा, किंतु दूसरी ओर कांग्रेस के भारी बहुमत के सामने कुछ भी न चल सकने के कारण उनको निराशा भी हुई। आज वे कांग्रेस से बुरी तरह असंतुष्ट हैं। वे किसी भी क़ीमत पर उसे हटा देना चाहते हैं।

---

2. पट्टम थानु पिल्लै (1885-1970) केरल के 1960 से 62 तक मुख्यमंत्री थे। केरल में राजनीतिक अस्थिरता का दौर ख़त्म करने के लिए 1960 में नए सिरे से चुनाव कराए गए, इसमें कम्युनिस्टों की हार हुई थी, चुनाव पश्चात् कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गठबंधन की सरकार बनी, शर्तानुसार पूर्वार्ध में प्र.सो.पा. का मुख्यमंत्री तथा उत्तरार्ध में कांग्रेस का मुख्यमंत्री होना था, इसी कारणवश कांग्रेस के आर. शंकर को मुख्यमंत्री बनाने के लिए इन्हें त्यागपत्र देना पड़ा था। बाद में ये पंजाब एवं आंध्र प्रदेश प्रदेश के राज्यपाल बनाए गए थे।

साथ ही उन्हें अपने ऊपर विश्वास भी नहीं रहा। इसलिए एक ओर तो वे सभी दलों को मिलाकर कांग्रेस-विरोधी मोरचा बनाने की कोशिश में हैं तो दूसरी ओर विधानमंडलों में गड़बड़ तथा बाहर (बंद) के कार्यक्रमों में भाग लेकर प्रजातंत्रीय प्रतिक्रियाओं की प्रभावहीनता सिद्ध करने के फेर में हैं। अपनी नीति के अनुसार कम्युनिस्ट उनको बड़े चाव से हथियार बना रहे हैं। जिनको सन् 1962 के चीनी आक्रमण के बाद जनता ने भारतीय राजनीति से बाहर फेंक दिया था, उन कम्युनिस्टों को गले लगाने का काम डॉ. लोहिया कर रहे हैं।

प्रजातंत्र को चुनौती

सं.सो.पा. और कम्युनिस्ट दोनों ने मिलकर आज प्रजातंत्र को चुनौती दी है। वे एक ऐसी स्थिति पैदा करना चाहते हैं, जिसमें व्यवस्था नाम की कोई चीज ही न रह जाए। अपने इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए सर्वदलीय संयुक्त मोरचा बनाकर जनता में व्याप्त कांग्रेस विरोध का लाभ उठाना चाहते हैं। यह मोरचा किसी भी रूप में सर्वदलीय नहीं होते, क्योंकि मोरचे की नीति और कार्यक्रम तो पहले से ही तय हैं। सब लोग मिलकर उसको तय नहीं करते। कुछ छोटे-मोटे दलों को वे अपने साथ लेने में सफल भी होते हैं, किंतु ये वे ही दल हैं जो कम्युनिस्टों के पिछलग्गू हैं। इस चुनौती का सामना कैसे किया जाए? कौन इस बीड़े को उठाएगा। निःसंदेह उन सभी लोगों को, जो प्रजातंत्र में श्रद्धा रखते हैं, संगठित होकर इन प्रजातंत्र-विरोधी शक्तियों का मुक़ाबला करना होगा।

भारत की परिस्थिति में प्रजातंत्र का एकता से भी गहरा संबंध है। यदि यहाँ प्रजातंत्र समाप्त हो गया तो एकता को नष्ट होते देर नहीं लगेगी। भारत जैसे बड़े देश में तथा पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेज़ों द्वारा बोए गए विघटन की पृष्ठभूमि में कुछ-न-कुछ विघटनवादी तथा केंद्रापसारी तत्त्वों का जन्म लेना स्वाभाविक है। इन तत्त्वों में जो प्रजातंत्रीय पद्धति का अनुसरण करेंगे, वे शनैः-शनैः राष्ट्रवाद की ओर बढ़ते जाएँगे। चुनावों में क्षेत्रवाद और जातिवाद आदि का सहारा लेनेवाले भी जब जीतकर आएँगे तो सबको साथ में लिए बिना अकेले नहीं बढ़ सकेंगे, यही कारण है कि द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। प्रजातंत्र के रहते हुए यदि किसी प्रांत में किसी दल विशेष का प्रभुत्व भी आ गया तो वह अलग नहीं हो सकता। किंतु जहाँ प्रजातंत्र समाप्त हुआ, वहाँ एकता तो पहले समाप्त हो जाएगी।

ऐसी शक्तियाँ जहाँ उनकी ताक़त होगी, वहाँ अपनी सत्ता जमाकर बैठ जाएँगी और फिर आगे की लड़ाई लड़ेंगी। हिंसात्मक क्रांति के द्वारा संपूर्ण देश की सत्ता पर एकबारगी अधिकार नहीं जमाया जा सकता। 'भारत बंद' का नारा लगाने के बाद भी उसे सफल नहीं किया जा सकता, किंतु 'बंगाल बंद' की स्थिति सबको अवगत है। कम्युनिस्ट नीति के अंतर्गत वे निश्चित ही किसी एक स्थान पर हिंसात्मक क्रांति से अपनी सरकार बनाकर वहाँ से चीन या वियतनाम की भाँति आगे लड़ेंगे और यदि यह स्थिति आई तो केवल कम्युनिस्ट ही नहीं, अनेक क्षेत्रीय शक्तियाँ खड़ी होकर भारत को टुकड़े-टुकड़े बाँट लेंगी। अत: भारत की एकता के लिए भारत में प्रजातंत्र ज़रूरी है।

राष्ट्रीय एकता के लिए आगे आएँ

इसके लिए प्रजातंत्र और राष्ट्रीय एकता में विश्वास रखनेवाली ताक़तों को एक साथ आना होगा। कांग्रेस के हाथ में शासन है, अत: उससे पहल की अपेक्षा है। किंतु वह हिचकिचाती है। शायद इसके दो कारण हैं—प्रथम तो आज वह स्वयं कमजोर और बँटी हुई है। वह नेतृत्व विहीन है। प्रधानमंत्री की बात न तो मुख्यमंत्री मानते हैं और न कांग्रेस के अध्यक्ष। कांग्रेस अध्यक्ष अपनी गोटी बिठाने में मशगूल हैं। दूसरे, उसका व्यवहार आज उन निष्ठाओं को बलवती बनाने के स्थान पर कमजोर ही बना रहा है। पतिव्रत धर्म का एक पत्निव्रत के साथ अनन्य संबंध है। उसी प्रकार शासक दल तथा विरोधी दल दोनों ही मिलकर प्रजातंत्र की गाड़ी को चला सकते हैं। अब यदि शासक दल प्रजातंत्र की अवहेलना ही करता जाए तो विरोधी दल कितना ही धैर्यवान क्यों न हो, प्रजातंत्र नहीं चल सकता। यह अत्यंत दु:ख की बात है कि कांग्रेस ने निरंतर प्रजातंत्रीय प्रक्रियाओं की अवहेलना की है।

यदि हम चाहते हैं कि लोग अपनी माँगों को सभाओं, जुलूसों और प्रदर्शनों के द्वारा प्रकट करें तो हमें इन कार्यक्रमों के प्रति जागरूक और सहानुभूतिपूर्ण होना होगा। इसके विपरीत जो अवांछनीय मार्ग है, उनका अनुगमन करनेवालों के प्रति कठोर बनना होगा। किंतु आज तो बात उलटी है। सरकार और समाचार-पत्र दोनों ही मिलकर प्रजातंत्र विरोधी शक्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं। उदाहरणत: गोहत्या बंदी की माँग को लेकर पिछले वर्षों में अनेक प्रकार के शांतिपूर्ण कार्यक्रम हुए हैं। तीन करोड़ लोगों के हस्ताक्षरों के साथ राष्ट्रपति को प्रार्थना-पत्र दिया गया। सभाएँ और प्रदर्शनों की तो गिनती ही नहीं। आज भी मान्य महात्मा और साधु संसद् के

समक्ष धरना देकर बैठे हैं, उनमें से कुछ अनशन भी कर रहे हैं किंतु न तो उस ओर सरकार कोई ध्यान देने को तैयार है और न समाचार-पत्र। यदि ये ही शांतिप्रिय महात्मागण अशांत हो जाएँ तो दोनों का ध्यान इनकी ओर चला जाएगा। संसद् में वक्तव्य भी तब दिया गया जब लोकसभा के सदस्य स्वामी रामेश्वरानंद, श्री हुकुमचंद्र कछवाय[3] ने जिद्द की। उन्हें अध्यक्ष ने सभा से निकालने का आदेश दिया। इसके बाद सरकार ने भी वक्तव्य दिया और पत्रों ने भी यह समाचार छापा।

प्रजातंत्र में शब्द की क़ीमत होती है किंतु आज विरोधी दल के शब्दों की नहीं, सनसनीखेज कृति की क़ीमत होने लगी है। मंत्रियों के वक्तव्य छपेंगे, किंतु विरोधी दल के सदस्यों के भाषणों को यदाकदा ही स्थान मिलेगा। हाँ, अगर वे कुछ गड़बड़ करें तो अवश्य ही शीर्षक मिलेंगे। 'आंध्र' के लिए श्री रामलू के अनशन[4] तथा बाद में वहाँ की गड़बड़ी से लेकर आज तक हर अवसर पर सरकार उपद्रवकारियों के सामने झुकती रही है। वह विद्रोही नागाओं से बात कर सकती है किंतु उसके पास बस्तर नरेश[5] के पत्रों का उत्तर देने का समय नहीं। उसका उत्तर कांग्रेस तोप और बंदूक से देती है।

जनसंघ के सुझाव

यदि देश में प्रजातंत्र को चलाना है तो हमें अपना व्यवहार बदलना होगा। इस दृष्टि से भारतीय जनसंघ ने सुझाव दिया था कि एक सर्वदलीय सम्मेलन पर प्रजातंत्र परिषद् की स्थापना की जाए। सभी दल प्रजातंत्र के प्रति अपनी निष्ठा की पुनर्घोषणा करें। आंदोलनों के लिए आचार संहिता बनाई जाए तथा विधि-निषेध का निर्णय हो।

---

3. हुकुमचंद्र कछवाय तीसरी लोकसभा में देवास (मध्य प्रदेश) से सांसद थे।
4. भाषाई आधार पर मद्रास राज्य से अलग तेलुगू भाषी राज्य निर्माण की माँग को लेकर पोट्टि श्रीरामलू (जन्म 1901) ने आमरण अनशन किया था, जिसके कारण 16 दिसंबर, 1952 को उनकी मृत्यु हो गई थी। इसके बाद मद्रास प्रेसीडेंसी के कई शहरों में व्यापक हिंसात्मक आंदोलन हुए, तत्पश्चात् 19 दिसंबर, 1952 को जवाहरलाल नेहरू ने आंध्र प्रदेश के गठन की घोषणा की और 1 अक्तूबर, 1953 को नए राज्य का गठन हुआ।
5. प्रवीर चंद्र भंज देव (1929-1966) प्रथम उड़िया शासक तथा बस्तर राज्य के 20वें महाराजा थे। 1957 में जगदलपुर विधानसभा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हुए जनजातीय लोगों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी। इनके द्वारा संचालित भूमि सुधार कार्यक्रम, भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जा रहे मतांतरण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने को तत्कालीन कांग्रेस सरकार बड़ा ख़तरा मानती थी। इन्होंने केंद्र और राज्य सरकारों को कई बार पत्र लिख संवाद करना चाहा, लेकिन उन्हें कभी इसका प्रत्युत्तर नहीं मिला। अंततः 25 मार्च, 1966 को गोली मारकर इनकी हत्या कर दी गई थी।

सरकार और विरोधी दल दोनों ही अपने को बाँधें। प्रजातंत्र में न तो सरकार मनमानी कर सकती और न विरोधी दल। सांप्रदायिक उपद्रवों को दबाने के लिए प्रशासन विशेष उपाय काम में लाता है। समाचार-पत्र भी समझ से काम लेते हैं। सांप्रदायिकता के विरुद्ध जनमत भी काफ़ी तैयार हुआ है। सांप्रदायिकता के समान ही अपितु उससे कई गुना घातक प्रवृत्ति हिंसात्मक आंदोलनों की है। आज 'बंद' के विरुद्ध भी प्रशासन को विशेष उपाय अपनाने होंगे। जनता को भी शिक्षित करना होगा।

उपर्युक्त सुझाव उपयोगी है, किंतु आशा नहीं कि कांग्रेस उन्हें मानेगी। हाँ, यह अवश्य ही हो सकता है कि इन उपद्रवों के कारण शासन अपने हाथ में और अधिक शक्ति ले ले। यह भी हो सकता है कि वह उपद्रवी तत्त्वों के सामने झुकने की अपनी मानसिक ग्लानि को निरुपद्रवी और शांत तत्त्वों को दबाकर दूर करने की कोशिश करे। अत: यह काम तो उन तत्त्वों को ही करना होगा, जो आज शासन से दूर हैं तथा जिसकी प्रजातंत्र में दृढ निष्ठा है। भारतीय जनसंघ ने पिछले वर्ष 16 अगस्त को संसद् के समक्ष विराट् प्रदर्शन करके इस निष्ठा का अपने संकल्प और समर्थन का अत्यंत ही प्रभावी परिचय दिया था। अब फिर समय आया है किंतु इस बार यह प्रदर्शन संसद् के सामने नहीं अपितु जहाँ संसद् बनती है, वहाँ करना होगा।

जनता परिवर्तन चाहती है

जनता कांग्रेस से ऊब गई है वह परिवर्तन चाहती है। 'बंद' वालों को विश्वास नहीं कि वे कांग्रेस को हटा सकेंगे। अत: वे प्रजातंत्रीय मार्गों के स्थान पर अन्य मार्गों का अवलंबन कर रहे हैं। जनता में प्रजातंत्र की निष्ठा बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि दूसरी ताक़तें यह दिखा दें कि वे प्रजातंत्रीय मार्ग से कांग्रेस को हटा सकती हैं। यह काम कठिन नहीं है। जनता का इसमें भरपूर सहयोग मिलेगा। उसके दिल से तो वह हट चुकी है। ज़रूरत है दलीय संगठन और चुनाव तंत्र के ज्ञान और व्यवहार की। प्रजातंत्र की रक्षा के लिए यह काम करना होगा।

पिछले वर्ष का स्वतंत्रता दिवस बाहर के शत्रुओं से संघर्ष का संदेश लेकर आया था। इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस विघटन की आंतरिक शक्तियों से संघर्ष की चुनौती लेकर उपस्थित हुआ है। जिस प्रकार भारत की राष्ट्रीयता पिछले वर्ष विजयी हुई थी। विश्वास है, उसी प्रकार वह इस वर्ष भी विजयी होगी।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 15, 1966



25

1967 में चुनावी संभावनाएँ

चौथे आम चुनाव फरवरी, 1967 के दूसरे पखवाड़े में होनेवाले हैं। चुनाव आयोग ने अंतरिम रूप से 19 फरवरी से 28 फरवरी तक की तिथि निर्धारित की है। कांग्रेसियों के गुटों द्वारा आम चुनाव को एक वर्ष के लिए स्थगित करने के सुझावों के समाचार समय-समय पर आते रहे हैं। यह मतदाताओं के बीच बड़े स्तर पर व्याप्त मोहभंग और निराशा के समय उनका सामना करने में संकोच और भय के भाव का संकेत है। यद्यपि सरकार के नेताओं ने इन समाचारों का खंडन किया है। उन्होंने समय पर चुनाव कराने का प्रस्ताव किया है। संभवत: वे जानते हैं कि एक वर्ष बाद भी स्थिति बेहतर नहीं होगी।

गठबंधन ही सबकुछ नहीं है

राजनीतिक दल आम चुनाव की तैयारियों में व्यस्त हैं। यद्यपि यह लगता है कि वे अपना घर व्यवस्थित करने की बजाय विभिन्न प्रकार के गठंबधन करने और संयुक्त मोर्चा बनाने में अधिक व्यस्त हैं। इन संभावित गठबंधनों की वार्त्ता से वातावरण इतना बोझिल हो गया है कि मेढक तौलने की इस बेकार कवायद के लिए तैयार न होनेवाले राजनीतिक दलों को अपनी खिचड़ी अलग पकानेवाला, बेकार, कांग्रेस समर्थक और यहाँ तक कि दगाबाज के रूप में निरूपित किया गया। इन्हें सीधे मुक़ाबले में ग़ैर-कांग्रेसी प्रत्याशी की विजय का विश्वास उतना ही है, जितना कि यह संशय कि अकेले वे कांग्रेस का मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह सोच चुनाव परिणामों के किसी गहन विश्लेषण या समाज के विभिन्न वर्गों के

मतदान व्यवहार पर आधारित नहीं है बल्कि इस आम धारणा पर आधारित है कि सभी ग़ैर-कांग्रेसी विपक्ष के मत हैं, इसलिए कोई विपक्षी प्रत्याशी इन्हें प्राप्त कर सकता है। चुनाव के लिए इस तरह का प्रारंभिक स्तर का दृष्टिकोण राजनीतिक वास्तविकता को नहीं दरशाता। वे भूल गए कि कांग्रेस और विपक्ष, दोनों में विषम स्थितियाँ हैं। श्री वी.के. कृष्ण मेनन[1] या श्री के.डी. मालवीय[2] के क्षेत्र में कम्युनिस्ट मत कहाँ जाएँगे? नि:संदेह विपक्ष के प्रत्याशी को नहीं। क्या कम्युनिस्ट स्वतंत्र पार्टी के प्रत्याशियों का समर्थन करेंगे या जनसंघ कम्युनिस्टों के लिए काम करेगा! स्थिति कल्पनातीत है। कई मामलों में सीधा मुक़ाबला मात्र कांग्रेस के अवसरों में सुधार लाएगा।

देश में राजनीतिक स्थिति अत्यंत भ्रामक है। एक ओर जहाँ कांग्रेस विभाजित है, वहीं दूसरी ओर यह नए समर्थक प्राप्त कर रही है। पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मैसूर में एक बड़े वर्ग ने अलग होकर नए नेतृत्व के साथ समानांतर कांग्रेस बना ली है। गुजरात में कई पुराने कांग्रेसी स्वतंत्र पार्टी में शामिल हो गए हैं। अन्य प्रदेशों में भी दल-बदल हुआ है, हालाँकि वह बहुत प्रभावी नहीं है।

कांग्रेस का लाभ और हानि

इसके विपरीत श्री अशोक मेहता के लगभग सभी सहयोगी पी.एस.पी. से निकलकर कांग्रेस में शामिल हो गए हैं। रामगढ़ के राजा का पूरा गुट, जिसने बिहार में स्वतंत्र पार्टी का गठन किया था, कांग्रेस में शामिल हो गया है। झारखंड पार्टी का भी कांग्रेस में विलय हो गया है। पी.एस.पी. और एस.एस.पी. के कार्यकर्ताओं में भी विभाजन है, जिससे सत्तारूढ़ दल को लाभ है। मध्य प्रदेश में सत्तारूढ़ दल और विपक्ष 1962 के चुनाव में समान संख्या में लौटे थे। दोनों प्रदेशों में अच्छी संख्या में

---

1. वी.के. कृष्ण मेनन, उत्तरी बंबई से लोकसभा सदस्य तथा नेहरू कैबिनेट में रक्षा मंत्री थे, चीन से मिली पराजय के बाद जनता के गुस्से को शांत करने के लिए इन्होंने 9 नवंबर, 1962 को इस्तीफ़ा दे दिया था। 1967 में हुए लोकसभा चुनाव में ये उत्तर-पूर्व बंबई से खड़े हुए, तो इन्हें पराजय का सामना करना पड़ा, यहाँ तक कि बाद में इसी सीट पर हुए उपचुनाव में ये पुन: पराजित हुए थे।
2. केशव देव मालवीय बस्ती (उत्तर प्रदेश) से लोकसभा सांसद तथा केंद्रीय खनन व ईंधन मंत्री थे, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जाँच में भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध हो जाने के पश्चात् 24 जून, 1963 को इन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ा। चौथी लोकसभा के लिए हुए चुनाव में डुमरियागंज से प्रत्याशी थे, जहाँ भारतीय जनसंघ के नारायण स्वरूप शर्मा ने इन्हें 30,000 मतों से पराजित किया था, बाद में 1968 में हुए घोसी लोकसभा उपचुनाव तथा 1969 में हुए फूलपुर लोकसभा उपचुनाव में भी इन्हें हार का सामना करना पड़ा था।

निर्दलीय और अन्य विपक्षी सदस्य कांग्रेस में शामिल हुए हैं। प्रस्तावित हरियाणा[3] में सभी 'प्रगतिशील निर्दलीय' कांग्रेस में लौट आए हैं। केरल में केरल कांग्रेस के कई लोग पितृ संगठन में लौट आए हैं। उत्तर प्रदेश में श्री कृष्णदत्त पालीवाल[4] के नेतृत्व में स्वतंत्र पार्टी के लोग, श्री गेंदा सिंह के नेतृत्व में पी.एस.पी. के लोग और श्री झारखंडे राय के नेतृत्व में कम्युनिस्ट भी कांग्रेस में शामिल हो गए हैं। रिपब्लिक पार्टी भी कांग्रेस के साथ चली गई है। कांबले गुट का कांग्रेस में विलय हो गया है, जबकि गायकवाड़ गुट ने इसके साथ गठबंधन किया है। बड़ी संख्या में कम्युनिस्ट भी कांग्रेस में शामिल हुए हैं। सभी राजनीतिक दलों में मात्र जनसंघ ही अपने सदस्यों की अटूट वफादारी का दावा कर सकता है। यहाँ तक कि बी.जे.एस. के भी दो सांसद और विधायक कांग्रेस में चले गए हैं।

1962 से विभाजन और विलय

पिछले आम चुनाव से कुछ विपक्षी दलों का रूपांतरण हुआ है, जबकि अन्य विभाजित हो गए हैं। सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के एकीकरण तथा बाद में विभाजन का इतिहास काफ़ी रुचिकर है। एस.एस.पी. और पी.एस.पी. पुरानी एस.पी. और पी.एस.पी. नहीं हैं। इस 'एकता' से उन्हें कुछ सदस्यों को खोना पड़ा, जो कांग्रेस और जनसंघ में चले गए।

कम्युनिस्ट पार्टी वाम और दक्षिण में विभाजित हो चुकी है। स्वतंत्र पार्टी हमेशा की तरह अव्यवस्थित जमावड़ा बना हुआ है। इसके सदस्यों की स्थिति और वफादारी ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। जनसंघ मध्य प्रदेश में व्यावहारिक रूप से संपूर्ण हिंदू महासभा, राम राज्य परिषद् के एक बड़े और प्रभावी धड़े को और बस्तर के सभी निर्दलियों को अपने दायरे में लाने में सक्षम हो चुका है।

विभिन्न क्षेत्रीय दलों की स्थिति का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनका प्रभाव स्थानीय और सीमित है। परंतु यहाँ भी नेशनल कॉन्फ्रेंस में डेमोक्रेटिक नेशनल कॉन्फ्रेंस का और नेशनल कॉन्फ्रेंस का कांग्रेस में विलय तथा बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद की अगुवाई में नेशनल कॉन्फ्रेंस का फिर से उभार, पंजाब में अकाली दल का दो धड़ों में विभाजन और डी.एम.के. में अन्नादुरई-करुणानिधि के

---

3. हरियाणा राज्य की स्थापना 1 नवंबर, 1966 को भाषाई आधार पर पंजाब का विभाजन कर नए हिंदी भाषी राज्य के रूप में की गई।
4. कृष्ण दत्त पालीवाल उत्तर प्रदेश के प्रथम वित्त मंत्री थे।

मतभेद उल्लेखनीय तथ्य हैं।

अन्य कारकों के अलावा, उपरोक्त दलों की संरचना में परिवर्तन यह स्पष्ट करता है कि 1962 के परिणामों के मूल्यांकन के आधार पर कोई भी पूर्वानुमान ग़लत साबित होने के लिए बाध्य है। इसके अलावा, भारत में मतदान महज दलीय आधार पर नहीं होता। प्रत्याशी का व्यक्तित्व, उसकी जाति और समुदाय भी अपनी भूमिका निभाता है। चूँकि चुनाव सामान्य बहुमत के आधार पर एकल सदस्य चुनाव क्षेत्र में होते हैं, इससे प्रत्याशियों का ढाँचा भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए मैं सीटों की संख्या के रूप में चुनाव परिणामों के पूर्वानुमान का ख़तरा नहीं उठाऊँगा। कुछ स्थितियों में महज 30 प्रतिशत समर्थन पाकर कोई सीटों का बहुमत प्राप्त कर सकता है। यह भी संभव है कि बड़ी संख्या में सीटें बहुत मामूली अंतर से हार जाएँ। पिछले आम चुनाव में जनसंघ उत्तर प्रदेश में लगभग 80 विधानसभा सीटें मामूली अंतर से हार गया था। एक मामूली खिसकाव प्रदेश में राजनीतिक परिदृश्य में भारी परिवर्तन ला सकता है।

दलों के तीन समूह

सत्ता के दावेदारों को मोटे तौर पर तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे पहले कांग्रेस है, जो सत्तारूढ़ दल है। दूसरे कम्युनिस्ट हैं। इसमें सी.पी.आई. के दोनों धड़े, एस.एस.पी. और अन्य छोटे वामदल शामिल हैं। तीसरा समूह ग़ैर-कम्युनिस्ट राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दलों का है। स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ इसके प्रमुख घटक हैं। परंतु कई बागी कांग्रेसी समूह भी उनके साथ जा सकते हैं। आज जब परिवर्तन की सर्वत्र चाहत है, तो यह तीसरा समूह ही है, जिसकी ओर लोग आशा और उम्मीद के साथ निगाहें गड़ाए हैं। चीन के आक्रमण और कम्युनिस्टों द्वारा निभाई गई भूमिका ने उनकी छवि को बुरी तरह खराब कर दिया है। केरल में उनके अल्पकालिक शासन ने भी लोगों का मोहभंग कर दिया है। बंद के उनके हालिया कार्यक्रमों से स्पष्ट है कि वे भी मतपेटिका के माध्यम से सत्ता में आने के प्रति बहुत आशान्वित नहीं हैं। इस स्थिति में उन्हें एस.एस.पी. में नए सहयोगी मिले हैं, दोनों खीझे हुए और संशयी लगते हैं। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में, कांग्रेस का कोई अन्य गंभीर प्रतिद्वंद्वी न होने की स्थिति में उन्हें कांग्रेसी विरोधी रुझान का लाभ मिलेगा। परंतु राष्ट्रीय स्तर पर वे अपने मतों में बहुत सुधार नहीं कर सकते, कुछ क्षेत्रों में उनके पर्याप्त संख्या में लौटने की संभावना है।

कांग्रेस को मिलनेवाले मतों में गिरावट उल्लेखनीय होगी। आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि यह गिरकर मात्र 25 प्रतिशत पर आ जाए। कांग्रेस के समर्थन में इस खिसकाव का सबसे बड़ा हिस्सा निश्चित रूप से तीसरे समूह को मिलेगा। यह आसानी से अपना वोट प्रतिशत लगभग 16 प्रतिशत से दोगुना कर 32-35 प्रतिशत कर लेगा। लोकतंत्र में अपने विश्वास के कारण वे आत्मविश्वास के साथ रणभूमि में उतर रहे हैं। यदि वे लोगों का व्यापक समर्थन जुटाने के लिए अपने संगठन को सुसज्जित कर सकें तो भविष्य उन्हीं का है।

जनसंघ की सराहनीय प्रगति

वर्तमान विश्लेषण के उद्देश्य से, भारतीय जनसंघ को तीसरे वर्ग में शामिल किया गया है और इसे स्वतंत्र पार्टी और विभिन्न बागी कांग्रेसी समूहों के साथ रखा गया है। परंतु जनसंघ ने किसी भी दल के साथ गठबंधन में न जाने या संयुक्त मोर्चा न बनाने का निर्णय किया है। इसके विपरीत, यह अपने पार्टी कार्यक्रम, टिकट और चुनाव-चिह्न पर चुनाव लड़ने को इच्छुक है। इस नीति का निर्णय इसलिए किया गया है, क्योंकि यह चुनाव को मात्र सत्ता प्राप्त करने के अवसर के रूप में नहीं देखता बल्कि इसे लोगों को शिक्षित करने का अवसर भी मानता है। गठबंधन के लिए न्यूनतम साझा कार्यक्रम की आवश्यकता होती है। यह साझा कार्यक्रम कुछ सामान्योक्तियों का दस्तावेज़ बना रह सकता है, जिसका दावा सभी राजनीतिक दल करते हैं। ऐसे समझौते कार्यकर्ता के आदर्शवाद का क्षरण करते हैं। इसके अलावा गठबंधनों में हमेशा एक नकारात्मक गुण होता है। कांग्रेस विरोध हमारा ध्येय नहीं होना चाहिए। यद्यपि जनसंघ किसी गठबंधन में शामिल नहीं होगा, परंतु इसने कम्युनिस्टों और मुसलिम लीग को छोड़कर अन्य दलों के साथ सीटों पर समझौते का द्वार बंद नहीं किया है। हालाँकि यह समझौते व्यावहारिक आधार पर प्रभावी होंगे और अधिकांशतः ज़िला या क्षेत्र स्तर पर किए जाएँगे। लीग और कम्युनिस्टों को बहिष्कृत इसलिए किया गया है, क्योंकि उस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो पूरी तरह अलग, ग़ैर-भारतीय और ग़ैर-लोकतांत्रिक है। हम उनके साथ कोई संबंध नहीं रख सकते।

पिछले पाँच वर्षों के दौरान भारतीय जनसंघ सभी आयामों में विकसित हुआ है। इसने अब देश के सभी हिस्सों में अपनी शाखाओं का विस्तार किया है। कुछ चयनित क्षेत्रों में इसने बहुत ही सघन तरीक़े से कार्य किया है। इस दौरान इसने

सरकार की ग़लत नीतियों का साहस और स्पष्टता के साथ विरोध किया है, जबकि देश की सुरक्षा जैसे राष्ट्रीय मुद्दों पर रचनात्मक सहयोग कर रहा है। जनसंघ एकमात्र दल है, जिसने रक्षा को पहली प्राथमिकता दी है और चीन और पाकिस्तान से ख़तरे के विरुद्ध चेताया है। 1957 और 1962 के अपने चुनाव घोषणा-पत्र में इसने योजना प्राथमिकताओं में परिवर्तन और क़ीमत स्थिरता, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की पैरवी की थी। इन सभी और इस पार्टी के कई अन्य दृष्टिकोणों को घटनाओं ने सिद्ध किया है। जनसंघ के विरोधी इसे सांप्रदायिक बताते हैं और आर्थिक कार्यक्रम नहीं होने का आरोप लगाते हैं। परंतु आज कोई भी इस झूठे प्रचार पर कान देने को तैयार नहीं है। जनसंघ के राष्ट्रवाद पर संदेह नहीं किया जा सकता और तथाकथित अर्थोन्मादियों के पांडित्याभिमानी शब्दजाल के मुक़ाबले इसके अर्थशास्त्र की व्यापक वैधता साबित हुई है।

16 अगस्त, 1965 को संसद् के सामने इसके व्यापक, अनुशासित और शांतिपूर्ण प्रदर्शन ने सबकी प्रशंसा प्राप्त की और लोगों के आकलन में ऊँचे पहुँच गया। जो प्रतिक्रिया इसे मिल रही है, वह जबरदस्त है। इसे लोगों की आस्था के योग्य होने को साबित करना है।

प्रदेशवार विश्लेषण

1962 के चुनाव में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश, दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर में जनसंघ मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभरा। राजस्थान में यद्यपि यह स्वतंत्र पार्टी के बाद है, परंतु व्यवहार में यह मुख्य विपक्षी दल के रूप में कार्य करता है। पंजाब में भी इसने यह दायित्व निभाया है। स्वाभाविक रूप से, इन सभी क्षेत्रों में यह शक्तियों के ध्रुवीकरण के लिए आधार बन गया है।

अगले चुनाव में इसे कांग्रेस के साथ सफलतापूर्वक संघर्ष करने की योजना बनानी चाहिए। यह अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है और उसके निर्वहन के लिए तैयारी कर रहा है। बिहार, महाराष्ट्र और आंध्र में यह कुल सीटों के 50 प्रतिशत से अधिक सीटों पर चुनाव लड़ेगा। अन्य राज्यों में इसने प्रभाव क्षेत्र निर्मित कर लिये हैं और उन्हीं पर ध्यान केंद्रित करेगा। कुल मिलाकर हम 2000 विधानसभा सीटों और 300 लोकसभा सीट पर चुनाव लड़ने का प्रस्ताव करते हैं। यह संख्या घटकर 1500 विधानसभा और 250 लोकसभा सीट हो सकती है।

जैसा मैंने पहले कहा कि मैं पूर्वानुमान का ख़तरा नहीं उठाऊँगा, परंतु हम

अत्यंत आशान्वित और आश्वस्त हैं। दृढसंकल्प और समर्पण के साथ हमारे कार्यकर्ता कड़े प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि अराजकता, तोड़फोड़ और हिंसा की ताक़तों को हराना है तो राष्ट्रीय लोकतांत्रिक तत्त्वों को यह प्रदर्शित करना चाहिए कि वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से परिवर्तन लाने के लिए प्रभावी और सक्षम हैं। जनता कांग्रेस को सहन नहीं करेगी और वह कम्युनिस्टों को पसंद नहीं करती। स्पष्टतया राष्ट्रवादियों को विकल्प उपलब्ध कराना चाहिए। यही हम करेंगे—यह हमारा वादा और विश्वास है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 15, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



26

जनसंघ जनमत संग्रह के पक्ष में नहीं

आम चुनाव में जनसंघ की योजना 275 संसदीय सीटों और लगभग 2,000 विधानसभा सीटों पर चुनाव लड़ने की है। संघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने बुधवार को बंबई में एक संवाददाता सम्मेलन में बताया कि पार्टी महाराष्ट्र में राज्य विधानसभा के लिए 175 उम्मीदवारों को उतारेगी। श्री उपाध्याय ने कहा कि कलकत्ता में अक्तूबर के पहले सप्ताह में पार्टी की कार्यसमिति की बैठक में चुनाव घोषणा-पत्र तैयार किया जाएगा और अपनी चुनावी रणनीति बनाई जाएगी।

सैद्धांतिक प्रतिबद्धता

उन्होंने कहा कि जनसंघ ने गोवा में जनमत सर्वेक्षण होने के विचार का विरोध किया था। उनके मुताबिक इस तरह के सर्वेक्षण न तो ज़रूरी हैं और न ही वांछनीय।

उन्होंने कहा कि भारत के राजनीतिक मानचित्र में सीमांकित राज्य की सीमाएँ 'कुछ लोगों के बदलते नजरिए के बजाय सिद्धांत के अनुसार' होनी चाहिए। राज्य पुनर्गठन आयोग ने कुछ मानदंड निर्धारित किए थे और उस आधार पर विभिन्न राज्यों को काटा था। 'गोवा और अन्य ऐसे प्रदेशों के विलय में इन दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए।'

उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि भले ही गोवा में जनमत सर्वेक्षण का परिणाम एक

अलग राज्य के समर्थन के लिए 100 प्रतिशत जीत हो, लेकिन क्षेत्र का विलय महाराष्ट्र के साथ कर दिया जाना चाहिए।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, सितंबर 8 , 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



27

चौथी योजना का विश्लेषण

योजना मंत्री श्री अशोक मेहता संसद् में चौथी पंचवर्षीय योजना का मसौदा प्रस्तुत कर चुके हैं। आम चुनाव के पूर्व, वर्ष के अंत तक इसे अंतिम रूप दे दिया जाएगा और सार्वजनिक कर दिया जाएगा। यदि मसौदे का उद्देश्य चर्चा शुरू करना और सुझाव आमंत्रित करना है, तो इसका सीधा अर्थ वह दोहराना है, जो लोग कई बार पहले ही कह चुके हैं। अक्तूबर, 1964 में जारी मेमोरैंडम में चौथी योजना का एक मोटा स्वरूप दिया गया था। बाद में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 5-6 सितंबर, 1965 को अपनी बैठक में इस प्रावधान के साथ इसके लिए संसाधन, योजना, आकार और प्राथमिकताओं को स्वीकृत दी थी कि प्रधानमंत्री परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार योजना की विशेषताओं में परिवर्तन करने के लिए अधिकृत हैं।

प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री कोई परिवर्तन कर सकते, इसके पूर्व ही ताशकंद में उनकी मृत्यु हो गई। परंतु देश को बोध हुआ कि योजना में विवेकसम्मत परिवर्तन की आवश्यकता है। न केवल तीन योजना की अपेक्षाकृत विफलता बल्कि परिवर्तित अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्थिति ने भी इस बोध को प्रेरित किया। तब से विनाशकारी घटनाएँ होती रहीं। पश्चिमी शक्तियों द्वारा सभी अनुदानों का निलंबन और इसके दबाव के परिणामस्वरूप रुपए के अवमूल्यन ने विदेशी अनुदान की वास्तविक प्रकृति को बेनकाब कर दिया। बिना शर्त अनुदान का नारा अब वास्तविकता नहीं रही।

योजना भवन के भगवान्

देशभक्त जनता ने विदेशी अनुदान के बिना आगे बढ़ने का निर्णय किया। परंतु योजनाकार दबाव में आ गए लगते हैं। बढ़ती क़ीमतें, उत्पादन में चौतरफ़ा

गिरावट, गंभीर सूखा, इन सबने हमारी योजना की कमज़ोरी को उद्घाटित कर दिया। लोगों ने उम्मीद की—और सरकार ने वादा किया—कि अगली योजना में समाधान के उपाय सुझाए जाएँगे। परंतु मसौदा एक निराशाजनक दस्तावेज़ रहा। यह कुछ भी नया नहीं कहता है। यह दूसरी और तीसरी योजना की रणनीति का अनुसरण करता है। प्राथमिकताएँ, योजना आकार और प्रमुख क्षेत्रों में प्रमुख लक्ष्य पिछली दो योजना में किए गए निर्धारण से भिन्न नहीं हैं। आयोग ने कुल मिलाकर बस यही किया है कि अवमूल्यन के बाद की रुपए की विनिमय दर और उसके अनुरूप वित्तीय लक्ष्यों को समायोजित करने का ध्यान रखा है। यह आश्चर्यजनक है कि योजना भवन के देवी-देवता वास्तविकता के धरातल पर नहीं उतरे।

मेमोरेंडम में प्रस्तावित 21,500 करोड़ रुपए की योजना के मुक़ाबले मसौदे में 23,750 करोड़ रुपए का वित्तीय लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसकी विशालता के परिमाण की कल्पना केवल तभी की जा सकती है, जब इसे अंकों में 2,37,50,00,00,000 रुपए लिखा जाए। वित्तीय भाषा में यह पहली तीन योजनाओं के योग से भी बड़ा है। पूर्व लक्ष्य में 2250 करोड़ रुपए का संशोधन किया जा चुका है। यह 8.4 अरब डॉलर के अनुमानित विदेशी अनुदान में रुपए के संदर्भ में अंतर को निरूपित करता है।

तीन योजनाओं के योग से बड़ा

निरंतर यह माँग की जाती रही है कि चौथी योजना बड़ी नहीं होनी चाहिए। रुपए के गिरते मूल्य के साथ वित्तीय लक्ष्य के आधार पर योजना के आकार के मूल्यांकन का बमुश्किल ही कोई अर्थ निकलता है। मूल्य एक भौतिक तत्त्व है, परंतु यदि योजना आकार का प्रस्ताव हमारे संसाधनों की सीमा से आगे जाकर किया जाता है, तब वित्तीय रूप से योजना अब तक की सबसे बड़ी बन जाती है। और इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि योजनाकारों की मान्यताएँ हमेशा ग़लत हुई हैं। ऐसा नहीं है कि संसाधन नहीं जुट पाए बल्कि योजना की परियोजनाओं के लिए उनका समुचित अनुपात में उपयोग नहीं हुआ। इसके अलावा आगत-निर्गत अनुपातों के संदर्भ में आयोग के अनुमान और गणनाएँ भी निरपवाद रूप से ग़लत रही हैं। मसौदे के तौर पर चौथी योजना वित्तीय रूप में बड़ी है, परंतु भौतिक रूप में छोटी है।

खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य 12 करोड़ टन के स्तर पर बरकरार रखा गया है।

उर्वरक, कीटनाशक इत्यादि के सघन उपयोग की रणनीति की भी पैरवी की गई है। परंतु उर्वरक उत्पादन का लक्ष्य मेमोरैंडम के 22 लाख टन से घटा कर मसौदे में 20 लाख कर दिया गया है। इस परिवर्तन का एकमात्र स्पष्टीकरण यही है कि आयोग ने देश में नाइट्रोजिनस उर्वरक का उत्पादन करने की बजाय आयात का प्रस्ताव किया है।

यद्यपि योजना के वित्तीय लक्ष्य ने निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी को समान स्तर यानी 7,500 करोड़ रुपए पर बरकरार रखा है। मसौदा योजना में निजी क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्थान को आश्वस्त करता है। परंतु जब संसाधनों के आवंटन की बात आती है तो उसे एक सीमांत और बची-खुची हिस्सेदारी के साथ ही संतोष करना पड़ता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में योजना आकार 16,000 करोड़ रुपए रखने का प्रस्ताव किया गया है। यह एक लालची पेटू की तरह सार्वजनिक क्षेत्र निगल अधिक सकता है, परंतु इसे पचा नहीं सकता। जहाँ तक सार्वजनिक क्षेत्र के प्रदर्शन की बात है, इसमें अभी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है। एक बार फिर दृढीकरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। परंतु आयोग दृढीकरण को उसकी किस्मत पर छोड़कर केवल विस्तार में विश्वास रखता है। यदि यह नीति जारी रहती है तो सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं से न्यूनतम 11 या 12 प्रतिशत प्रतिफल प्राप्त करने की संभावना नहीं है, जब तक कि इन इकाइयों द्वारा वसूली जा रही क़ीमतों में कर का भारी तत्त्व समायोजित न किया जाए।

उनके छद्म-समाजवादी जमीर के साथ

27340 करोड़ रुपए के नए करों का सुझाव देकर बड़ी योजना बनाई है। जहाँ तक करों का संबंध है, वे इससे और ज़्यादा नहीं लगाए जा सकते हैं। इन्हें तर्कसम्मत बनाने की संभावना है, परंतु इसका अर्थ अतिरिक्त बोझ डालना नहीं होना चाहिए। आयोग ने आय कर आधार व्यापक बनाने का सुझाव दिया है। क़ीमतों के वर्तमान स्तर पर छूट सीमा को कम करने या कर दरों को बढ़ाने की बमुश्किल ही कोई संभावना है। यदि कालदोर[1] के परामर्श का अनुसरण किया जाए तो एक संभावना

1. निकोलस कालदोर (1908-1986) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दौर के प्रमुख कैंब्रिज अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने प्रमुख रूप से समाज कल्याणकारी अर्थशास्त्र से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रतिपादित किया। वे संयुक्त राष्ट्र में प्रमुख अर्थविद रहे और नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रख्यात अर्थविद गुन्नार मिर्डल के साथ भी काम किया था। उन्होंने विनिर्माण क्षेत्र में माँग एवं आपूर्ति के संबंध पर नया सिद्धांत दिया था।

यह है कि कर अपवंचन और बकाया के कारण खजाने के नुक़सान की भरपाई की जाएगी और ज़्यादा राजस्व आएगा। परंतु इसके लिए कराधान की अधिकतम सीमा को घटाने की आवश्यकता होगी, जिसके लिए शासकों का छद्म-समाजवादी जमीर अनुमति नहीं दे सकता।

आयोग ने भू-राजस्व, नक़दी फ़सलों पर उपकर और सिंचाई दरों में वृद्धि का सुझाव भी दिया है। कुछ राज्य सरकारें पहले ही इन उपायों को अपना चुकी हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में असंतोष बढ़ा है। इन सबसे किसानों की पहले से ही अल्प आय को आघात पहुँचा है। किसान पर लेवी का अर्थ कृषि में पूँजी निवेश पर लेवी लगाना है। यह कृषि के विकास को नुक़सान पहुँचाएगा। आयोग चाहता है कि सिंचाई दरों को सिंचाई परियोजनाओं की पूँजी लागत और कार्यशील पूँजी से संबद्ध किया जाए। निकट भविष्य में यह नहीं किया जा सकता। दरें किसान की क्षमता और देश की कृषि नीति से संबद्ध होनी चाहिए। इससे बेहतर यह होगा कि ऊँची क़ीमतों पर खाद्यान्न आयात के मुक़ाबले अधिक उत्पादन के लिए किसानों को सस्ती दरों पर जलापूर्ति की जाए। इसके अलावा सिंचाई परियोजनाएँ भारी पूँजीलागत वाली होती हैं। यदि सिंचाई दरों की गणना इस आधार पर की जाए तो संभवत : कोई भी किसान उसे बरदाश्त करने की स्थिति में नहीं होगा।

स्वदेशी की मात्र खोखली बातें

आयोग ने वादा किया है कि घाटे का वित्तपोषण नहीं होगा। परंतु यह वादा निभाए जाने की संभावना नहीं है। अन्य स्रोतों से संसाधनों का अनुमान पूरा होने की संभावना नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं, सरकार पहले कमाकर फिर व्यय नहीं करती है। इसके विपरीत वह पहले व्यय करती है और फिर धन-संग्रह की योजना बनाती है। यदि वह योजना के अनुसार यह करने में विफल रही तो घाटे के वित्तपोषण के अलावा कोई चारा नहीं होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि यदि घाटे के वित्तपोषण से बचना है तो व्यय के मदों को घटाया जाए। परंतु आयोग ने ऐसा नहीं किया है।

स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की बहुत बातें हुईं। परंतु आयोग ने इसे छठी योजना तक के लिए स्थगित कर दिया है। सरकार ने आयात के प्रतिस्थापन कार्यक्रमों को वरीयता देने का प्रस्ताव किया है, परंतु इसे विस्तार में नहीं बताया गया है। विदेशी अनुदान पर हमारी निर्भरता घटाने की कोई व्यग्रता नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र

के 16,000 करोड़ रुपए के योजना आकार में विदेशी अनुदान का हिस्सा 4700 करोड़ रुपए है। यह लगभग 30 प्रतिशत बैठता है। आज विदेशी पूँजी को हर तरह की रियायत प्राप्त है। सहयोग समझौता विदेशी भागीदार के पक्ष में झुका हुआ होता है। भारत में पंजीकृत पेटेंटों में से 82 प्रतिशत से अधिक विदेशी हैं। इकाइयों के उत्पादन कार्यक्रम उनके हाथों में हैं। तकनीकी जानकारी विदेशी है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में भारतीयों को दरकिनार किया गया है। उन पर न तो विश्वास किया जाता है और न ही उन्हें शीर्ष पर काम करने की अनुमति दी जाती है। इस नीति के जारी रहने से हम सौवीं योजना तक में आत्मनिर्भर होने नहीं जा रहे हैं। चौथी योजना दिशा बदलने में विफल रही है।

क़ीमत स्थिरता की बात पर रणनीति सुझाई गई है कि आवश्यक वस्तुओं में थोक और खुदरा व्यापार का सरकारीकरण कर दिया जाए। यह करते हुए आयोग अन्य क्षेत्रों में क़ीमतों पर नज़रें गड़ाना चाहता है। सस्ती दरों की दुकानों का अनुभव बहुत सुखद नहीं रहा है। जब तक कि क़ीमतों पर अंकुश रखने के लिए सामान्य उपाय नहीं किए जाते, इन आधी-अधूरी और अस्थायी व्यवस्थाओं से अर्थव्यवस्था को मुद्रास्फीतिक दबावों से राहत मिलने की संभावना नहीं है। सरकार द्वारा क़ीमत नीति बनाया जाना अभी बाक़ी है। परंतु कोई विशिष्ट प्रस्ताव आगे नहीं किया गया है।

पुरानी, चरमराती प्रणाली

योजनाकारों ने बेरोजगारी और अल्प रोजगार से राहत के लिए योजना बनाने पर कभी ध्यान नहीं दिया। सामान्य रूप से जो भी रोजगार सृजित हो रहा है, उससे वे संतुष्ट हैं। परिणामतः योजना-दर-योजना बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। चौथी योजना के अंत तक यह संख्या लगभग 1.4 करोड़ हो जाएगी। इसके अलावा लगभग 2 करोड़ अल्प रोजगार से पीड़ित हैं, जो अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। यह समस्या तभी हल की जा सकती है, जब पूरी योजना तकनीक को परिवर्तित किया जाए।

आयोग ने वित्त वर्ष में एक परिवर्तन का सुझाव दिया है। वर्ष के 1 अप्रैल से शुरू होने के स्थान पर आयोग इसे 1 अक्तूबर से शुरू करना चाहता है, लोकसभा की अनुमान समिति भी पहले यह सुझाव दे चुकी है। और इससे भी पहले जनसंघ ने इसका प्रस्ताव किया था। परंतु जब श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वित्त वर्ष को

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा यानी दीवाली के दूसरे दिन से शुरू करने का प्रस्ताव रखा था तो कांग्रेसी सदस्यों ने टिप्पणी की थी कि जनसंघ बनियों का समर्थन करना चाहता है। परंपरागत रूप से हमारा वित्तीय वर्ष हमेशा उसी दिन से शुरू होता है। यह हमारे मौसम और हमारी कृषि अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है।

योजना में ढेर सारा शब्दाडंबर है। यह अनुमानों और उम्मीद की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण है। इनका सबका अर्थ है। परंतु बिना उपयुक्त प्रणाली के इसे कार्यान्वित करने कौन जा रहा है?

संक्षेप में, आयोग अपनी पुरानी और चरमराती प्रणाली से बाहर नहीं निकल पाया है। चौथी योजना पुरानी योजनाओं का ही अनुसरण करती है और यदि चमत्कार नहीं हुआ तो यह सफल होने नहीं जा रही है। आम आदमी को राहत की कोई उम्मीद नहीं है। अर्थव्यवस्था का उतार-चढ़ाव, अधिक उतार और कम चढ़ाव झेलना जारी रहेगा। मसौदा देखने के बाद मैं वर्तमान योजना आयोग को भंग कर कर इसके पुनर्गठन की अपनी माँग पर बल देने का साहस करता हूँ। जब तक यह नहीं किया जाता, सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है।

—ऑर्गनाइज़र, सितंबर 11, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



28

चुनाव समझौतों के पक्ष में नहीं

रायपुर, 14 अक्तूबर : जनसंघ ने केवल राजस्थान और गुजरात में स्वतंत्र पार्टी के साथ चुनावी समायोजन किया है, लेकिन नीतिगत रूप में, यह अपनी सामर्थ्य, अपने खुद के चुनाव-चिह्न, विचारधारा और कार्यक्रम पर चुनाव लड़ना चाहता है। यह बात महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने आज यहाँ संवाददाताओं को बताई। —पी.टी.आई.

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, अक्तूबर 16, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



29

जनसंघ यदि सत्ता में आया तो बैंकों के अधिग्रहण का अध्ययन करेगा

नागपुर, 21 अक्तूबर, 1966। जनसंघ के नेता श्री दीनदयाल उपाध्याय ने कल कहा था कि अगर उनकी पार्टी सत्ता में वापस आई, तो वह बैंकों या किसी भी उद्योग के राष्ट्रीयकरण की व्यवहार्यता और औचित्य के परीक्षण के लिए एक आयोग का गठन करेगी और 'हम आयोग की सिफारिशों का सम्मान करेंगे।'

यहाँ सम्मेलन में सवाल के जवाब में श्री उपाध्याय ने कहा कि उनकी पार्टी सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का सह अस्तित्व चाहती है। कांग्रेस नेता भी दोनों सेक्टरों के बीच सह-अस्तित्व की बात करते हैं, लेकिन सरकार द्वारा जो क़दम उठाए गए हैं, उनका उद्देश्य समाजवाद के नाम पर अंततः निजी क्षेत्र का उन्मूलन ही है।

श्री उपाध्याय ने कहा, 'हम समस्याओं के संदर्भ में सिद्धांतवादी या वैचारिक दृष्टिकोण में नहीं बल्कि व्यावहारिक दृष्टिकोण में विश्वास करते हैं। हम इस बात पर विश्वास नहीं करते कि सार्वजनिक क्षेत्र हमारी सभी बीमारियों के लिए रामबाण है और न ही हम निजी क्षेत्र से नफरत करते हैं। हमारे कांग्रेस नेता समाजवाद के विचार से इतने मनोग्रस्त हैं कि वे सभी योजनाओं में लगभग हमेशा ही समाजवाद के व्यापक से व्यापक अंश का परिचय कराते रहते हैं और समस्या के आर्थिक पहलुओं को पृष्ठभूमि में डाल देते हैं।' श्री उपाध्याय ने कहा कि ऐसे समय में जब समुदाय के विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और बैंकों की

ज़रूरत थी, उस समय बैंकों का राष्ट्रीयकरण अच्छा करने की बजाय नुक़सान अधिक कर सकता है। लोगों ने बचत की आदत विकसित करनी शुरू ही की थी और आवश्यकता बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार की थी।

छात्र अशांति के बारे में श्री उपाध्याय ने कहा कि उन्हें नहीं लगता कि हाल के आंदोलन के पीछे कोई संगठित क़दम था। छात्रों ने स्थितियों पर तत्काल अपनी प्रतिक्रिया दी और छात्र मनोविज्ञान को समझते हुए स्थिति से निपटने में मदद मिल सकती थी।

श्री उपाध्याय ने एक सदस्यीय परिसीमन आयोग की नियुक्ति का स्वागत किया और कहा कि यह वांछित होगा, अगर आयोग आम चुनाव से पहले अपना निर्णय दे दे। उन्होंने गोवा में जनमत सर्वेक्षण[1] करने के फ़ैसले की आलोचना की और कहा कि यह अलगाववादी और सांप्रदायिक ताक़तों के प्रति 'अति दयनीय आत्मसमर्पण' है। उन्होंने आगे कहा, अब जब कि सरकार ने महाराष्ट्र में गोवा के विलय को मान्यता दे दी है, यह बेहतर होगा कि खुले दिमाग से क़दम उठाएँ, बजाय इसके कि 'हानिकर उदाहरण बन जाए।'

पार्टी की प्रतिनिधि सभा की बैठक यहाँ 3 नवंबर से होगी, जो चुनावी घोषणा-पत्र को अंतिम रूप देगी। जनसंघ ने महाराष्ट्र में 25 लोकसभा सीटों और 270 में से 195 विधानसभा सीटों, गुजरात में 20 विधानसभा सीटों और राजस्थान में 65 विधानसभा और छह लोकसभा सीटों पर चुनाव लड़ने का प्रस्ताव रखा। (यू.एन.आई.)

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, अक्तूबर 22, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



1. पुर्तगालियों के चंगुल से मुक्ति के पश्चात् गोवा में 1962 में चुनाव हुए, जिसके बाद 20 दिसंबर, 1962 को दयानंद भंडारकर गोवा के पहले मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए। ये राज्य के महाराष्ट्र में विलय के पक्ष में थे, क्योंकि गोवा महाराष्ट्र के पड़ोस में था। कोई अंतिम फ़ैसला नहीं होने के बाद 16 जनवरी, 1967 को वहाँ जनमत संग्रह हुआ और गोवा के लोगों ने केंद्र शासित प्रदेश के रूप में रहना पसंद किया। कालांतर में 30 मई, 1987 को गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला और यह भारतीय गणराज्य का 25वाँ राज्य बना।

30

पी.एम. पर मुक़दमा चले

रायपुर के अभनपुर (अब छत्तीसगढ), मध्य प्रदेश में एक जनसभा में दीनदयाल उपाध्याय की माँग।

'भारत के संविधान का उल्लंघन करने के लिए प्रधानमंत्री पर मुक़दमा चलाया जाना चाहिए।'

संविधान में अलगाव की बात करने को अपराध की श्रेणी में लाने के लिए विशेष रूप से संशोधन किया गया था। लेकिन प्रधानमंत्री उस 'फेडरल गवर्नमेंट ऑफ़ नागालैंड' के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत कर रहे हैं, जो न केवल अलगाव की माँग कर रहे हैं बल्कि समानांतर सरकार चला रहे हैं और अपनी अलग सेना बना रखी है। इस रीति से तो पी.एम. अलगाव के अपराध को सिर्फ़ मदद ही पहुँचा रहे हैं।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 23, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



31

जनसंघ के लिए बड़ा अवसर

पार्टी कार्यकर्ताओं को पूर्ण आत्मविश्वास के साथ लोगों तक जाना चाहिए। तीन दिवसीय सत्र पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र, जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था, को अंतिम रूप देने के प्रति समर्पित था। जनसंघ के चुनाव उद्देश्यों और रणनीति को निर्धारित करने के लिए कल के सत्र में 'आह्वान' शीर्षक युक्त एक संकल्प पारित किया गया।

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, नवंबर 7, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



32

आर्थिक दासता की राह पर भटकता भारत

भारतीय रुपए का अवमूल्यन किए हुए पाँच माह व्यतीत हो चुके हैं, किंतु सरकार अब तक न तो मूल्य ही नियंत्रित कर सकी है और न निर्यात में वृद्धि ही। इसके विपरीत निर्यात घटा है, क़ीमतें बढ़ी हैं तथा अवमूल्यन के बावजूद चौथी योजना के लिए विदेशी सहायता की मात्रा का भी पता नहीं चल पाया है। यही नहीं तो चौथी योजना के प्रथम वर्ष के लिए विश्व बैंक एवं अन्य द्वारा योजना इतर आयोजना के लिए नब्बे करोड़ डॉलर की सहायता का वचन देने के उपरांत अभी तक डॉलर भी नहीं दिया गया है।

विदेशी दबाव का परिणाम

यह तो सर्वविदित है कि रुपए का अवमूल्यन विदेशी, विशेषतया विश्व बैंक और अमरीकी दबाव पर किया गया है, यद्यपि भारत सरकार इस बात का जब-तब खंडन करती रहती है। 5 जून, 1966 की रात्रि में 11 बजे अचानक ही जब वित्तमंत्री श्री चौधरी ने भारतीय रुपए के अवमूल्यन की घोषणा की तो सारा राष्ट्र आश्चर्य में पड़ गया, क्योंकि एक दिन पूर्व तक अवमूल्यन की चर्चा का खंडन किया गया था। फलत: रातो-रात विदेशी क़र्ज़ की मूल धनराशि के साथ ही ब्याज की धनराशि में भी अप्रत्याशित वृद्धि हो गई। आयातित वस्तुओं के मूल्य बढ़ गए तथा विदेशों के लिए कम क़ीमत पर अधिक निर्यात किए जाने का मार्ग खुल गया।

अवमूल्यन करते समय वित्तमंत्री ने यह आशावाद प्रकट किया था कि इससे

अधिक मात्रा में विदेशी पूँजी भारत में आएगी, कम क़ीमत में अधिक माल प्राप्त होने के कारण निर्यात में वृद्धि होगी, जिससे हमें चौथी योजना के लिए विदेशी मुद्रा उपलब्ध हो सकेगी और हम अपनी आर्थिक सुदृढता की ओर बढ़ सकेंगे। पर अवमूल्यन स्वयमेव इस बात का द्योतक है कि देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत ही दयनीय हो चुकी है। स्वयं वित्तमंत्री के शब्दों में भारत का विदेशी मुद्रा कोष समाप्तप्राय हो चुका था। देश की आर्थिक स्थिति जर्जर हो चुकी थी, इसे पुनरुज्जीवित करने हेतु ही 'अवमूल्यन' किया गया। 'अवमूल्यन' साध्य नहीं, साधन है। किंतु आज भारत सरकार 'अवमूल्यन' को ही साध्य समझकर उसको सही सिद्ध करने में जुटी है। देश की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है।

इंदिरा सरकार की स्थिति तो और भी दयनीय है। सरकार को स्वयं अपने द्वारा उठाए गए पग के प्रति दृढ विश्वास नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि गत माह में दिल्ली के एक समाचार-पत्र ने दूसरे 'अवमूल्यन' किए जाने के संबंध में समाचार प्रकाशित किया तो किसी भी मंत्री को यह साहस न हुआ कि उसका खंडन करे या उसके संबंध में मुँह खोले। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के एक सचिव द्वारा दूसरे 'अवमूल्यन' की चर्चा का खंडन मात्र करा दिया गया। आत्मविश्वास-शून्य, जन-विश्वास से दूर कोई भी प्रशासन क्या देश को स्थायित्व प्रदान करता है?

एक अभिशाप

जहाँ तक अवमूल्यन से देश की अर्थव्यवस्था के सुदृढ होने का प्रश्न है, वह कोरी कल्पना मात्र है। क्योंकि अवमूल्यन के साथ ही क़र्ज़ में अप्रत्याशित वृद्धि हो गई है। 5 जून, 1966 को भारत पर विदेशी ऋण दो हज़ार सात सौ तैंतीस करोड़ रुपए था। जो अवमूल्यन के उपरांत 6 जून को चार हज़ार एक सौ करोड़ रुपए हो गया, अर्थात् एक हज़ार तीन सौ सड़सठ करोड़ रुपए की वृद्धि विदेशी क़र्ज़ में केवल एक रात में ही हो गई। विदेशी ऋण की धनराशि में वृद्धि के साथ ही ब्याज की राशि में भी वृद्धि हुई है। अब हमें जहाँ मूलधन पर अड़तालीस करोड़ रुपए वार्षिक ब्याज के रूप में भी अधिक देना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अब मूलधन भी अधिक देना होगा और ब्याज भी अधिक देना होगा। चौथी योजना के अंत में इसमें एक हज़ार पाँच सौ करोड़ रुपए की

वृद्धि और होने की आशा है। मूलधन और ब्याज में यह वृद्धि हमारी टूटती हुई अर्थव्यवस्था के लिए एक अभिशाप सिद्ध होगी।

अवमूल्यन के परिणामस्वरूप, पौंड और डॉलर की भारतीय रुपयों में क़ीमत भी बढ़ गई है। अब हमें एक सौ रुपए के मूल्य के सोने के लिए 36.5 प्रतिशत अधिक क़ीमत देनी पड़ेगी तथा विदेशों को 5 जून, 1966 के पूर्व। डॉलर अथवा पौंड में हम जितना माल देते थे उसमें अब लगभग 57 प्रतिशत अधिक माल देना पड़ेगा। अत: यदि यह मान भी लिया जाए कि अवमूल्यन से निर्यात में वृद्धि होगी तो इसका अर्थ होगा कि हमें उत्पादन में भी कम-से-कम 57 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी। जून 1966 के पूर्व के स्तर निर्यात कर पाएँगे। अब यदि हमें निर्यात से देश की अर्थव्यवस्था को लाभप्रद बनाना है तो उत्पादन को 57 प्रतिशत और बढ़ाना होगा। किंतु महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि तीन योजनाओं के उपरांत भी हमारे औद्योगिक उत्पादन में केवल अत्यल्प की ही वृद्धि हुई है। इसके साथ ही क़ीमतों में वृद्धि होने से लागत में वृद्धि स्वाभाविक है, आयातित माल की क़ीमत अब अधिक देनी होगी। फलत: चौथी योजना के अंत में भी हम अपनी योजना को घाटे से लाभ में बदल सकेंगे, यह शंकास्पद है। अब तक निर्यात में वृद्धि के लिए सरकार निर्यातकों को सहायता देती थी, तब भी हमारा माल अन्य देशों की माल की तुलना में विश्व की मंडी में अधिक महँगा बैठता था। अब सरकार ने कुछ विशिष्ट वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी है तथा कुछ विशिष्ट वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हेतु कुछ सुविधाएँ देने की घोषणा की है। सरकार ने इंजीनियरिंग का सामान, लोहा तथा इस्पात आदि के निर्यात हेतु सुविधाएँ उपलब्ध कराने की बात कही है। किंतु इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम तो विश्व की मंडी में विकसित देशों की तुलना में हमारा उक्त माल बहुत ही घटिया किस्म का बैठता है और यह माल भी भारत के कुल निर्यात का 20 प्रतिशत मात्र है। परंपरागत वस्तुओं का निर्यात इसके मुक़ाबले 80 प्रतिशत है। परंपरागत वस्तुओं में चाय, जूट, कहवा, तंबाकू आदि आते हैं।

निर्यात की स्थिति

गत वर्ष जुलाई में जहाँ हमने पाँच करोड़ अट्ठाईस लाख पौंड चाय का निर्यात किया था, वहाँ इस वर्ष जुलाई में हमने केवल दो करोड़ उनसठ लाख

पौंड चाय का निर्यात किया है। इस प्रकार इस एक उदाहरण से यह स्पष्ट है कि अवमूल्यन के बाद परंपरागत वस्तुओं का निर्यात भी घटा ही है। अभी-अभी वाणिज्य मंत्री श्री शाह ने लोकसभा में यह स्वीकार किया है कि गत वर्ष की तुलना में इस वर्ष निर्यात में कमी हुई है। गत वर्ष जून में जहाँ सड़सठ करोड़ रुपए के माल का निर्यात किया गया था, वहाँ इस वर्ष केवल इकसठ करोड़ रुपए के सामान का ही निर्यात हुआ है।

अवमूल्यन के परिणामस्वरूप आयात और निर्यात के बीच की खाई का बढ़ना भी सुनिश्चित है। क्योंकि जब तक हमारा उत्पादन 114 प्रतिशत नहीं बढ़ता, तब तक हमारा निर्यात सही माने में बढ़ा हुआ नहीं माना जा सकता। जहाँ हमने कुल आठ सौ सात करोड़ पाँच लाख रुपए के सामान का निर्यात किया, वहाँ एक हज़ार तीन सौ बयासी करोड़ सात लाख रुपए की क़ीमत के सामान का आयात किया। चौथी योजना के दौरान निर्यात और आयात की यह खाई और बढ़ेगी ही। कारण—तीन योजनाओं के बाद भी हम कच्चे माल की दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं हो पाए हैं। अनुमान है कि चौथी योजना के अंत में निर्यात और आयात के मध्य चार अरब से लेकर पाँच अरब तक का अंतर रहेगा। प्रारंभिक अनुमानों के अनुसार चौथी योजना के अंतर्गत तीस अरब की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होगी जो अवमूल्यन के उपरांत बढ़कर छत्तीस अरब तक पहुँच गई है।

देश में महँगाई का पहले से ही बुरा हाल था। गत तीन योजनाओं की परिसमाप्ति पर क़ीमतों में सामान्यत: 10 प्रतिशत की और वृद्धि हुई है। अभी और क़ीमतें बढ़ने के आसार स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

तेईस हज़ार सात सौ करोड़ की चौथी योजना के संबंध में अब तक लगाए गए सरकारी अनुमानों के अनुसार देश में उपलब्ध साधनों, विदेशी सहायता आदि के उदार अनुमान लगाने के उपरांत भी पाँच हज़ार करोड़ रुपए की कमी रहेगी, जिसे हमें अपने आंतरिक साधनों से पूरा करना होगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हमें पाँच हज़ार करोड़ रुपए के अधिक कर लगाने होंगे तथा घाटे की अर्थव्यवस्था को चलाना होगा। आज स्थिति यह है कि और अधिक कर लगाना

संभव नहीं है। फलतः योजना के इस बढ़ते हुए ख़र्चे के लिए हमें अधिक नोट छापने होंगे, जिसका स्वाभाविक परिणाम होगा और अधिक मुद्रास्फीति।

इस प्रकार एक ओर क़ीमतें बढ़ेंगी तो दूसरी ओर जमाखोरी, मुनाफाखोरी व भ्रष्टाचार चरम सीमा पर होगा और देश दिवालिएपन की ओर अग्रसर होगा।

गत अगस्त में संसद् के समक्ष तेईस हज़ार सात सौ करोड़ रुपए की चौथी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी, जिसे अब विदेशी सहायता की अनिश्चितता के अभाव में बाईस हज़ार करोड़ करने की चर्चा प्रारंभ हो गई है। किंतु उत्पादन लागत एवं मूल्यों में वृद्धि तथा आयातित कच्चे माल के दामों में बढ़ोतरी आदि के कारण अन्य तीन योजनाओं के सदृश चौथी योजना का आकार अंत तक बड़ा होकर इस योजना के तेईस हज़ार सात सौ करोड़ रुपए के स्थान पर तीस हज़ार करोड़ रुपए की होने की बात वित्त विशेषज्ञों द्वारा कही जा रही है।

तेईस हज़ार सात सौ करोड़ रुपए की चौथी योजना में सोलह हज़ार करोड़ रुपए सार्वजनिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए हैं तथा सात हज़ार सात सौ पचास करोड़ रुपए निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए हैं। इसके साथ ही चौथी योजना के लिए उक्त धनराशि प्राप्ति की दिशा में योजनाकाल में छह हज़ार तीन सौ करोड़ रुपए की विदेशी सहायता की आशा की गई है। इसके अतिरिक्त योजनेतर व्यय के अंतर्गत तीन सौ पैंतीस करोड़ रुपए बचाने का प्रावधान भी है तथा जनता से पंद्रह अरब रुपए ऋण लेने की बात योजना का मसविदा संसद् में पेश करते हुए कही गई है।

वर्तमान संकेतों के अनुसार अभी तक चौथी योजना के लिए विदेशी सहायता की मात्रा अनिश्चित है। अभी नवंबर से प्रारंभ लोकसभा के सत्र में वित्तमंत्री श्री शचिन चौधरी ने यह सूचित किया कि आगामी जुलाई तक चौथी योजना के लिए प्राप्त होनेवाली विदेशी सहायता का सही मात्रा में ज्ञान हो सकेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि जुलाई में चौथी योजना के निमित्त प्राप्त होनेवाली धनराशि का पता लग भी गया तो उसकी प्राप्ति हेतु की जानेवाली औपचारिक कार्रवाई में तीन-चार मास और व्यतीत हो जाएँगे, अर्थात् चौथी योजना के पाँच वर्षों में से लगभग दो वर्ष की समाप्ति के उपरांत हम चौथी योजना के लिए विदेशी सहायता प्राप्त कर सकेंगे। इन दो वर्षों में विदेशी सहायता प्राप्त कर सकेंगे। इन दो वर्षों में विदेशी मुद्रा के अभाव में अनेक कार्यक्रमों को या तो बीच में ही

रोक देना होगा या उन्हें अपने ही साधनों से चलना होगा।

चौथी योजना के साथ तो एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य यह है कि योजना का प्रथम वर्ष चुनाव का वर्ष होने के कारण सरकार योजना के स्रोतों के विषय में कोई भी सुनिश्चित निर्णय लेने में असमर्थ है। अभी तक विदेशी मदद की रूपरेखा अनिश्चित है,अवमूल्यन से फिलहाल तो कोई लाभ नहीं, प्रत्युत उत्पादन लागत में वृद्धि एवं क़ीमतों में बढ़ोतरी ही हुई है। ऐसी स्थिति में तेईस हज़ार सात सौ करोड़ की इस योजना का भविष्य क्या होगा, यह कहना कठिन है।

अवमूल्यन के परिणामस्वरूप आयातित वस्तुओं की क़ीमतों में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जिसका अर्थ यह हुआ कि इस चौथी योजना के अंतर्गत हमें आयातित कच्चे माल के लिए अधिक पैसा देना होगा, जबकि हम विदेशों के हाथ कम पैसे पर अधिक माल बेचेंगे। उदाहरण के लिए 5 जून, 1966 के पूर्व हमें एक सौ करोड़ डॉलर के बदले में चार सौ छिहत्तर करोड़ का माल देना पड़ता था तो अब एक सौ करोड़ डॉलर के बदले सात सौ पचास करोड़ का माल देना होगा। दूसरी ओर एक सौ करोड़ डॉलर से हमें जितना कच्चा माल मिलता था, उससे 57 प्रतिशत कम मिलेगा और क़ीमत भी लगभग 37 प्रतिशत और अधिक देनी होगी।

अब यदि सरकारी आशावाद को स्वीकार कर लिया जाए तथा अवमूल्यन से लाभ होना मान भी लिया जाए और चौथी योजना के लक्ष्यों की पूर्ति हो जाए तो भी स्थिति यह होगी कि चौथी योजना की समाप्ति पर पैंतालीस लाख बेकार और बढ़ जाएँगे, प्रति व्यक्ति की आय में तेईस पैसा प्रतिदिन मात्र की वृद्धि होगी, प्रति व्यक्ति प्रतिदिन तीन औंस अधिक अन्न उपलब्ध होगा, प्रति व्यक्ति सत्ताईस गज कपड़ा मिलेगा, कृषि में 5 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय आय में केवल पाँच सौ ग्यारह प्रतिशत की वृद्धि होगी।

तीसरी योजना के अंत में बेकारों की संख्या एक करोड़ हो गई है। आगामी पाँच वर्षों में यह संख्या दो करोड़ चालीस लाख हो जाएगी। जबकि चौथी योजना में काम एक करोड़ पंचानबे लाख लोगों को ही काम मिल सकेगा। फलतः चौथी योजना के अंत में एक करोड़ पैंतालीस लाख बेकारों की फौज तो निश्चित ही खड़ी हो जाएगी। इसके साथ ही इस योजना के अंत में चालीस अरब डॉलर का क़र्ज़ बना ही रहेगा।

इस समय भारत पर तीन हज़ार दो सौ निन्यानबे करोड़ का ऋण है, जिसमें अवमूल्यन के उपरांत पाँच हज़ार करोड़ की वृद्धि हुई है। चौथी योजना के प्रथम वर्ष में एक सौ बीस करोड़ उनतालीस लाख का क़र्ज़ अदा करना था, जो बढ़कर एक सौ इकसठ करोड़ अठारह लाख हो गया है। अवमूल्यन के बाद मूलत: सूद के भुगतान मात्र में लगभग अस्सी करोड़ रुपए की वार्षिक वृद्धि होगी। इस प्रकार सूद की कुल धनराशि ही दो सौ इकतालीस करोड़ सत्तावन लाख रुपए हो जाएगी। सन् 1966-67 में सात सौ चौरासी करोड़ पचासी लाख का विदेशी क़र्ज़ है। इस प्रकार कुल क़र्ज़ एक हज़ार एक सौ सतहत्तर करोड़ बीस लाख होता है, जिस पर सत्तर करोड़ रुपए तो केवल ब्याज ही होता है। इस प्रकार अनुमान यह है कि चौथी योजना में हमें प्रतिवर्ष तीन सौ ग्यारह करोड़ सत्ताईस लाख वार्षिक सूद देना होगा। इस बीच आयातित वस्तुओं की क़ीमतों में 50 प्रतिशत वृद्धि होगी। कच्चे माल के लिए चौबीस करोड़ रुपए वार्षिक देने होंगे। अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को पाँच करोड़ के स्थान पर सात करोड़ पाँच लाख रुपए देने होंगे।

असाध्य स्थिति

जहाँ तक निर्यात में वृद्धि का प्रश्न है, गत तीन योजनाओं का अनुभव यह है कि सन् 1965-66 में परंपरागत निर्यातित वस्तुओं से प्राप्त निर्यात शुल्क में ह्रास ही हुआ है। सन् 1964-65 में यह निर्यात शुल्क के रूप में दो करोड़ तैंतालीस लाख रुपए प्राप्त हुए थे वहाँ सन् 1965-66 में दो करोड़ चार लाख रुपए मात्र ही प्राप्त हुए। सन् 1964-65 में जहाँ चाय के निर्यात से चौरानबे लाख प्राप्त हुए, वहाँ सन् 1966-67 में बानबे लाख प्राप्त हुए। सन् 1964-65 में कृषि जूट आदि में जहाँ सत्तर लाख प्राप्त हुए। माइका से सन् 1964-65 में जहाँ पंद्रह लाख आय हुई, वहाँ सन् 1966-67 में केवल आठ लाख ही प्राप्त हुए। केवल जूट आदि के उत्पादन से आय में ही वृद्धि और शेष में हानि ही हुई है। इस प्रकार सन् 1965-66 में जहाँ निर्यात शुल्क से दो करोड़ चार लाख मिला, वहाँ सन् 1966-67 में केवल एक करोड़ छियानबे लाख की आय हुई।

स्पष्ट है कि भारत की आर्थिक अवस्था दिन-प्रतिदिन इतनी बिगड़ती जा रही है। सरकार की वर्तमान नीतियाँ उसे सुधार पाने में पूर्णतया असमर्थ हैं। बीस वर्षों की राजनीतिक आज़ादी के बाद आज भी देश आर्थिक दासता की राहों पर

भटक रहा है। फलस्वरूप हमारी राजनीतिक स्वतंत्रता पर भी संकट उपस्थित हो गया है। आज देश के सामने यह सवाल है कि वह विश्व के बाज़ार में अपनी गिरती साख को और गिराएगा ही, उठा नहीं सकता। देश क्या चाहता है, उसे इस बात का उत्तर देना होगा—कांग्रेस का समाजवादी प्रशासन अब किसी हालत में सुधार नहीं ला सकता।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 12, 1966 (दीपावली विशेषांक)



33

सरकार यह समझ ले कि काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती

दिल्ली हत्याकांड की न्यायिक जाँच हो

सात नवंबर को नई दिल्ली में गोहत्या बंदी की माँग के विराट् एवं शांतिपूर्ण प्रदर्शन के ऊपर पुलिस द्वारा गोलीकांड के साथ ही वहाँ एक अत्यंत ही कठोर पुलिस-राज्य का अध्याय प्रारंभ हो गया है।[1] प्रदर्शन की कार्रवाई जिस प्रकार चल रही थी, वह अत्यंत ही शांतिपूर्ण थी। तहाँ-वहाँ ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी, जिससे अश्रुगैस के प्रयोग अथवा गोलीबारी का औचित्य सिद्ध किया जा सके। पुलिस ने बिना किसी सूचना के एकाएक मंच पर अश्रुगैस का गोला फेंका तथा लाउडस्पीकर काट दिया। फलत: मंच अप्रभावी हो गया। अश्रुगैस और गोलीकांड के बाद जो आगजनी तथा

1. नई दिल्ली में हुए विशाल गो रक्षा आंदोलन की मूलभूत रूपरेखा अगस्त 1964 में वृंदावन में रा.स्व. संघ के सरसंघचालक श्रीगुरुजी के नेतृत्व में आयोजित अखिल भारतीय गोरक्षा सम्मेलन में तैयार की गई थी। इस सम्मेलन में सरकार को तत्काल गोरक्षा क़ानून बनाने की चेतावनी दी गई थी। सन् 1966 के प्रयाग माघ मेले में संतों ने जगद्गुरु शंकराचार्य निरंजन देवतीर्थ के नेतृत्व में गोरक्षा हेतु व्यापक आंदोलन छेड़ने की घोषणा की। तत्पश्चात् 7 नवंबर, 1966 को दिल्ली में संसद् भवन के समक्ष प्रदर्शन के लिए लगभग 10 लाख गोभक्त उमड़ पड़े। मंच पर स्वामी करपात्रीजी, जैन मुनि सुशील कुमार, स्वामी प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, हनुमान प्रसाद पोद्दार, महंत गुरुचरण दास, अटल बिहारी वाजपेयी, प्रकाशवीर शास्त्री, सेठ गोविंद दास, स्वामी रामेश्वरानंद जैसे देश के अनेक गण्यमान्य लोग उपस्थित थे। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने तत्कालीन गृह मंत्री गुलजारी लाल नंदा को सख्ती से निपटने का आदेश दिया, इसके बाद पुलिस ने गोभक्तों पर गोलियाँ चलाईं। इसमें सैकड़ों गोभक्त शहीद तथा हज़ारों सत्याग्रही घायल हुए थे। ज्ञात हो कि स्वतंत्रता पश्चात् गोरक्षा पर सर्वाधिक मुखर होनेवाले नेताओं में से एक श्रीगुरुजी ने राष्ट्रव्यापी हस्ताक्षर अभियान चलाकर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसादजी को तीन करोड़ हस्ताक्षरों का ज्ञापन सौंपा था।

निजी और सार्वजनिक संपत्ति नष्ट करने की घटनाएँ हुईं, वे निश्चित ही दुर्भाग्यपूर्ण एवं असंदिग्ध शब्दों में निंदनीय हैं। चाहिए तो यह था कि उन तत्त्वों का पता लगाया जाता, जिन्होंने वह शरारत की और उन्हें दंड दिया जाता। किंतु इसके विपरीत संपूर्ण स्थिति का लाभ गोहत्या बंदी के प्रश्न से जनता का ध्यान हटाने, अपनी आंतरिक गुटबंदी को मज़बूत करने, जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मत्थे दोष मढ़कर उन्हें बदनाम करने तथा एक आतंक का वातावरण पैदा करने के लिए किया जा रहा है। यह प्रवृत्ति अत्यंत ही निंदनीय है। देश में ऐसे तत्त्व हैं, जो समय पर योजनापूर्वक गड़बड़ करते हैं और साथ ही संघ और जनसंघ के विरुद्ध हो-हल्ला करने लगते हैं। जबलपुर, अलीगढ़ और उड़ीसा के सांप्रदायिक दंगों में यही चाल चली गई थी। किंतु बाद की घटनाओं ने यह साफ कर दिया कि संघ और जनसंघ का उसमें कोई हाथ नहीं था। इन मामलों में शासन ने सदैव तथ्यों को दबाया तथा एक भ्रमपूर्ण वातावरण पैदा किया। जबलपुर की न्यायिक जाँच की रिपोर्ट तो अभी तक प्रकाशित नहीं की गई। इस अवसर पर भी यही खेल खेला जा रहा है, किंतु मैं इतना ही बता देना चाहता हूँ कि काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती। लोग असलियत समझ गए हैं। भूतपूर्व गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नंदा के पत्र ने उनकी कलई खोल दी है।

सत्य पर परदा डालने की कोशिश

सत्य पर परदा डालने के लिए दिल्ली में अंधाधुंध गिरफ्तारियाँ की गई हैं। जनसंघ, हिंदू महासभा, रामराज्य परिषद्, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, महावीर दल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि अनेक संस्थाओं के पदाधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं को ज़ेल में डाल दिया गया है। पुलिस ने न तो उन्हें वारंट दिखाए और न किसी मजिस्ट्रेट के सामने ही पेश किया गया। उन्हें इतना ही पता चला है कि वे भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 और 151 के अंतर्गत बंदी बनाए गए हैं। उन सबको ज़ेल में सी वर्ग में रखा गया है। इनमें वकील, डॉक्टर, उद्योगपति, प्राध्यापक सभी हैं। भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री बलराज मधोक, राजराज्य परिषद् के मंत्री तथा भूतपूर्व संसद-सदस्य श्री नंदलाल शास्त्री, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांत संचालक तथा आल इंडिया मैन्यूफैक्चर्स एसोसिएशन के भूतपूर्व अध्यक्ष लाला हंसराज गुप्ता, मैट्रोपोलिटन काउंसिल के सदस्य श्री हरदयाल देवगुण तथा श्री मदनलाल खुराना, दिल्ली नगर निगम के सदस्य तथा जनसंघ दल के नेता श्री विजय कुमार मल्होत्रा, आर्यवीर दल के प्रधान श्री ओमप्रकाश त्यागी, दिल्ली

विश्वविद्यालय के क़ानून के प्राचार्य श्री प्रकाशदत्त भार्गव जैसे गण्यमान्य व्यक्तियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है। दिल्ली की ज़ेल में जहाँ एक हज़ार दो सौ व्यक्तियों की जगह है, दो हज़ार पाँच सौ से ऊपर व्यक्ति बंद हैं। सत्याग्रहियों के ज़ेल में पहुँचने के बाद अड़तालीस घंटे तक खाना न देने की शिकायत मिली है। महिला सत्याग्रहियों को सामान्य अपराधियों के साथ रखा गया है।

पुलिस गोलीकांड से जो लोग मरे, उनकी लाश मृतकों के संबंधियों को नहीं दी गई। बिना किसी धार्मिक विधि के पुलिस ने उन्हें जला दिया तथा उनकी अस्थियाँ भी परिवारवालों को नहीं दीं। जो संन्यासी मारे गए, उनको समाधि देने के स्थान पर उन्हें भी जला दिया गया।

दिल्ली शासन ने सभी प्रकार के प्रदर्शनों पर रोक लगा दी है। संसद् के समक्ष प्रदर्शन प्रजातंत्रीय अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। संसद् को यदि जनभावनाओं का ज्ञान न रहा तो केवल एक डिबेटिंग सोसाइटी रह जाएगी। शासन का यह निर्णय संसद् के कर्तव्य निर्वाह में बाधक तथा प्रजातंत्र के लिए घातक है। यदि कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई है तो उसकी पुनरावृत्ति अवश्य रोकनी चाहिए, किंतु उसके लिए जनता के मूलाधिकार को समाप्त करने का औचित्य किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जनता कांग्रेसी हथकंडों से सतर्क रहे

दिल्ली शासन ने सभाओं पर भी प्रतिबंध लगा दिया है। यहाँ तक कि दीपावली के दिन आर्य समाज के रामलीला मैदान में ऋषि निर्वाणोत्सव भी नहीं मानने दिया गया। यह सब इस बात का द्योतक है कि या तो प्रशासन के बुरी तरह हाथ-पैर फूल गए हैं या वह किसी कुत्सित इरादे से स्थिति की गंभीरता का वातावरण पैदा करना चाहता है। कांग्रेस के सत्तारूढ़ गुट के कुछ लोग चाहते हैं कि चुनावों को टाल दिया जाए। उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे आशंका है, वे स्वयं ही विभिन्न स्थानों पर हिंसा और गड़बड़ की योजना बनाकर गंभीर हालात पैदा करने की कोशिश कर सकते हैं। जनता को जागरूक रहना चाहिए, जिससे उनका यह प्रयत्न सफल न हो सके।

मेरी माँग है कि दिल्ली की घटनाओं की न्यायिक जाँच होनी चाहिए।

जहाँ तक गो हत्या बंदी का संबंध है, शासन ने उसका औचित्य स्वीकार किया

है। फिर भी वह इस दिशा में क़दम न उठाकर आज दमन का सहारा ले रहा है। अवश्य ही उसके मन में कोई पाप है। मैं सर्वदलीय गौरक्षा महा अभियान समिति का अभिनंदन करता हूँ कि वह शासन द्वारा साम-दाम-दंड-भेद सभी उपायों के अवलंबन किए जाने के बावजूद अपने निश्चय पर दृढ है। दिल्ली में सत्याग्रह बराबर चल रहा है तथा आगे और भी बढ़ेगा। शासन से मेरी अपील है कि वह गोभक्त जनता को दमन का शिकार बनाने के स्थान पर विवेक से काम ले तथा संविधान में संशोधन कर संपूर्ण देश में गोहत्या पर रोक लगावें।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 28, 1966



परिशिष्ट

जनसंघ के घोषणा-पत्र की मुख्य विशेषताएँ

प्रो. बलराज मधोक की अध्यक्षता में अक्तूबर 1, 2 और 3 को कलकत्ता में हुई बैठक में भारतीय जनसंघ की केंद्रीय कार्यसमिति ने 1967 के चुनावों के लिए पार्टी के घोषणा-पत्र के मसौदे को अंतिम रूप दिया। नवंबर 3, 4 और 5 को उसके नागपुर अधिवेशन में बी.जे.एस. की प्रतिनिधि सभा (सामान्य परिषद्) द्वारा मसौदे को अंततः अंगीकृत कर लिया गया। यहाँ मसौदे के महत्त्वपूर्ण अंश प्रस्तुत हैं—

स्वतंत्र भारत के राजनीतिक इतिहास में एक नए युग का अग्रदूत बनने को उत्सुक भारत के लोगों के लिए चौथे आम चुनावों ने एक महान् अवसर और एक चुनौती प्रस्तुत की। कांग्रेस पार्टी पिछले बीस वर्षों से सत्ता में है। इसने लोगों का विश्वास खो दिया है। यह अपने आत्म-सम्मान के अनुरूप कार्य और लोगों के प्रयासों का उपयोग जैसी देश की असली ताक़त को प्रकट करने में असमर्थ रही है। सरकार के हाव-भाव लोगों और जवानों के साहस व बलिदान को प्रतिबिंबित करने में नाकाम रहे हैं। इसने राष्ट्र की बुनियादी एकता और अखंडता के प्रति आँखें मूँदकर, लोगों की भावनाओं को नज़रअंदाज़ कर और जन कल्याण के प्रति संवेदनहीनता बरतकर धोखा दिया है। चौतरफ़ा आत्मनिर्भरता, समृद्धि और सम्मान प्राप्त करने की बजाय कांग्रेस के संरक्षण में देश राजनीतिक जी-हुजूरी, आर्थिक दिवालियापन और राष्ट्रीय अपमान के कगार पर आ गया है। स्वदेश, स्वधर्म और स्वतंत्रता के लिए राष्ट्र के सदियों पुराने संघर्ष को स्वराज के तहत इस प्रकार हताश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। लोग इस कांग्रेस सरकार को सहन नहीं कर सकते। इसे बदल देना है।

संकट की इस अवधि में देश जिस स्थिति से गुजर रहा है, उसमें लोग जनसंघ

की ओर ज़्यादा उम्मीद से देख रहे हैं। जनसंघ अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सजग है। यह इन दायित्वों का निर्वहन करने का संकल्प लेकर आम चुनाव में उतर रहा है।

मातृभूमि की अखंडता की रक्षा के प्रश्न पर अब तक भारतीय जनसंघ किसी भी 'वाद' से बँधा नहीं है, और लोगों को न्यूनतम ज़रूरतें मुहैया कराने के प्रति चिंतित है। ये 'वाद' न भूखों का पेट भर सकते हैं और न ही घुसपैठिए को खदेड़ सकते हैं। भारतीय जनसंघ राष्ट्र के हितों को मस्तिष्क में सबसे ऊपर रखते हुए व्यावहारिक तरीक़े से इन समस्याओं का समाधान करेगा।

रक्षा पर विशेष ध्यान

कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान, दोनों ने भारतीय भूमि के बड़े क्षेत्रों पर अवैध क़ब्ज़ा कर रखा है। कांग्रेस सरकार ने उन्हें मुक्त कराने की कभी परवाह नहीं की। इसके विपरीत, कोलंबो प्रस्तावों को स्वीकार कर इसने लद्दाख के चीनी क़ब्ज़े को बिना विरोध के स्वीकार कर लिया और ताशकंद घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर हमारे जवानों द्वारा बहादुरी से जीता गया इलाका पाकिस्तान के हवाले कर दिया। इन नीतियों ने इन दोनों शत्रुओं को अपनी स्थिति मज़बूत करने में समर्थ बना दिया। अब वे अगले आघात के लिए संयुक्त रूप से तैयारी कर रहे हैं। सरकार के इन फ़ैसलों को जनता से कभी साझा नहीं किया गया। उन्होंने प्रतिकार की एक साहसिक नीति की लगातार माँग की है।

16 अगस्त, 1965 को संसद् भवन के सामने बड़े पैमाने पर आयोजित विशाल प्रदर्शन में लोगों की इस माँग को सशक्त अभिव्यक्ति मिली। इसके तुरंत बाद लाहौर में वह ऐतिहासिक मार्च, जिसने राष्ट्र को गहराई तक हिला दिया और परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में अभूतपूर्व, संयुक्त राष्ट्रीय प्रयास में एकाएक वृद्धि हुई। एक संक्षिप्त अवधि के लिए, सरकार राष्ट्र की इच्छाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करती दिखी। राष्ट्र का मनोबल उड़ान भरने लगा और लोगों ने विश्वास और संतृप्ति की एक नई भावना का अनुभव किया। लेकिन दुर्भाग्य से, यह स्थिति लंबे समय तक जारी नहीं रही। सरकार ने अंतरराष्ट्रीय दबाव के आगे घुटने टेक दिए। भारतीय जनसंघ लोगों की भावनाओं और सरकार की नीतियों के बीच इस खाई को पाटने और गँवाए क्षेत्रों को पुनः हासिल करने के लिए सभी आवश्यक क़दम उठाएगा।

कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान द्वारा जारी आक्रामकता तथा उनकी भविष्य के मंसूबे को समझते हुए देश की रक्षा और विदेश नीतियों में परिवर्तित करने की ज़रूरत है।

देश की रक्षा क्षमता में वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित क़दम उठाए जाएँगे :

(क) सेना, नौसेना और वायु सेना की ताक़त में वृद्धि; उन्हें अत्याधुनिक हथियारों से लैस करना; सैन्य एवं नागरिक खुफिया की विभिन्न शाखाओं की दक्षता में सुधार, और इनके बीच बेहतर समन्वय सुनिश्चित करना।

(ख) विशाल प्रादेशिक सेना का गठन।

(ग) सभी कॉलेजों में दो साल के लिए गहन सैन्य प्रशिक्षण।

(घ) हथियारों में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए रक्षा उद्योगों का विकास।

(च) परमाणु हथियारों और मिसाइलों का निर्माण।

(छ) एक स्थायी नागरिक सुरक्षा संगठन का निर्माण।

(ज) सीमावर्ती क्षेत्रों में जनसंख्या की बसावट, विकास और प्रशासन के लिए विशेष योजनाएँ और सुविधाएँ।

चाहिए : एक स्वतंत्र विदेश नीति

गुटनिरपेक्षता की नीति दो शक्ति केंद्रों के बीच शीतयुद्ध की पृष्ठभूमि के ख़िलाफ़ तैयार की गई थी। गुटनिरपेक्ष न तो हमारी धार्मिक मान्यताओं और न ही हमारी विदेश नीति का एक स्थायी आधार हो सकता है। आज जब हम आक्रामक हैं, हमारे पास मित्र राष्ट्र होने चाहिए।

राष्ट्र के हितों और अखंडता की रक्षा के मद्देनज़र भारतीय जनसंघ एक स्वतंत्र विदेश नीति का पालन करेगा और दो शक्ति केंद्रों के प्रति उनकी निष्ठा की परवाह किए बग़ैर देशों के साथ आदान-प्रदान और हितों की पारस्परिकता के आधार पर द्विपक्षीय गठबंधन करेगा। जनसंघ ताशकंद घोषणा-पत्र और कोलंबो प्रस्तावों के बारे में इस अनावश्यक बकबक को रोक देगा। यह कम्युनिस्ट चीन या पाकिस्तान से तब तक बात नहीं करेगा, जब तक कि वे क़ब्ज़ा ख़ाली करने पर सहमत नहीं हो जाते, क्योंकि कम्युनिस्ट चीन का क़ब्ज़ा जारी है। भारतीय जनसंघ संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश का विरोध करेगा। भारतीय जनसंघ ताइवान की सरकार को मान्यता देने के साथ भारत की क्षेत्रीय सीमाओं के रूप में

उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेगा। जनसंघ तिब्बत और शिनकियांग के स्वतंत्र राज्यों को मान्यता देता है। यह दलाई लामा की प्रवासी सरकार को मान्यता देगा।

भारत का पाकिस्तान के लोगों के साथ कोई झगड़ा नहीं है। जनसंघ पाकिस्तानी लोगों के सभी आंदोलनों के साथ सहानुभूति रखता है, जो तानाशाही का अंत करने और स्वतंत्रता के लिए आयोजित किए जा रहे हैं।

भारतीय जनसंघ का भारत और पाकिस्तान के मौलिक एकीकरण में विश्वास है। यह दो राष्ट्रों को क़रीब लाने के किसी भी क़दम का स्वागत करेगा, यह प्रस्ताव किसी भी तीसरी शक्ति से प्रेरित नहीं है।

प्रवासी भारतीयों के हितों की सुरक्षा

जनसंघ इज़रायल के साथ संपूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित करेगा।

दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका के देशों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने के लिए विशेष क़दम उठाए जाएँगे।

जनसंघ रंगभेद और रोडेशिया की अवैध श्वेत सरकार के विरुद्ध अफ्रीकियों और लोगों के संघर्ष को पूरा समर्थन देगा।

भारत की स्थिति और महत्त्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि उसे सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य होना चाहिए। भारतीय जनसंघ संयुक्त राष्ट्र के संविधान में इस आशय का संशोधन कराने की कोशिश करेगा।

भारतीय जनसंघ यह समझता है कि विदेश में रहनेवाले भारतीयों के हितों की रक्षा करना भारत सरकार की ज़िम्मेदारी है।

जनसंघ विशेष रूप से मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, फिजी और त्रिनिदाद जैसे देशों के साथ घनिष्ठ संबंधों को विकसित करने की कोशिश करेगा, जहाँ बड़ी संख्या में भारतीय बसे हैं।

जनसंघ उन भारतीयों को पूरा मुआवजा दिलाने की कोशिश करेगा, जिनकी संपत्ति बर्मा और तंजानिया की सरकार द्वारा जब्त कर ली गई है। सीलोन में नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने में भारतीय मूल के लोगों की मदद के साथ भारतीय जनसंघ इस संबंध में भारत-सीलोन समझौते में सुधार लाने और इसके क्रियान्वयन को सुरक्षित करने की कोशिश करेगा।

भारत को एकात्मक राज्य घोषित किया जाएगा

देश में ऐसी शक्तियाँ हैं, जो शत्रुओं के पंचभांगी के रूप में काम कर रही हैं और भारत की अखंडता एवं संप्रभुता को धमका रही हैं। उन्हें दृढता के साथ दबा देना चाहिए। भारतीय जनसंघ राजद्रोह का क़ानून बनाएगा और इस क़ानून के प्रावधानों के तहत इन राष्ट्र विरोधी तत्त्वों से निबटेगा।

राष्ट्रीय एकता की भावना को मज़बूत करने के लिए सकारात्मक क़दम उठाए जाएँगे। वर्तमान संविधान देश की बुनियादी एकता को प्रकट नहीं करता। जनसंघ इसे संशोधित करेगा और भारत को एक एकात्मक राज्य घोषित करेगा।

एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग गठित किया जाएगा, जो एक प्रांत एवं दूसरे प्रांत तथा केंद्र के बीच सभी विवादों की जाँच और मध्यस्थता करेगा। इसके फ़ैसले बाध्यकारी होंगे।

जम्मू-कश्मीर राज्य को अन्य प्रांतों के साथ बराबरी पर लाने के उद्देश्य से और संविधान के तहत इसके निवासियों को सभी अधिकार और विशेषाधिकार देने के लिए जनसंघ अनुच्छेद 370 को हटाएगा।

आसपास के प्रांतों में पुर्तगालियों और फ्रांसीसिओं से मुक्त प्रदेशों को पड़ोसी प्रदेशों में शामिल करने के लिए जनसंघ राज्यों के पुनर्गठन के लिए स्वीकृत मानदंड के अनुसार क़दम उठाएगा।

देश का पूर्वी सीमांत क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से पुनर्गठित किया जाएगा।

पूर्व मंत्रियों की संपत्ति भी जाँच के दायरे में

भारतीय जनसंघ उच्चतम स्तर पर भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग गठित करेगा। जन प्रतिनिधियों के लिए एक आचार संहिता तैयार की जाएगी और राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार को दंडित करने के लिए एक विशेष क़ानून लाया जाएगा।

भारतीय जनसंघ द्वारा पूर्व मंत्रियों और अन्य उच्च अधिकारियों की संपत्ति के संबंध में जाँच शुरू करवाई जाएगी। भविष्य में भी सभी मंत्रियों और उच्चपदस्थ अधिकारियों को ऐसी जाँच के अधीन लाया जाएगा।

केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय निकायों के कर्मचारियों के लिए वेतनमान और परिलब्धियाँ एक समान होंगी। जनसंघ महँगाई के शत-प्रतिशत निष्प्रभावीकरण के सिद्धांतों को मानता है।

व्हाइटली काउंसिल जैसा ढाँचा

बड़ी संख्या में ऐसे कर्मचारी हैं, जो वर्षों से सेवा में हैं, लेकिन अभी भी उनके साथ अस्थायी जैसा बरताव किया जाता है। जनसंघ उन्हें स्थायी कर देगा। यह अनौपचारिक श्रमिक की परिलब्धियों और विशेष लाभ में उतनी ही वृद्धि करेगा, जितनी इसी श्रेणी के अन्य लोगों की है।

सरकार आवास, चिकित्सा उपचार और अपने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के संबंध में पूरी ज़िम्मेदारी स्वीकार करेगी।

सरकारी कर्मचारियों की शिकायतों का निराकरण करने के लिए, बिना किसी देरी के ब्रिटिश व्हाइटली काउंसिलों की तर्ज पर प्रभावी और पूर्ण प्रतिनिधि वार्त्ता का ढाँचा बनाया जाएगा।

जनसंघ पेंशनरों के कल्याण पर विशेष ध्यान देगा और जीवनयापन की लागत में तेज उछाल के मद्देनज़र उनकी परिलब्धियाँ आदि को संशोधित करेगा।

आपातकाल समाप्त किया जाए

भारतीय जनसंघ आपात स्थिति ख़त्म करेगा। डिफेंस ऑफ़ इंडिया रूल्स को निरस्त किया जाएगा।

भारतीय जनसंघ नागरिकों के लड़ाई लड़ने को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कर्मचारियों को राजनीति में हिस्सा लेने के लिए स्वतंत्रता होगी।

भारतीय जनसंघ वास्तविक और प्रभावी ढंग से राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण करेगा। स्थानीय निकायों और ज़िला परिषदों को संविधान से अपनी शक्तियाँ प्राप्त होंगी। राजस्व के उनके स्रोतों को संवर्धित किया जाएगा।

उच्चतर माध्यमिक स्तर तक मुफ्त शिक्षा

संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत 1961 तक 11 साल की उम्र तक के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से मुफ्त शिक्षा प्रदान की जानी थी। यह लक्ष्य हासिल नहीं किया गया। भारतीय जनसंघ अगले पाँच साल के भीतर इस निर्देश को लागू करने का प्रयास करेगा। साथ ही, आगे चलकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा को मुफ्त बनाने का भी प्रयास करेगा।

जनसंघ सरकार और निजी संस्थानों में एक समान वेतनमान लागू करेगा।

प्राथमिक शिक्षकों की हालत शोचनीय है। जनसंघ उनकी सेवा-शर्तों में सुधार करेगा और न्यूनतम वेतन के रूप में 150 रुपए प्रतिमाह तय करेगा।

क्षेत्रीय भाषाएँ उच्चतम वर्ग तक शिक्षा का माध्यम होंगी। हिंदी माध्यम के संस्थान देश के सभी भागों में स्थापित किए जाएँगे।

उच्चतर माध्यमिक स्तर तक, त्रिभाषा सूत्र मातृभाषा में शामिल होंगे, हिंदी और संस्कृत के साथ एक आधुनिक भारतीय भाषा उनके लिए नियत की जाएगी, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। विदेशी भाषाओं का अध्ययन वैकल्पिक हो जाएगा।

पाठ्य-पुस्तकों को सभी भारतीय भाषाओं में तैयार करने की व्यवस्था की जाएगी।

जनसंघ पब्लिक स्कूलों और अन्य संस्थानों के बीच मौजूद असमानता को दूर करने के लिए क़दम उठाएगा।

अंग्रेज़ी की ग़ुलामी समाप्त होगी

कांग्रेस सरकारों ने संविधान के भाषा प्रावधानों को पूरी तरह से भुला दिया है। उन्होंने लोगों पर अंग्रेज़ी थोप दी है। भारतीय जनसंघ राष्ट्र को अंग्रेज़ी भाषा के बंधन से मुक्त करेगा।

इसकी भाषा नीति इस प्रकार होगी :

(1) प्रांतीय भाषा को सरकारी भाषा बनाने के लिए प्रांतीय स्तर पर तत्काल क़दम उठाए जाएँगे।

(2) केंद्र के उन विभागों में, जो सीधे जनता के संपर्क में आते हैं, हिंदी और प्रांतीय भाषाओं का इस्तेमाल किया जाएगा।

(3) हिंदी को केंद्रीय स्तर पर लागू किया जाएगा। हालाँकि उन कर्मचारियों को दस साल के लिए अंग्रेज़ी का उपयोग करने का विकल्प दिया जाएगा, जो हिंदी सीखने में सक्षम नहीं हैं।

(4) संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाएँ सभी क्षेत्रीय भाषाओं में आयोजित की जाएँगी।

(5) संस्कृत का इस्तेमाल विशेष महत्त्व के अवसरों पर किया जाएगा।

निषेध पर एक समान नीति

भारतीय जनसंघ मद्यपान को एक सामाजिक बुराई मानता है, जिसको गंभीरता से क़ाबू में करने की ज़रूरत है। हालाँकि, कांग्रेस सरकार की निषेध नीति बुरी तरह विफल रही है। इसके बजाय इसने शराब की तस्करी को और अधिक प्रेरित किया है। जनसंघ इस नीति को बदलेगा। यह पूरे देश के लिए एक समान नीति तैयार करेगा और इसे साथ-साथ लागू करेगा। यह शराब से परहेज करने के लिए सुधार आंदोलनों पर ज़ोर देगा।

आयुर्वेद, चिकित्सा की हमारी राष्ट्रीय प्रणाली

चिकित्सा के क्षेत्र में भारतीय जनसंघ किसी विशेष व्यवस्था के लिए बाध्य नहीं है। वह सब व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करेगा। हालाँकि, आयुर्वेद को चिकित्सा की राष्ट्रीय प्रणाली का दर्ज़ा प्रदान किया जाएगा और उसी रूप में विकसित किया जाएगा। भारतीय जनसंघ सभी दवाओं के निर्माण में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए क़दम उठाएगा। इसके लिए पेटेंट क़ानून में संशोधन किया जाएगा।

(जारी)

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 16, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



भारतीय जनसंघ के घोषणा-पत्र की मुख्य बातें (2)

स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार की मुख्य चिंता देश का आर्थिक विकास रही है और उसकी पूरी ऊर्जा इसी पर केंद्रित रही है। उत्तरोत्तर योजनाएँ इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बनाई गईं। परंतु आज हमारे पास न तो स्व-उत्पादक अर्थव्यस्था है, जिसकी कल्पना की गई थी और न ही जनता का जीवन-स्तर ऊपर उठा है, जिसका वादा किया गया था। योजनाकारों ने रक्षा आवश्यकताओं पर कभी भी विचार नहीं किया और यह कोई चमत्कार नहीं है कि इस संदर्भ में हम स्वयं को घनघोर अक्षम पाते हैं। इतनी सारी योजनाएँ बनीं, पर अधिकतर आम जनता की दशा पहले से भी खराब है। मध्यम वर्ग पूरी तरह से तबाह हो चुका है। आय की असमानता बढ़ रही है और अर्थव्यवस्था उपभोक्ता माल व उत्पादन की कमी के संकट से जूझ रही है। महँगाई आसमान छू रही है और प्रत्येक योजना के साथ बेरोजगारी बढ़ती गई है।

इन योजनाओं ने विदेशों पर हमारी निर्भरता इतनी बढ़ा दी है कि इन पर अमल के लिए विदेश से ऋण और तमाम तरह के माल के आयात की बाध्यता हो गई है। पी.एल. 480 गेहूँ इस सरकार की खाद्य नीति का मुख्य अवलंब हो गया है। यदि कलपुर्जों और औद्योगिक कच्चे माल का आयात नहीं किया गया तो औद्योगिक उत्पादन गिर जाएगा। विस्तार योजनाएँ निरपवाद रूप से विदेश से मिलनेवाली पूँजीगत सहायता और तकनीकी कार्य ज्ञान के आधार पर बनाई जाती हैं। विदेशी सहायता पर अति निर्भरता के कारण ही सरकार को रुपए के अवमूल्यन के लिए बाध्य होना पड़ा। साथ ही हम पर अपनी आर्थिक व राजनीतिक नीतियों में परिवर्तन का भी दबाव है। योजना के तहत जो प्राथमिकताएँ और रणनीतियाँ निर्धारित की गई हैं,

उनसे जनता पर नौकरशाही का शिकंजा और कसता गया है।

समाज के सभी लोग—उद्योगपति, व्यापारी, किसान, मज़दूर और उपभोक्ता, सभी नियमों व नियंत्रण के चक्रव्यूह में जकड़े हुए हैं। उन्हें स्वतंत्रता से साँस लेने और राष्ट्र की समृद्धि में अपना थोड़ा सा योगदान देने की भी अनुमति नहीं है। सरकार के दिनोदिन बढ़ते ख़र्च को पूरा करने के लिए असहनीय करों का बोझ लादा जा रहा है और अकल्पनीय स्तर पर घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जा रहा है। इसका परिणाम है कि रुपए की क्रयशक्ति गिरकर धरातल पर पहुँच गई है।

अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन

भारतीय जनसंघ प्रारंभ से ही इन ग़लत आर्थिक नीतियों और इनके बुरे परिणामों के प्रति सरकार और जनता का ध्यान आकृष्ट करता रहा है। अब जबकि इनके भयावह परिणामों ने हमारी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की नींव हिला दी है तो हमने आशा की थी कि हमारे योजनाकार पिछली गलतियों से कुछ सीख लेंगे और चौथी योजना के आकार, स्वरूप और रणनीतियों में कुछ सुधार करेंगे। हमें अपेक्षा थी कि अर्थव्यवस्था में संतुलन की बहाली के लिए कुछ क़दम उठाए जाएँगे। परंतु अब हमारा यह भ्रम दूर हो चुका है। संभवत: वे कुछ नया सोचने की क्षमता भी खो चुके हैं।

भारतीय जनसंघ देश की आर्थिक नीतियों में क्रांतिकारी बदलाव लाएगा। एक तरफ़ हम जहाँ गहराते खाद्य और विदेशी विनिमय संकट तथा बढ़ते दामों पर तुरंत अंकुश लगाने के लिए अल्पकालीन उपाय करेंगे तो दूसरी तरफ़ एक समृद्ध, आत्मनिर्भर और समतामूलक अर्थव्यवस्था के निर्माण की नींव रखने के लिए एक दीर्घकालिक योजना बनाएँगे।

भारतीय जनसंघ एक नई योजना का निर्माण करेगा। यह पाँच साल की नहीं बल्कि इससे अधिक अवधि के लिए होगी। यह योजना सिर्फ़ समष्टि आर्थिक दिशानिर्देश तय करेगी और सूक्ष्म आर्थिक नीतियाँ बनाने का दायित्व इसको क्रियान्वित करनेवालों पर छोड़ दिया जाएगा। जहाँ तक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रश्न है तो इसके लिए प्रत्येक मंत्रालय में एक योजना प्रकोष्ठ गठित किया जाएगा, जो प्रत्येक परियोजना का विस्तृत खाका तैयार करेगा। ज़मीनी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए संसाधन जुटाने के बारे में निर्णय प्राथमिक रूप से मंत्रिमंडल ही करेगा।

वर्तमान योजना आयोग के स्थान पर विशेषज्ञों की छोटी सी समिति या आयोग

की प्रतिस्थापना की जाएगी, जो योजना का दृष्टिपत्र तैयार करेगा एवं समय-समय पर सरकारों, योजना प्रकोष्ठों व जनता को अर्थव्यवस्था के समग्र रुझानों से अवगत कराएगा।

खाद्य संकट में सुधार के लिए 12 सूत्रीय योजना

खाद्यान्नों की कमी, जनता की क्रयशक्ति में गिरावट और वितरण की उचित व्यवस्था नहीं होना वर्तमान खाद्य संकट के लिए उत्तरदायी है। कांग्रेस ने जो क़दम उठाए हैं, उससे यह समस्या और जटिल हो गई है। भारतीय जनसंघ निम्नवत् क़दम उठाएगा :

1. खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया जाएगा। उन्हें रियायती दरों पर खाद, बीज, बैल व अन्य सामग्रियाँ उपलब्ध कराई जाएँगी। भू-राजस्व व खाद्य फ़सलों पर सिंचाई कर घटाए जाएँगे।

2. खाद्य फ़सलों के लिए लाभकारी और प्रोत्साहन मूल्य सुनिश्चित किए जाएँगे। लेवी (वसूली) प्रणाली एवं एकाधिकारी क्रय व्यवस्था को समाप्त किया जाएगा।

3. खाद्य निगम सभी प्रदेशों में अपनी शाखाएँ खोलेगा। यह प्रतिस्पर्धी व्यापारी की तरह काम करेगा, ताकि प्रचलित बाज़ार मूल्य के आधार पर ख़रीद हो सके। तथापि जब मूल्य गिर रहे हों तो यह पूर्व घोषित समर्थन मूल्य के आधार पर सभी खाद्यान्नों का क्रय करेगा।

4. खाद्य निगम उत्पादकों से अनुबंध करेगा और उन्हें अग्रिम धनराशि देगा। इस प्रकार ऋण, उत्पादन से संबद्ध हो जाएगा।

5. विपणन या बहु-उद्देश्यीय सहकारी संस्थाएँ, जिनका भी अस्तित्व हो, खाद्य निगम के एजेंट की तरह कार्य करेंगी।

6. खाद्यान्न जोनों को समाप्त किया जाएगा और खाद्यान्नों की आवाजाही पर सभी प्रतिबंध हटा लिए जाएँगे।

7. खाद्यान्न वितरण केंद्र का विषय होगा। प्रांतों को सिर्फ़ खाद्य उत्पादन में बढ़ोतरी करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा।

8. अमरीका से गेहूँ का आयात अगले पाँच साल में पूरी तरह रोक दिया जाएगा। चावल की आपूर्ति के लिए बर्मा व अन्य दक्षिण एशियाई देशों से व्यापार समझौते किए जाएँगे।

9. बड़े शहरों और घोर किल्लत से जूझ रहे क्षेत्रों की घेराबंदी की जाएगी। राशन वितरण का कार्य शुरू किया जाएगा। राशन की मात्रा प्रतिव्यक्ति के लिए प्रतिदिन 16 आउंस से कम किसी भी स्थिति में नहीं होगी।

10. सभी क्षेत्रों में उचित मूल्य वाली दुकानें खोली जाएँगी। इन दुकानों से सिर्फ़ निम्न आय वर्ग वाले लोगों को ही खाद्यान्न क्रय करने की अनुमति होगी।

11. सरकारी कर्मियों व संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को महँगाई भत्ते का एक अंश नगद के बजाय वस्तु में दिया जाएगा।

12. खाद्य सामग्रियों पर से बिक्री कर व अन्य कर समाप्त कर दिए जाएँगे।

किसानों के लिए काश्तकारी का स्थायित्व

भारतीय जनसंघ कृषि को पहली प्राथमिकता देगा। कांग्रेस ने अपने कृषि कार्यक्रम को सिर्फ़ बड़े बाँधों व भूमि सुधार तक सीमित रखा, जिस पर अभी अमल बाक़ी है। सघन खेती जो भारत में कृषि के विकास का मुख्य स्तंभ है, उसकी पूरी तरह से उपेक्षा की गई है। परिणाम यह है कि कृषि पैदावार में बहुत मामूली बढ़ोतरी हुई है।

जनसंघ बिचौलियों की समाप्ति से जुड़े भूमि सुधारों की लगातार वकालत करता रहा है। परंतु सामूहिक खेती और सहकारिता के नारों के साथ भूमि सुधार क़ानूनों की जो अंतहीन श्रृंखला चल रही है, उससे किसानों के मन में भू-कर अधिकारों को लेकर अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

जनसंघ का विश्वास कृषक स्वामित्व में है। इसके लिए यह क़ानूनों में सुधार व उन पर अमल करेगा और कृषकों को काश्तकारी का अधिकार सुनिश्चित करेगा। सभी तरह की बेदखली बंद होगी। चकबंदी के समेकन में सुधार किया जाएगा, ताकि भ्रष्टाचार एवं भेदभाव को समाप्त किया जा सके। सरकारी भूमि के पट्टेदारों को खेती के लिए स्थायी काश्तकारी अधिकार बाँटे जाएँगे।

सिंचाई के लिए मास्टर प्लान (मुख्य योजना)

भारतीय जनसंघ एक मास्टर प्लान बनाएगा, ताकि प्रत्येक खेत की सिंचाई सुनिश्चित की जा सके। भूमिगत जल के सर्वेक्षण के आधार पर सिंचाई के विभिन्न साधनों का इस्तेमाल किया जाएगा। वर्तमान समय में जारी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को शीघ्रता से पूरा किया जाएगा। उन इलाकों में जहाँ मौजूदा नहरें सिंचाई

आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहीं, वहाँ पूरक परियोजनाएँ शुरू की जाएँगी।

नलकूपों, नहरों, टंकियों और अन्य छोटे सिंचाई साधनों के व्यापक पैमाने पर निर्माण कार्य हाथ में लिया जाएगा। नलकूपों से सिंचाई की दरों को नहरी पानी की दरों के बराबर लाया जाएगा। निजी नलकूपों को अन्य किसानों को पानी बेचने की अनुमति दी जाएगी। सिंचाई के प्रयोजन से किसानों को थोक भाव में विद्युत् आपूर्ति की जाएगी।

प्रत्येक किसान को जैविक खाद तैयार करने को प्रोत्साहित किया जाएगा। प्रत्येक प्रखंड में मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ होंगी, जो मुफ्त में मिट्टी की जाँच करेंगी। मृदा की अनुकूलता के हिसाब से किसानों को खाद व बीज की आपूर्ति की जाएगी।

गोरक्षा सुनिश्चित करने के लिए करेंगे संविधान में संशोधन

गाय हमारे सम्मान का राष्ट्रीय बिंदु है। यह भारतीय कृषि का आधार भी है। भारतीय जनसंघ संविधान में संशोधन करेगा और गाय एवं गोवंश के वध को वैधानिक रूप से प्रतिबंधित करेगा। मवेशियों की नस्ल का उन्नयन किया जाएगा। गोसदनों की श्रृंखला स्थापित की जाएगी, जहाँ वृद्ध एवं आर्थिक रूप से अनुपयोगी हो चले पशुओं को रखा जाएगा। प्रत्येक गाँव को चारागाह उपलब्ध कराया जाएगा, गोशालाओं में सुधार किया जाएगा और दुग्धशालाएँ स्थापित की जाएँगी।

देश में सिर्फ़ 20 प्रतिशत भाग ही वनाच्छादित है, जो कि एक अत्यंत ख़तरनाक स्थिति है। इसे बढ़ाकर 33 प्रतिशत के अनिवार्य स्तर तक पहुँचाने के लिए वन नीति प्रारंभ की जाएगी। यह 'वन महोत्सव' को वास्तविकता बनाएगा, न कि वार्षिक प्रहसन। वनों के ठेके वनवासियों को दिए जाएँगे। वन उत्पादों के संग्रहण में वनवासियों का अधिकार सुरक्षित किया जाएगा। जहाँ 'तेंदू पत्ते' का राष्ट्रीयकरण हो गया है, वहाँ इसके अधिकार वनवासियों की सहकारिताओं को सौंपे जाएँगे।

भारतीय जनसंघ अपनी स्थापना के दिन से ही स्वदेशी और आत्मनिर्भरता पर ज़ोर देता रहा है। जब पाकिस्तान के साथ हमारे युद्ध के कारण हमें मिलनेवाली विदेशी सहायता बंद हो गई और इसके परिणास्वरूप उत्पादन में गिरावट आ गई, तब सरकार ने भी इस पर विचार किया। तब आयात पर निर्भरता घटाने के लिए कुछ कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। परंतु अवमूल्यन के पश्चात् विदेशी सहायता का पुनरारंभ होने से यह नीति भी परिवर्तित हो गई है। बेधड़क और बिना विचारे अपनाई गई इस

उदार आयात नीति ने हमारे कार्यक्रमों का बहुत अनिष्ट किया है।

स्वदेशी के लिए एक पुकार

भारतीय जनसंघ मानता है कि आयात के उदारीकरण के बजाय इसका सुसंगतीकरण होना चाहिए। 'स्वदेशी' अपनाए बिना हम विदेशी मुद्रा संकट से छुटकारा नहीं पा सकते।

औद्योगीकरण को गति देने एवं विदेशी विनिमय को संरक्षित रखने के उद्देश्य से जनसंघ उन सभी औद्योगिक इकाइयों को लाइसेंस मुक्त कर देगा, जो पूरी तरह आंतरिक संसाधनों से स्थापित की जा सकती हैं। विदेशी मुद्रा की आवश्यकता वाले उद्योगों को तब तक विस्तार की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि वे अपनी वर्तमान क्षमता का पूरा दोहन नहीं कर लेते।

घरेलू उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए क़दम, विदेशी मुद्रा का संरक्षण

प्रत्येक उद्योग एवं प्रत्येक इकाई के लिए आयात प्रतिस्थापना का कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और इस पर समयबद्ध तरीक़े से अमल किया जाएगा।

साम्यवादी देशों के अपवाद को छोड़कर आयात और निर्यात का व्यापार निजी हाथों में दिया जाएगा।

निर्यात नीति का खाका बनाते समय आंतरिक आवश्यकताओं और मूल्य ढाँचे को ध्यान में रखा जाएगा।

जनसंघ विदेशी व्यापार बीमा का राष्ट्रीयकरण करेगा।

पेटेंट क़ानून में संशोधन होगा।

भारतीय जनसंघ विदेशी पूँजी के उपयोग को कम करेगा। सिर्फ़ प्राथमिकता वाले कुछ उद्योगों में ही गठजोड़ की अनुमति होगी। विदेशी पूँजी को बहुमत शेयर रखने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

भारतीय जनसंघ धीरे-धीरे खदानों, जूट, तंबाकू, काफ़ी, चाय, रबड़, दियासलाई, साबुन और सब्जी उत्पादों तथा इस तरह के अन्य उत्पादों का भारतीयकरण (देशीकरण) करेगा, जो मुख्य रूप से विदेशी हाथों में हैं।

भारतीय जनसंघ पेटेंट क़ानून में भी संशोधन करेगा।

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार नहीं बल्कि समेकन

भारतीय जनसंघ मिश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास रखता है। निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र को लेकर वर्तमान में जो विवाद चल रहा है, वह खेदजनक और निरर्थक है। सत्य तो यह है कि उद्यम के लिए अवसर इतने वृहद हैं कि दोनों की ही ऊर्जा आवश्यकता से कम पड़ जाएगी। भारतीय जनसंघ का दृष्टिकोण यह है कि एक उद्योग विशेष के विकास का उत्तरदायित्व सौंपते समय काग़ज़ी समाजवादी सिद्धांतों के बजाय इसके गुण–दोष से निर्देशित होना चाहिए।

पिछली तीन योजनाओं के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र का इतना विस्तार हो चुका है कि अब इसके सुदृढीकरण की आवश्यकता है। रक्षा उद्योग, खनिज तेल और विद्युत् जैसे चंद अपवादों को छोड़कर सरकार को आगामी कुछ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार का कोई काम अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए।

भारतीय जनसंघ वर्तमान में चल रहे निजी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं है। यदि इसकी आवश्यकता पड़ भी जाए तो इसका निर्णय राजनीतिक आधार पर लेने के बजाय इसी उद्देश्य के लिए गठित एक न्यायिक आयोग की सिफारिशों के आधार पर लेना चाहिए।

अधिकतम उपभोजित आय 2000 रुपए प्रति माह होगी

भारतीय जनसंघ पूँजी निर्माण को हर तरह का प्रोत्साहन देगा। सादगी व बचत की आदत डालने के लिए और पूँजी निर्माण को बढ़ावा देने के लिए अधिकतम व्यययोग्य आय की सीमा 2000 रुपए प्रतिमाह तक सीमित होगी।

भारतीय जनसंघ सरकारी और निजी बैंकिंग संस्थाओं के विस्तार के लिए एक निश्चित कार्यक्रम बनाएगा। जनसंघ का विचार है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव अर्थव्यवस्था, जमाकर्ताओं और बैंक कर्मचारियों, सभी के लिए अहितकर होगा। निदेशक मंडलों में जमाकर्ताओं व बैंक कर्मियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए जनसंघ बैंकिंग व कंपनी अधिनियम में संशोधन करेगा।

पिछले 15 साल के दौरान राजकोषीय ढाँचे के उचित विश्लेषण के बिना ही विभिन्न विभागों ने नाना प्रकार के कर थोपे हैं। विभिन्न सरकारों ने विभिन्न प्रकार के ऐसे कर लगाए हैं, जिनका बोझ उसी एक विशेष उत्पाद या एक वर्ग विशेष की जनता पर ही पड़ता है। इसका पूँजी निर्माण व मूल्य, दोनों पर ही विपरीत असर पड़ता है। जनसंघ एक कराधान जाँच आयोग का गठन करेगा, जो वर्तमान करों एवं

राज्यों की आवश्यकताओं, आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए एक एकीकृत राजकोषीय ढाँचे पर सुझाव व सिफारिशें देगा।

राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन की गारंटी

भारतीय जनसंघ कृषि उत्पादों व विनिर्मित माल, लाभ व ब्याज, वेतन एवं मेहनताने के परस्पर संबंध को ध्यान में रखते हुए एक मूल्य नीति निर्धारित करेगा। जनसंघ सीधे नियंत्रण के विरोध में है। यह मौद्रिक व राजकोषीय क़दमों के जरिए मूल्य नीति का नियमन करेगा।

बढ़ती महँगाई पर क़ाबू पाने और अर्थव्यवस्था पर इसके दुष्प्रभावों को रोकने के लिए यह अनिवार्य है कि सरकार अपने ख़र्चे घटाए और उपभोक्ता माल की आपूर्ति बढ़ाए। जनसंघ इस दिशा में कार्य करेगा।

जनसंघ प्रत्येक परिवार को एक न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देता है। वर्तमान स्थितियों में न्यूनतम वेतन 125 रुपए प्रतिमाह निर्धारित किया जाएगा।

सरकारी उपक्रमों पर लागू होंगे सभी श्रम क़ानून

भारतीय जनसंघ श्रमिकों को लाभ व प्रबंधन में सहभागी बनाना चाहता है। इस संबंध में यह बड़ी औद्योगिक इकाइयों के लिए एक कार्यक्रम तैयार करेगा और उसका कड़ाई से क्रियान्वयन करेगा। इस संबंध में सार्वजनिक उपक्रमों को अगुवा बनाया जाएगा।

भारतीय जनसंघ एक स्थायी वेतन आयोग की स्थापना करेगा, जो समय-समय पर विभिन्न उद्योगों के लिए मेहनताने की दर निर्धारित करेगा। जब तक राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित वेतन और वास्तविक वेतन के बीच अंतर बना रहेगा, तब तक बोनस को विलंबित वेतन माना जाएगा। इसके बीच के अंतर की समाप्ति के बाद ही इसे लाभांश समझा जाएगा।

भारतीय जनसंघ अनुबंधित श्रमिकों के बोनस के अधिकार को भी स्वीकार करता है।

वर्तमान उपभोक्ता मूल्य सूचकांक अब पुराना व अप्रचलित हो चुका है। जनसंघ इसे संशोधित करेगा।

सार्वजनिक उपक्रमों पर सभी श्रम क़ानून लागू होंगे।

जनसंघ सड़क परिवहन के राष्ट्रीयकरण के विरोध में है। उन मार्गों पर, जो पहले ही राष्ट्रीयकृत हो चुके हैं, निजी सेवाओं के संचालन की अनुमति होगी।

रेलवे बोर्ड में रेल कर्मियों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाएगा। रेलवे में सेवा शर्तों व वेतन-भत्तों को सभी जगह समान बनाया जाएगा। चयन मंडलों (भरती बोर्ड) की अनिश्चितताएँ समाप्त की जाएँगी।

कांग्रेस जिस तरह की ग़लत नीतियों का अनुसरण कर रही है, उसके राष्ट्रहित पर पड़नेवाले दीर्घकालीन दुष्प्रभावों के बारे में हम पिछले 20 साल से निरंतर चेतावनी देते आ रहे हैं। कांग्रेस नेतृत्व अपने पिछले बलिदानों को अपनी पूँजी बनाने का प्रयास कर रहा है। अपने आडंबरपूर्ण नारों की सहायता से वह जनता को उनके काल्पनिक सुनहरे भविष्य का सपना दिखाकर सम्मोहित करने का प्रयास करती रही है, परंतु पिछले पाँच साल के घटनाक्रमों से यह भ्रम अब पूरी तरह दूर हो चुका है और कितनी भी चतुर व्याख्या इन अकाट्य तथ्यों को नहीं झुठला सकती।

कांग्रेस के प्रदर्शन के बारे में पाँच अकाट्य तथ्य

1. देश की रक्षा व सुरक्षा के प्रति सरकार की आपराधिक उदासीनता, पंचशील एवं सहअस्तित्व जैसी रूढ़ोक्तियों व जुमलों पर इसकी निर्भरता, साम्यवादी चीन की असली मंशा को समझ पाने में इसकी अतिशय विफलता, जिसका परिणाम 1963 में नेफा और लद्दाख में अपमानजनक पराजय के रूप में सामने आया।

2 . हमारी डावाँडोल और अव्यावहारिक विदेश नीति का परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तानी हमले के समय हमने स्वयं को पूरी तरह मित्रविहीन पाया। इतना ही नहीं, अमरीका और सोवियत संघ, दोनों ने हम पर दबाव डाला और घुटने टेकते हुए हम कच्छ के मुद्दे को अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण में ले जाने पर सहमत हुए और इसके बाद ताशकंद घोषणा-पत्र पर सहमति जताकर युद्धक्षेत्र में अपने 'जवानों' के शौर्य व बलिदान से मिली उपलब्धियों को भी हमने स्वाहा कर दिया।

3. देश की मूलभूत एकता और अखंडता पर ज़ोर देने के बजाय कांग्रेस की सरकार उन अलगाववादियों, देशद्रोहियों और हंगामा खड़ा करनेवाले तत्त्वों के तुष्टीकरण का प्रयास कर रही है, जो विविधता की आड़ में अपने पाँव पसारना चाहते हैं। इस नीति का नतीज़ा है कि कश्मीर का शेष राष्ट्र के साथ एकीकरण अभी भी अधूरा है, नागालैंड और मिज़ोरम में विद्रोहियों को प्रोत्साहन दिया गया, राज्यों में अपकेंद्री प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, हिंदी विरोधी भावनाओं को बल दिया गया और आनेवाले समय के लिए हम पर सदैव के लिए अंग्रेज़ी थोप दी गई। प्रांतवाद, जातिवाद और सांप्रदायिकता की बुराइयाँ देश की एकता के लिए अशुभ का सूचक हैं।

4. देश के संसाधनों और यहाँ तक कि इसके स्वाभिमान की अवहेलना करते

हुए आर्थिक मामलों में सरकार की सर्वोच्चता स्थापित कर दी गई है। परिणाम यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था अब पूरी तरह विदेशी दया पर निर्भर है।

5. चरित्र और सदाचारी आचरण जैसे भारत के मूलभूत मूल्यों की उपेक्षा करते हुए लोगों को पूरी तरह से सिर्फ़ आर्थिक विकास के बारे में सोचने को विवश कर सरकार ने इस तरह का माहौल उत्पन्न कर दिया है, जहाँ भ्रष्टाचार का बोलबाला स्वाभाविक हो गया है। ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय गतिविधि का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं बचा है, जो इस बुराई से अछूता रह गया हो। यहाँ तक कि उनमें भी जो कांग्रेसी पदानुक्रम में शीर्ष पदों पर विराजमान हैं, इस सर्वव्यापी बुराई का एक भी अपवाद ढूँढ़ पाना कठिन है।

कांग्रेसी शासक न तो इस देश की और न इसके संविधान की ही रक्षा करने में समर्थ हो पाए हैं। देश की 49000 वर्ग मील भूमि शत्रु के क़ब्ज़े में है। आपातकाल लगभग स्थायी हो चुका है और परिणाम यह है कि संविधान की ओर से प्रदत्त मौलिक अधिकार निरर्थक हो चुके हैं। आधिकारिक भाषा के बारे में संवैधानिक प्रावधानों को निरस्त कर दिया गया है। इसी तरह गोवध, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, अस्पृश्यता के उन्मूलन जैसे कई दिशानिर्देशों को पूरी तरह उपेक्षित कर दिया गया है।

कांग्रेस अब और किसी अवसर के लायक नहीं

कांग्रेस पिछले 20 वर्षों के लंबे समय से देश पर शासन कर रही है। यह एक अन्यतम और अबाधित अवसर था, जहाँ कांग्रेस अपनी धारणा के अनुरूप देश का निर्माण कर सकती थी। परंतु परिणाम विनाशकारी निकले। कांग्रेस दयनीय और समग्र रूप से विफल रही है। आगे अब यह किसी अवसर के योग्य नहीं है। भारत की जनता जो इस देश की असली नियंता और भाग्यविधाता है, को अब इस देश को उनके चंगुल से मुक्त कराना होगा, जिन्होंने कांग्रेसी शासन की निरंतरता में अपने निहित स्वार्थ विकसित कर लिए हैं। इन लोगों ने देश को लूटा है और इसे विध्वंस के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। चौथे आम चुनाव में हम एक लोकतांत्रिक क्रांति लाने के लिए परिश्रम करें, ताकि देश को एक नई दिशा दी जा सके।

जय भारत

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 23, 1966

(अंग्रेज़ी से अनूदित)



जनसंघ कई प्रदेशों को कांग्रेसी कुशासन से मुक्त कराएगा

3-5 नवंबर,. 1966 को अखिल भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन नागपुर में हुआ।

विचारशील प्रतिनिधि

4 नवंबर से चुनाव घोषणा-पत्र पर विचार प्रारंभ हुआ, जिस पर कलकत्ते में कार्यसमिति विचार कर चुकी थी। वंदेमातरम् के गायन और कुछ दिवंगत हुए जनसंघ कार्यकर्ताओं को शोक श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात् महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने घोषणा-पत्र को प्रतिनिधियों के विचारार्थ प्रस्तुत करते हुए कहा कि विजयवाड़ा अधिवेशन में पारित 'सिद्धांत और नीति' के आधार पर ही उक्त घोषणा-पत्र बनाया गया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि घोषणा-पत्र केवल चुनावों के लिए नहीं है, वरन् आगामी पाँच वर्षों में जहाँ हम सत्तारूढ़ होंगे अथवा विरोधी दल के रूप में रहेंगे, इन्हीं नीतियों के आधार पर कार्य-संचालन करेंगे।

घोषणा-पत्र पर विचार-विमर्श के उपरांत कुछ विषयों पर रोचक चर्चाएँ हुई। चर्चा के अनेक विषयों में से एक ज़मीन की सीमा व आयकर का था। नागपुर के श्री रामजीवन चौधरी का संशोधन स्वीकृत हुआ था कि अनार्थिक जोत पर लगान माफ किया जाए। लगान समाप्त करने के सुझाव को अमान्य करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि कोरे चुनावी स्टंट के अतिरिक्त कुछ ठोस भूमिका पर विचार करना चाहिए। इस प्रकार देशहित की विभिन्न समस्याओं पर व्यापक चर्चा करने के बाद महामंत्री श्री उपाध्याय द्वारा 'भारतीय जनसंघ विजयी हो' के तीन बार नारा लगवाने के साथ ही घोषणा-पत्र पारित हो गया।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 21, 1966



परिशिष्ट-IV

स्वामी ने संत के सामने समर्पण किया

लखनऊ में जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने केंद्र सरकार से आग्रह किया कि जगद्गुरु शंकराचार्य और श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी की जिंदगी बचाने के लिए अपनी प्रतिष्ठा की 'झूठी धारणाओं' से छुटकारा पाए।—यू.एन.आई.

—द टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 25 दिसंबर, 1966

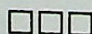
(अंग्रेज़ी से अनूदित)



संदर्भिका

श

स



परिचय

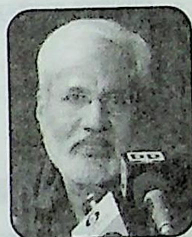
भूमिका लेखक



श्री राम नाईक

16 अप्रैल, 1934 को जन्म। तीन बार विधानसभा तथा आठ बार लोकसभा के सदस्य रहे, अटलजी नीत राजग सरकार में मंत्री रहे। संप्रति उत्तर प्रदेश के राज्यपाल।

वह काल लेखक



श्री राहुल देव

20 दिसंबर, 1956 को जालंधर में जन्म। एम.ए. (अंग्रेज़ी साहित्य) लखनऊ विश्वविद्यालय। 'द पायनियर' से पत्रकारिता का आरंभ। देश के ख्यातिलब्ध समाचार उद्घोषक। कई मीडिया संस्थानों के प्रधान रहे।

समर्पण परिचय लेखक



श्री देवेंद्र स्वरूप

मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) में 30 मार्च, 1926 को जन्म। विख्यात इतिहासकार। पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य। 'पाञ्चजन्य' का संपादन किया। 'अखंड भारत : स्वप्न और यथार्थ', 'गांधीजी : हिंद स्वराज से नेहरू तक', 'यह संविधान हमारा है या अंग्रेजों का' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

...दि शुक्ल ४ शके १८७७ र. उ. ७।१७, र. अ. ६।२१

જાનેવારી તા. ૧૭ વાર મંગળ પોષ શુદી ૪ સંવત ૨૦૧૨

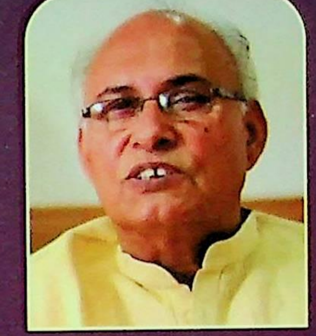
2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

संघ का कार्य हिन्दू संगठन का है। भावात्मक हिन्दू
हमारे सम्मुख है। हिन्दू शब्द से जिस समाज की कल्पना होती
है उसके कुछ लक्षण रहेंगे। व्यक्तियों आगे कुछ विशाल
समाज की उपयोगी करेगी महत्वपूर्ण, उसके प्रश्न के रूप में
रहनेवाला एक जीवन चलानेवाला। हिन्दू समाज।
अन्य कार्य होते हुए भी हमने संगठन का ही कार्य हाथ में
लिया है उनको हल करें।

१. ज्ञान का लक्षण : एकत्व का बोध है; अनेकत्व
का बोध - अज्ञान। एकात्मता का बोध कराने का प्रयत्न
करना होगा।

अपने स्वरूप में सबके लिये समान आदर होना चाहिये
जो बाधा इसके पोषक न हों उन्हें हम व्यवहार से निकालें
हिन्दुत्व के लक्षण सबमें समान रूप से मिलेंगे।
भगवान का दर्शन सभी कर सकते हैं।
सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है।
100 वर्ष पूर्व Father Goodwin ने ... अलग बताने
प्रचार किया। किन्तु ... में धर्म, अर्थ...
... है।

import of ...
... 18 ...
total ... of 4.3
value of import of
machinery in ...
325 crores.
Some industr...
licensed for a ca...
excess of the ...
same have ea...
near the targ...
for the end of ...
These are ...
rubber, tyres ...
alcohol, soda
soda, refrac...
transmitter
and rayon ...



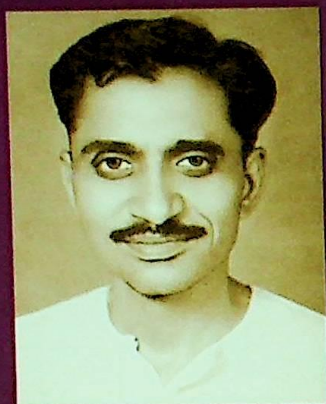
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।



पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।



ISBN 978-93-86231-28-4
₹ 400/-


प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन
अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान